UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180797

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 P19 M Accession No. H 3303

Author पंत, गोविन्द वल्लभ

Title मैत्रेय 1959

This book should be returned on or before the date last marked below.



मैत्रेय

गोविंदवल्लभ पंत





आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली



COPYRIGHT © BY ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मोरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	६ रुपए ५० न० पै०
प्रथम संस्करण	:	१ ९ ५ ९
आवरण	:	ना० मा० इंगोले
मुद्रक	:	मूवीज़ प्रेस, दिल्ली-६

प्रकाशकीय

हिन्दी ने पिछले दिनों उपन्यास साहित्य में जितनी प्रगति की है उतनी किसी और क्षेत्र में नहीं। नवीन प्रतिमानों और मान्यताओं का समावेश करके हिन्दी के प्रबुद्ध लेखकों ने उपन्यास-कला को काफी साज-सँवार दिया है। सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और मूक साधक श्री गोविन्दवल्लभ पंत का यह नवीनतम वृहत् उपन्यास हिन्दी के हाथों में सौंपते हुए हम गर्व अनुभव करते है। पंत जी ने उपन्यास या नाटक जो कुछ आज तक लिखा है उसे अमरता के ऐसे अमृत-बिन्दुओ से रस-सिक्त कर दिया है कि जो प्रत्येक पाठक के हृदय पर एक मर्मस्पर्शी और अमिट प्रभाव छोड़कर अपनी गणना सबसे पृथक् उच्च कोटि के साहित्य में करा लेता है। 'मैत्रेय' भी उनकी एक ऐसी ही कृति है जिसे भुलाना हिन्दी के वश का नहीं यह हमारा दावा है। यद्यपि तिब्बतीय पृष्ठभूमि पर आधारित यह एक काल्पनिक उपन्यास है लेकिन भावभूमि तथा शैली द्वारा पंत जी ने ऐसा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है कि इसे पढ़ते समय ऐतिहासिक उपन्यास जैसा आनन्द प्राप्त होता है।

कई दर्जन उपन्यास और नाटको के प्रणेता श्री पंत जी हिन्दी के लिए अपरिचित नही हैं।

प्रकाश और प्रचार के लिए प्रयत्नशील न होने पर भी हिन्दी साहित्य ने उनकी कृतियों को जैसा मान-सम्मान दिया है वह सचमुच हर्ष का विषय है। प्रस्तुत उपन्यास पर किये गये उनके परिश्रम का भी उचित मूल्यांकन होगा, ऐसा हमें विश्वास है।

—*प्रकाशक*

परिचय

वह महिमावान भविष्य में जन्म लेगा मैत्रेय के नाम से। मेरे अनुचरों से उसके भक्तों की संख्या कई गुना अधिक होगी।

—बुद्ध शाक्य मुनि (दीघ्घनिकाय)

इतिहास अपने को दुहराता है—यह वैज्ञानिक सत्य हो चाहे नहीं, हमारा यह उपन्यास इस विवाद का पोषक नहीं है। इस संसार के पाप-ताप को स्वच्छ-शीतल करने के लिए भविष्य में भगवान् के अवतरण का विश्वास, संसार के सभी धर्मों में है। वह मुहम्मद के रूप में हो, ईसा के, कृष्ण के या मैत्रेय के !

तिब्बत की पृष्ठभूमि को लेकर इस उपन्यास की रचना की गई है। उपन्यास ज्ञांची और ल्हासा के बीच एक बर्फ के तूफान से आरंभ होता है। मुख्य कथा के सूत्र इस प्रकार हैं—

अमजी कलजन और सिरता रिंबूची ये दोनों बचपन में एक ही गुरु के निकट पढ़ते थे। कलजन ने हिकमत सीखी थी और रिंबूची ने ज्योतिष। उन दोनों की पत्नियाँ चल बसीं और उन दोनों के मन में वैराग्य ने जड़ पकड़ ली। दोनों आत्मा की शोध के लिए तैयार हो गये।

वे दोनों बंधनों से मुक्त थे। उनके कोई उत्तरदायित्व नहीं थे, न किसी को कुछ लेना-देना। उन दोनों ने बहुत दूर चाङ् थङ् प्रदेश के हिम-मरु में अवस्थित खंपोलामा के मठ में उनसे दीक्षा लेकर आत्मा का भेद जान लेने का निश्चय किया और वे एक दिन बिना किसी तैयारी और भय के वहाँ के लिये चल दिए।

उक्त खंपोलामा के मठ के लिये विधाता के अदृश्य विधान में उत्तरी भारत से एक पात्र को भी अपना मार्ग बनाना था। उसका नाम था भैरव—हमारे उपन्यास का नायक। वह अपने धनी माता-पिता का

एकमात्र पुत्र था। वह बुद्धि का तीक्ष्ण था, पर लक्ष्य पर ठहर नहीं सकी उसकी समझ। खेल-कूद, मिथ्या आहार-विहार, जीवन की तड़क-भड़क घर के भीतर ही से शुरू हो गई थी, बाहर संगति ठीक नहीं मिली। पढ़ना-लिखना छूट गया। क्लब खोलकर वह उसमें नाटक करने लगा और उस बहाने रात-रात भर घर से गायब रहता।

माता-पिता का स्नेह-संबंध, धन-संपत्ति का लालच तथा अंकुश-अधीनता सब कुछ छोड़कर एक दिन वह एक महरी की कुमारी कन्या बासो को बहकाकर बंबई को चल दिया। दैवसंयोग से बंबई की एक धर्मशाला में बासो को धोखा देकर कोई दूसरा ही उठा ले गया! भैरव के मन में भयानक सामाजिक विद्रोह जाग उठा। वह पूँजीपति पिता का द्रोही तो था ही, भारत के धर्म-पाखंड के लिये भी उसके मन में प्रचंड आग सुलग उठी। धर्मशाला के संस्थापक की मूर्त्ति की नाक तोड़कर वह भागा और रेल से बंबई छोड़कर अज्ञात दिशा को चल दिया।

रेल में उसकी ५ ज नामक एक विकट मनुष्य से मित्रता हो गई और उसके साथ वह हिमालय की उपत्यका में स्थित भयंकरवादियों के संघ में भरती होने को तैयार हो गया। उस संघ में केवल अविवाहित ही भरती हो सकते थे। भैरव ऐसा था ही। अपने साहस की परीक्षा देने के लिये वह चलती हुई रेल से भूमि पर कूद पड़ा। उसके हाथ की हड्डी खिसक गई! उसकी मरहम-पट्टी कर ५ ज उसे भयंकरवादियों के संघ में ले गया। संघ की संचालिका एक माता जी थीं। कहने को उससे यह कहा गया था कि वहाँ माता जी के सिवा और कोई नारी नहीं है। पर उसे वहाँ एक त्रिशूलधारी दिखाई दिया—नंगे सिर, कमर तक लटकती हुई उसकी केशराशि थी, माथे पर भस्म की रेखाएँ। उसके सारे शरीर में एक अद्भुत सौन्दर्य था और भैरव उसकी यष्टि को देखकर बड़े विस्मय में खो गया जब उसने अपने को पुरुष की संज्ञा दी। भैरव उस धोखे में नहीं पड़ा—वह उसे नारी ही समझने लगा।

उधर से अनेक कठिनाइयों को पार कर वे दोनों वैद्य और ज्योतिषी

खंपोलामा के मठ में पहुँच गए और विश्व के कल्याण के लिए संसार में मैत्रेय के जन्म की कामना करने लगे।

इधर भैरव को उस भयंकरवादियों के मठ में अंतरंग सदस्यता के लिये छाँट लिया गया। उसे वह मठ आध्यात्मिकता का रंग लिए जान पड़ा। वे लोग एक 'युग-चैतन्य' का निर्माण करना चाहते थे। युग-चैतन्य—एक अतिमानव जो अपनी शुद्ध भावना से सारे युग और विश्व को प्रभावित कर उसमें शांति की स्थापना कर देगा। भैरव को उस युग-चैतन्य के लिए छाँट लिया गया। उसका आसन माता जी से भी ऊपर लगा दिया गया। उसकी आज्ञा वहाँ सर्वोपरि हो गई। लेकिन भैरव को वह भार असह्य हो उठा। वह उसे एक पाखंड समझने लगा। उसके मन में वह नरवेश-धारिणी भैरवी बस गई थी। उसी रात अपनी सर्वोपरि आज्ञा की शक्ति से उसने भैरवी को साथ ले वहाँ से चल देना निश्चित कर लिया, पर बीच में बाधा आ पड़ने पर भैरवी वहीं रह गई।

भैरव नदी में कूदकर जंगलों-पहाड़ों को लांघता हुआ कुछ तिब्बती सौदागरों के साथ गूँगा बनकर ल्हासा पहुँच गया, फिर वहाँ से भागकर एक बुढ़िया के गाँव में उसका बेटा बनकर रहने लगा। बुढ़िया की मृत्यु पर एक दिन कुछ डाकू उसे आकर पकड़ ले गए और वह उनके दल का एक सदस्य बन गया।

डाकुओं का सरदार उसे खंपोलामा के मठ में ले गया। मठ के बाहर उसे एक हवाई जहाज दिखाई दिया और भूमि पर पड़ी हुई एक डायरी मिली जिसमें एक नारी के हवाई उड़ान का आरंभ लिखा था, बाकी पन्ने फट गए थे।

कलजन और रिबूची उस मठ में मैत्रेय के अवतरण की साधना में लग गये। उन पर यह रहस्य खुल गया था कि वहाँ एक श्वेतांगना भी मैत्रेय की जननी के रूप में रहती हैं। ध्यान जगाने के लिए उन्हें उस महामाया का एक चित्र दिया गया। बाद को भैरव ने वहाँ आकर उस चित्र में अंग्रेजी का लेख पढ़ा—"इस मठ में वंदिनी हूँ मैं, कौन मुझे छुड़ायेगा?—

कुमारी इवा मार्सिन।"

भैरव बड़े चक्कर में पड़ गया। वह जब खंपोलामा से मिला तो उसने अंग्रेजी के ज्ञान के कारण उसे उस श्वेतांगना का पुत्र मैत्रेय बन जाने की प्रेरणा दी। भैरव कुमारी इवा और खंपोलामा के बीच में दुभाषिया बना।

बात ऐसी थी—कुमारी इवा हवाई जहाज द्वारा संसार की पहली परिक्रमा की रेकार्ड-स्थापना को उड़ी थी। मठ के पास उसका जहाज पेट्रोल की कमी से गिर पड़ा। खंपोलामा ने उसे मैत्रेय के जन्म के लिए भगवान् का दान समझकर अपने मठ में रख लिया।

अंत में भैरव मैत्रेय के सिद्धान्त पर विश्वास रखने पर भी उसके अवतरण का भार उठाने में अपने को असमर्थ पाता है और उस श्वेतांगना को श्वेतांगों की एशिया-विजय की कामना समझकर उसे वहाँ से उसी हवाई जहाज में उड़ा ले जाता है।

—*लेखक*

१

छिन्नमस्ता

संसार का वह सर्वोच्च पठार ! उसके ऊपर उस भयानक बर्फ़ के तूफ़ान में, मानो मूर्तिमान वीभत्स चला जा रहा था। उसकी गति में कोई शंका नहीं थी, न उसके मन में किसी का डर। उसके कंधे पर जिस नारी का बोझ था, उसके निराधार लटकते हुए हाथ-पैर और गरदन से स्पष्ट ही प्रकट था, वह निष्प्राण थी।

मेघों में घनी कालिमा थी, प्रचड वेग था। बिजली में कड़क न थी, गंभीर घोष था। कभी एकदम उजाला हो जा रहा था, कभी तुरंत ही घोर अंधकार ! पवन की गति तीस मील प्रति घंटे से कम न होगी। हिम की फुहार, फूलों की पँखुरियों-सी टूट-टूटकर धरती पर बरस रही थी।

भूमि पर आधे फुट के करीब बर्फ जम चुकी थी, सामने के पहाड़ों को देखकर यही भासता था, जैसे हिमालय पर्वत कुछ नीचे को उतर आए हैं। पहाड़ों पर के पेड़ बर्फ को ओढ़कर भूत-प्रेतों के से आकार में दिखाई दे रहे थे। जल-शून्य मार्ग ! दूर-दूर तक कहीं किसी गाँव या मकान का पता नहीं था। वन में कोई पालतू या जंगली पशु न था, न पवन में कोई पक्षी। इस कठोर सरदी में सबके सब न जाने कहाँ छिपे बैठे थे ?

केवल एक वही, क्यों अपने प्राणों के लिए इतना निर्भय हो उठा ? जान पड़ता है जब वह घर से चला था, तब इस तूफ़ान की कोई आशंका नहीं थी। और जो मिट्टी उसे इस समय ढोनी पड़ रही है, वह उसकी

सहचारिणी थी। घर से चलते समय शायद ही उसने यह सोचा होगा कि वह ऐसे संकट में फँस जायगा।

उसके पैरों में घुटने तक का ऊन और चमड़े का शोंबा था, जो हर क़दम पर बर्फ़ के ऊपर बड़ा गहरा पदांक बनाता जा रहा था। ढीली बाँहों का पैरों तक लटकता हुआ उसका छुपा था, कमर बाँध रखी थी उसने एक बैंजंती रंग के धारीदार ऊनी काबो से। उसके सिर के लंबे बाल लंबी चोटी में गुंथे हुए पीठ पर लटक रहे थे। चोटी का शिरोभाग शंख के वर्तुल से घिरा हुआ था। उसके कानों में सोने की मंदेप थीं, जिनमें कीमती पत्थर जड़े हुए थे। उसके गले और हाथों में भी मूंगे और फ़ीरोज़ की मालाएँ थीं। एक चौकोर चाँदी की खऊँ उसके गले में लटकती थी, जिसमें किसी तिब्बती देवता की उभरी हुई मूर्त्ति थी। उस ने अपने सिर में एक फ़ैल्ट का श्यामो पहन रखा था।

वेश-भूषा से वह एकदम श्रमजीवी-सा नहीं प्रतीत हो रहा था, पर जिस शारीरिक परिश्रम और ऋतु के काँटे को सहन करता हुआ वह अपने मार्ग में आगे बढ़ता जा रहा था, उसमें जान पड़ता था—वह व्यक्ति कठिनाइयों का भी अभ्यासी था।

वह फिर मार्ग में विश्राम के लिए रुक गया, उसने अपने कँधे के उस शव को भूमि पर बड़ी घृणा से पटक दिया। उसके दोनों हाथ उस के छुपा की लंबी बाहों के भीतर ही छिपे थे। उसने अपने टोप और कपड़ों पर जमी हुई बर्फ़ झाड़कर गिरा दी। बड़ी उपेक्षा-भरी दृष्टि से उसने शव की ओर देखा।

बाईस-तेईस वर्ष की सुन्दरी होगी वह। ऐसी किसी जीर्ण बीमारी के चिह्न अंकित नहीं थे उसके मुख में। युवक ने उसके अंग-प्रत्यंग के तमाम आभूषण निकालकर एक कपड़े में बाँधे, फिर अपने छुपे के भीतर रख लिए। इसके बाद उसने अपनी कमर से खाँड़ा निकाला और तुरंत ही उसे वहीं खोंस लिया।

फिर कुछ सोचा उसने और उस शव के तमाम वस्त्र खोलकर फेंक

दिए। उसका भार कुछ हलका हो गया था। लेकिन तूफ़ान की तेजी जरा भी कम न हुई थी। फिर हिम के साथ संघर्ष करता हुआ वह आगे को बढ़ता गया। बड़ी आकुलता से मार्ग के चारों ओर देखता हुआ चला जा रहा था। कहीं पर किसी आश्रम या गाँव का कोई निशान उसे नहीं दिखाई दिया।

फिर थककर वह एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। उसने फिर अपना वह दुर्वह भार धरती पर पटक दिया। उसने बड़ी घृणा से उसके मुख को देखा। उसके प्राणविहीन होने पर भी उस युवक के भीतर कोई प्रतिहिंसा जल रही थी। यह स्पष्ट ही था। अचानक उसकी भावना में न जाने क्या उफान आया, उसने अपनी कमर में से फिर वह खाँड़ा निकाला और उस शव की दोनों टाँगें काट डालीं। उसने दोनों को मार्ग से दूर जंगल की तरफ फेंक दिया। माँस की गंध से तुरन्त ही वहाँ पर गिद्ध और सियार प्रकट हो गये और उन कटी हुई टांगों का माँस नोचने लगे।

इस बार निश्चय ही उसके बोझ में प्रत्याशित कमी हो गई थी। लेकिन तूफ़ान में कोई सौम्यता नहीं आई थी। ठंड के कारण उस शव की नाड़ियों का काला खून जम गया था। उस वीभत्स भार को उठाकर उस युवक ने फिर अपने कंधे पर रखा और फिर अपने मार्ग में बढ़ने लगा।

वह ल्हासा की ओर जा रहा था। उस बोझ को वहाँ ले जाने का उसका क्या अर्थ होगा? और इस प्रकार उसे कम करने का ही मतलब क्या? वह कुछ दूर और बढ़ गया। उतना हलका कर देने पर भी वह लाश उसे भारी लगने लगी। उसने उसे नीचे रख दिया और फिर कमर से खाँड़ा निकाला। उसने उसके दोनों हाथ काटकर फेंक दिए।

अब वह उसकी चोटी पकड़कर ले चला। उसने कुछ ही मार्ग तय किया होगा कि फिर उसे बड़ी उलझन-सी प्रतीत हुई। फिर उसने उसे भूमि पर रख दिया। इस बार उसने उसका मस्तक काट लिया और

शेष धड़ के भी कई टुकड़े कर दसों दिशाओं में फेंक दिए।

तिब्बत में शव के अंतिम संस्कार की ऐसी प्रथा भी है। इसका मूल कारण वहाँ जलाने की लकड़ी का अभाव है। शव को काट-पीसकर अन्य जीवों को खिला तो दिया जाता है। पर इस प्रकार उसके अंग-प्रत्यंग विच्छिन्न कर जगह-जगह बिखरा देना शायद उस पुरुष के किसी मानसिक विक्षेप की साक्षी थी।

उस छिन्नमस्ता के मस्तक को उठाया उसने। वह न्यस्तभार होकर बड़ी सरलता से अब हिम से लड़ता हुआ आगे को बढ़ने लगा। जाते-जाते वह सोचने लगा—"जब सब कुछ इस अभागिनी नारी का काट-काटकर फेंक चुका हूँ तो फिर इस मुंड का ही क्यों मोह हो गया?"

उसने उस मुख को चोटी से पकड़कर अपनी ओर किया। इस बार प्रेत के चेहरे को देखकर कुछ द्रवित हुआ वह। फिर विचारने लगा—"कितनी सरल और छलहीन थी यह किसान-कन्या? जब से उस बदजात की संगति में आई, तभी से सब चौपट हुआ। इस सिर को कहाँ ले जा रहा हूँ मैं? किसी मसाले के संयोग मे इसे कुछ दिन के लिए स्थाई बना भी सका तो क्या? हमारे आरंभिक दिनों की याद यह न जगा सकेगा। उसी चांडाल की छाया दिखाई देगी मुझे इस मुख में!"

तूफ़ान अब मिट गया था। हवा स्थिर हो गई थी और बर्फ़ का गिरना भी बंद हो गया था। उस युवक ने उस मस्तक को चोटी पकड़ कर दो-तीन बार अपने पार्श्व में घुमाया और फिर दूर फेंक दिया। कुछ देर तक वह देखता रहा उसकी ओर अचानक जब उसने उस पर कुछ कौओं के झुंड को मँडराते देखा तो फिर उसका मोह जाग उठा और वह दौड़ा हुआ उस छिन्न मस्तक के पास जा पहुँचा। तब तक कौओं ने अपनी चोंचों से खोद-खोदकर उसकी नाक उड़ा दी थी, उसके दोनों कान सफाकर उसे बूचा कर दिया था। जहाँ उसकी दो आँखें थीं, वहाँ दो डरावने काले गढ़हे दिखाई देने लगे थे और दोनों होठों की मांसलता अदृश्य होकर दो कसे हुए जबड़ों की दंत-पंक्ति दृष्टिगत हो गई थी। उस

के गालों को भी उन्होंने अपनी चोंचों से क्षत-विक्षत कर दिया था।

उसने उस नारी को टुकड़े-टुकड़े कर दिशा-विदिशाओं में बिखरा दिया था। उसके मस्तक को काटकर वह उतनी दूर तक ले गया, पर इस बीच कहीं उसके मन में ऐसा वैराग्य नहीं उपजा। उस क्षत-विक्षत मुख की कुरूपता से, मानवी सौन्दर्य की क्षण-भंगुरता उसके मन में गड़ गई! उसने दोनों हाथों से अपना मुख ढक लिया और बड़ी जोर से चीख उठा—"हे भगवान्!"

उस नारी के लिए उसकी जो भी घृणा थी वह सब समाप्तप्राय हो गई और उस सैनिक के लिये भी, जिसने उसे बहका दिया था—जो कुछ प्रतिहिंसा उसने अपने मन में बढ़ा रखी थी, वह सब टूट-टूटकर गिरने लगी।

'कैसा भयानक अंत है इस हाड़-चाम के निर्माण का?" उसने धीरे-धीरे फिर उस नारी के मुंड को देखा। कौओं की चोंचों ने उसकी हड्डियाँ बाहर दिखाकर उसकी असलियत खोल दी थी। उसकी इच्छा होने लगी, उसी समय किसी दूर एकांत को चल दे। तिब्बत में मठों की कमी नहीं, किसी में जाकर दीक्षित हो जाना असंभव न था। विचार का यह बीज उसके मानस में पड़ गया।

"एक दिन मेरा भी इसी से मिलता-जुलता अंत हो जायगा और उस सिपाही का भी तो!" फिर वह गुनगुनाया, मृत्यु के द्वार पर हमारी पार्थिव स्थितियाँ ही समानता को प्राप्त नहीं हो जातीं—मानसिक भावनाएँ भी अपनी विषमता खोकर सम पर आ जाती हैं। वह समता है वैराग्य की। श्मशान-वैराग्य!

उस भूलुंठित मुंड की वह दुर्दशा उसके लिये असह्य हो उठी। उसने फिर उसकी चोटी पकड़कर उसे उठाया, फिर दो-तीन चक्कर घुमाकर दूर फेंक दिया। निकट ही बहती हुई एक नदी के कगार पर गिरकर वह उसकी आँखों की ओट में हो गया।

उसने फिर ल्हासा की ओर जाने वाली अपनी राह पकड़ ली।

अब उसे शीत का प्रकोप अधिक सताने लगा। अब तक उसके पास एक भारी बोझ था, जिसको ले जाने के श्रम से उसके शरीर में गरमी उत्पन्न हो रही थी और उसका मन बँटा हुआ था। अब शरीर और मन की अतिरिक्तता पर शीत बड़ी आसानी से चोट चलाने लगा। उसने अपनी चाल तेज कर दी। कुछ ही देर में वह एक छोटे-से गाँव के निकट आ गया।

२

चीनी भाई

इधर तूफ़ान का इतना अधिक जोर नही था। जो कुछ थोड़ी-बहुत बर्फ़ गिरी थी, वह गलकर साफ़ हो गई थी। गाँव के बीच से होकर ही मार्ग गया था। चारों ओर के खेतों में जौ की हरियाली फैली हुई थी। पेड़ों पर अभी बालें नही उकसी थी। वर्षा में स्नान कर उन पेड़ों का रंग निखर उठा था।

नारी के उस भयानक अंत का प्रभाव अभी तक उसकी चेतना में ज्यों-का-त्यों धरा हुआ था। ठंड से ठिठुरा हुआ वह गाँव के निकटतम मकान में जाकर आश्रय पाने के सपने देख रहा था।

ज्योंही वह गाँव के भीतर को बढ़ा, दो कुत्ते उस पर भौंकने लगे। वह चुपचाप एक ओर को खड़ा हो गया। कुत्ते अपने घर की तरफ घुसते हुए उस पर भौंकते ही रहे। घर के भीतर से एक बूढ़ा किसान आनेवाले को देखने के लिए बाहर निकल आया।

बूढ़े ने अपनी कमजोर आँखों पर हाथ रखकर प्रकाश की चकाचौंध को रोकते हुए मार्ग की ओर देखा और पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ अमजी कलजन"—आगंतुक ने उत्तर दिया।

घर के स्वामी ने कुत्तों को झिड़क दिया। कुत्ते दुम दबाकर खिसक गए। उसने आवाज के सहारे आनेवाले को कुछ-कुछ पहचान तो लिया था, नाम सुनकर भी वह स्मृति के अंधकार में टटोलने लगा।

कलजन इतने में उसके पास पहुँच गया था। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"क्यों बूढ़े गृह-स्वामी अच्छे तो हो ?"

अब उसके कोई संशय नहीं बाकी रहा—अत्यंत प्रसन्न होकर उसने कलजन का हाथ पकड़ लिया और उसे घर के भीतर ले जाते हुए बोला—"बड़े ठंडे तुम्हारे हाथ हैं। इतनी शीत में कहाँ से आ रहे हो हकीम जी ?"

"गया था एक ज़रूरी काम से।"

"चलो, पहले आग के पास चलो। मैंने चाय बना रखी है और अकेले उसे पीने को मेरा मन नहीं कर रहा था। बड़ी देर से वह मथानी में पड़ी-पड़ी ठंडी हो गई है।"—बूढ़े ने अपने निकट ही एक दन में बड़े प्रेम से कलजन को बिठाते हुए कहा।

कलजन बैठा नहीं, बोला—"मैं बर्फ़ के एक भयानक तूफ़ान से होता हुआ चला आ रहा हूँ।"

"शोंबा और कपड़े सब खोल दो। और जब तक तुम्हारी एक-एक चीज़ अच्छी तरह सूख न जाय, मैं तुम्हें हर्गिज़ जाने न दूँगा। कई बार तुम यह रास्ता काट-काटकर गए हो। आज भगवान् ने मेरी बात सुनी है।"—बूढ़े ने कलजन को ओढ़ने के लिए एक काला नरम थुल्मा दिया और जल्दी से फिर चाय गरम करने लगा।

कलजन ने जूते खोल दिए, कमर का काबो और खाँड़ा भी अलग रख दिए। छुपे के भीतर उसके चाय पीने का फुरू, सुँघनी का चक्यर और एक थैले में कुछ और चीजें थीं, वे सब निकाल डालीं। छुपा खोलकर सूखने को टाँग दिया। कंबल ओढ़कर वह उस बूढ़े के साथ आग के समीप बैठ गया। उसने पूछा—'अकेले ही कैसे हो आज ? वे लोग कहाँ गए ?"

"लोग ही और कौन ? बेटा और बहू, वे दोनों ल्हासा गए हैं। बहू के भाई की शादी है। उसका वह छोटा भाई जो पोताल्हा में दलाई लामा का अंगरक्षक है।"

"तुम नहीं गए ?"

"इस बूढ़े को कहाँ वे अपने साथ ले जाते ? और मेरा भी नगर

में दम घुट जाता है। तुम क्या किसी का इलाज करने गए थे ? लेकिन कैसे वे नासमझ लोग—एक घोड़ी भी नहीं थी क्या उनके यहाँ ? फिर ऐसों की दवा करने ही क्यों गए तुम ?"

"कुछ ऐसे ही विचित्र संयोग में फंस गया मैं बूढ़े बाबा !"

"कुली कितने पीछे रह गया तुम्हारा ?"

"कुली ? नहीं कोई कुली नहीं है मेरे साथ ।"—कलजन मन-ही-मन सोच रहा था वह यथार्थता को किस तरह प्रकट करे।

"इस बर्फ की बौछार में अकेले ही पैदल जिसने तुम्हें आने दिया है, वह कदापि अच्छा आदमी नहीं है हकीम जी ।"—चाय मथते-मथते बूढ़े ने कहा।

बड़ी क्षीण हँसी के साथ कलजन बोला—"मुझे किसी ने नहीं आने दिया, मैं खुद ही आया हूँ।"

"तुम शिगर्ची से आ रहे हो ?"

"हाँ।"

"किसी के इलाज के लिये नहीं गए। उसी तरफ़ तो तुम्हारी ससुराल है न ? वहाँ से आ रहे हो ?"

"हाँ।"

"लेकिन ससुरालवालों ने तुम्हें क्यों नहीं रोक लिया एक-दो दिन के लिये ?"

कलजन को अपनी आँखों के आगे बड़ा भयानक काला पहाड़ दिखाई दिया। वह उसके बीच कहाँ से मार्ग निकाले, इस दुविधा में पड़ा था कि बूढ़े ने उसके आगे चाय का प्याला रख दिया। उसे सोच सकने के लिये बड़ा सहारा मिला। उसने चाय की एक घूंट पीकर फिर प्याला भूमि पर रख दिया।

कलजन की चुप्पी देखकर बूढ़े ने फिर कहा—"विश्वास करता हूँ ससुरालवालों से कोई लड़ाई नहीं हुई तुम्हारी।"

"नहीं तो।"

"औरत कहाँ है तुम्हारी ?"

कलजन जिस बोझ को सिर से उतारने की दुविधा में पड़ा हुआ था, उस भार को भूमि पर पटक देने के लिये उस बूढ़े गृहस्वामी ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

कुछ आश्वासित होकर कलजन उत्तर के लिये सही शब्द सोचने लगा। उसकी देर को बूढ़े ने फिर अपने वाक्यों से भरना शुरू किया—"बड़े अच्छे माँ-बाप की कन्या है वह। एक दिन मैंने देखा था उसे। मेरी बहू का कोई रिश्ता है उसके साथ। मैके या ससुराल कहीं जाते हुए उसने एक रात हमारे यहाँ डेरा डाला था। वह बड़ी अच्छी औरत है और तुम भी सज्जन आदमी। न जाने क्यों भगवान् उसे कोई संतान देने में इतना सोच-विचार कर रहे हैं। इस बार नए वर्ष के उत्सव में तुम टशीलहुन्पो के आशीर्वाद लो, तुम्हारे ज़रूर पुत्र हो जावेगा। कभी मैंने उनका आशीर्वाद टूटता हुआ नही पाया। लेकिन तुम्हारा विश्वास पूरा होना चाहिए। क्यों ?"

कलजन ने बड़े धैर्य से सत्य के ऊपर का परदा हटाते हुए कहा—"लेकिन···"

बूढ़े ने फिर बीच ही में अपनी बात जड़ दी—"मैं तो उनको बहुत बड़ा अवतार मानता हूँ।" बूढ़ा चाय पीने लगा।

कलजन को अब कहना ही पड़ा—"लेकिन बूढ़े दादा, मेरी स्त्री तो मर गई।"

"कब ?"—बूढ़े गृह-स्वामी ने चाय का प्याला दूर रख दिया और आँखों में नमी और मुख के भावों में अचरज भरकर कुछ देर तक उसे देखता ही रह गया।

कलजन ने जवाब दिया—"जब संसार ऐसा ही क्षणिक है, हम इसे निरंतर सच्चा समझते रहते हैं। और उसको सच समझने से ही हम रोज़ पाप करते हैं।"

"लेकिन कब गुजर गई वह ?"

"उसकी मिट्टी पंचभूतों को सौंपकर ही आ रहा हूँ मैं।"

बूढ़े ने अपने छूपे की लटकती हुई बाँह से अपनी दोनों आँखों को पौंछते हुए पूछा—"ससुराल में ही मरी वह ? कब से बीमार थी ? और तुम हकीम हो, सबको अच्छा करते हो, अपनी औरत को नहीं बचा सके ?"

"नहीं बूढ़े दादा, वह कुछ बीमार नहीं हुई। उसने मौत को पुकार कर अपने पास बुला लिया।"

"उसने तुम्हारी दी हुई दवा नहीं खाई और बदपरहेज़ी कर दी," बूढ़े को सहसा कुछ याद आई, उसने पूछा—"और तुम्हारा चीनी भाई कहाँ है ?"

'इन सब बातों की जड़ पर तो वही चीनी भाई है।"

"हो सकता है।" बूढ़े दादा ने फिर कलजन को कुछ चाय देते हुए कहा—"कुछ दलिया बना देता हूँ मैं तुम्हारे लिये, भेड़ का सूखा माँस रखा है। प्रार्थना की बेला निकट आ रही है। प्रार्थना के बाद तुम खा लेना। मैं रात का खाना छोड़ चुका हूँ, दिन का ही खाना मुझे हज़म नहीं होता।"

"नहीं दादा, खाना आज मैं भी कुछ नहीं खाऊँगा, उस मृतक को आदर देने के लिए मुझे एक वक्त का खाना छोड़ना ही होगा।"

"लेकिन तुमने उस चीनी की बात को रोक क्यों लिया ?"

"मुझे उस चीनी की जात से कोई शिकायत नहीं है। लेख-पढ़, बोली-ठोली, रीति-रिवाज, चाल-ढाल, रूप-रंग की कोई समानता न होने पर भी हम अपनी धार्मिक प्रगति के लिये बुद्ध की शरण में जाते हैं। ल्हासा में एक बीमार के रूप में ही मेरा उसका पहला परिचय हुआ था। बड़ी गंदी बीमारी थी उसे। मैंने उसकी बीमारी ही अच्छी नहीं की, उसको अपना भाईचारा देकर अपनी स्त्री में भी हिस्सा दिया।"
—कहते हुए कलजन ने एक विराम लिया।

बड़े दादा ने पूछा—"ल्हासा में वह चीनी क्या करता था ?"

"चीनी राजदूत के साथ जो सेना थी, उसी में वह सिपाही था। बीमारी के कारण उसे सिपाहीगिरी की नौकरी छोड़ देनी पड़ी। स्वभाव का अच्छा था वह। उसकी दशा देखकर मेरे दया उमड़ पड़ी थी। बूढ़े दादा, कोई भी लालच न था मेरे। जब नौकरी छूट जाने पर वह बेघर हो गया तो मैंने उसे ठौर दी, खाने को ग्रास भी दिया और दवा भी तो।"—कलजन चाय समाप्त कर अपना फुरू चाटने लगा।

बूढ़े दादा कहने लगे—'तुम जितने अपनी दवा-दारू के लिये सारे तिब्बत में प्रसिद्ध हो उतने ही अपने उदार स्वभाव के लिये भी। हमारे जैसे ग़रीबों के तो तुम माता-पिता ही नहीं, साक्षात् परमेश्वर हो।"

कलजन ने गृह-स्वामी के उस अभिनंदन की कोई परवा नहीं की। वह अपनी धारा में कहता जा रहा था—"बूढ़े दादा, छः महीने लगे उसे अच्छा होने में, पूरे छः महीने। उस अवधि में वह बिलकुल एक नया ही मनुष्य हो गया। उसके तमाम घाव ही नहीं, घावों के निशान तक उड़ गए।"

"लेकिन उसने तुम्हारे एहसान भुला दिए!"

कलजन ने बूढ़े के इस आक्षेप का बिना कोई सहारा लेते हुए कहा—"उन छः महीनों में हमने एक-दूसरे के स्वभाव को खूब अच्छी तरह पहचाना। किसी के सिर्फ अवगुण पर ही ध्यान रखना मैं मनुष्य के स्वभाव की भारी कमज़ोरी मानता हूँ।"

"क्या बदला दिया उसने तुम्हें?"

"पैसा-कौड़ी कुछ भी नहीं था उसके पास, क्या बदला देता?"

"चीन में भी कुछ नहीं?"

"नहीं, बिलकुल अपने को अनाथ कहता था। लेकिन उसकी विनम्रता से और उसकी शकल-सूरत से मुझे उसके प्रति बड़ी प्रीति हो गई। सब से बड़ा गुण उसके भीतर सच्चाई थी। वह कहता था, किसी बहिया क़ा भूचाल में उसके माता-पिता और उसकी भू-संपत्ति सब समाप्त हो गए थे। संतान के प्रति माता-पिता का जो स्नेह-संबंध होता है, उसका एक

कण भी उसे नहीं मिला था। एक परोपकारिणी संस्था में उसने अपनी आयु के वर्ष बढ़ा लिए थे किसी तरह।"

"मैंने कभी नहीं देखा उसे।"

"वह मेरी घर-गिरस्ती के भीतर—अपनी सौम्यता से—उसका एक अंग हो गया। वह फिर सेना में नौकरी कर लेने के लिये कहने लगा। मैंने ही उसे नहीं जाने दिया। माता-पिता का प्रेम जिसने पहचाना नहीं था, उसे मैंने भाई का प्रेम दे देना निश्चय किया। मैंने उसे अपना सगा भाई समझ लिया। मेरी पत्नी भी उसे मेरे ही समान प्यार करने लगी और अपना पति मानने लगी।"

"तुम जो-कुछ उसे दे सकते थे, तुमने वह सब-कुछ उसे दे दिया, फिर क्यों उसने अपना दिल अलग काट लिया तुमसे?"

"मैंने एक कपड़े की दुकान खुलवा दी उसके लिये। तीन वर्ष हमारे बीच में बड़े प्रेम से बीते। मैंने कभी एक क्षण के लिये भी उसमें कहीं पर कोई भिन्नता न पाई। आरंभ में कुछ दिन तक उसकी बोली में कुछ विदेशीपन पाया था, पर छः ही महीने में उसके भीतर से मेरा सगा भाई बोलने लगा। कितनी आसानी से उसने अपनी जन्मजात बोली हमारी भाषा में भुला दी! बार-बार मुझे यही ध्यान आता एक माता-पिता से जन्म लेने से ही हम भाई नहीं होते।"

बूढ़े दादा बोले—"अजीब हालत है इस संसार की! कहीं पर इस में टिकाऊपन नहीं है। पेड़ की तरह से कोई चीज़ बढ़ती जायगी तो एक दिन आकाश को छूकर क्या देवताओं के भेद को न जान लेगी? इसी लिये एक हद के बाद देवताओं के शाप से पेड़ सूख जाता है। लकड़ी कोयले में और कोयला फिर जिस मिट्टी से पेड़ पनपा था, उसी में समा जाता है।"

"मैंने पैसे की कभी कोई बड़ी कीमत नहीं लगाई और न पैसेवालों को ही धरती पर सबसे बड़ा आदमी समझा। लेकिन मेरा वह चीनी भाई, तीन साल तक वह मेरे विचारों के नीचे दबा रहा, फिर क्या

हुआ ? वह खूब धन कमाने लगा। उसने धन कमाना ही पौरुष जाना बूढ़े दादा, उसने यश की कमाई को कोई चीज़ ही नहीं समझा।"

"उसकी तुम्हारी उमर में भी तो फर्क होगा।"

"हाँ, दस बरस का फर्क है। और हमारी स्त्री की उमर उसके नज़दीक है, इसीलिये उन दोनों की अधिक विध लग गई और उन दोनों ने मुझसे छिपाकर एका कर लिया। मेरी कभी धन जमा करने पर नीयत नहीं रही।"

"मैं समझ गया। उन दोनों ने तुमसे छिपाकर धन जमा करना शुरू किया होगा। झगड़े की सारी जड ही वह है।"

"उसके छोटे पति ने अपनी प्रियतमा की माला के लिये कुछ मूंगे और कुछ मोती जमा कर रखे थे। मुझे दिखाए नही थे कभी, लेकिन मेरे देखने में आ गए वे। मैं इस बात को मन में रखकर चुप हो गया था।"

"तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें पहनकर नहीं दिखाई वह माला ? उसकी सुरुपता को देखने का क्या अधिकार नहीं था तुम्हारा ?"

"नहीं, वे दोनों यही समझते थे कि कलजन की सुन्दरता को समझने की दोनों आँखें फूट चुकी है। बूढ़े दादा, किसी हद तक यह बात झूठ भी नहीं थी। एक दिन मेरे पास एक बुढ़िया अपने एकलौते बेटे को लेकर आई। वह राजरोग से पीड़ित था। बुढ़िया के पास कुछ भी बाकी बचा नहीं था। जो-कुछ खेत और ज़ेवर थे, वह सब बेटे की दवा-दारू में खर्च कर चुकी थी। असल बात यह थी ठीक तरह से उसका इलाज नहीं हुआ था, ठगों ने उसकी संपत्ति लूट ली थी और बेटे की बीमारी दिन-दिन खराब होती गई। कहीं से वह मेरा नाम सुनकर आ पहुँची। मैं क्या करता, मुझसे उसके आँसू देखे नहीं गए। मैंने यथाशक्ति उसकी सहायता करने की ठान ली। बीमारी भयानक थी, उस पर अताइयों ने उसे और भी खराब कर दिया था। मोती और मूंगे के भस्म को मिलाकर एक दवा मुझे मालूम थी। वह बिचारी कहाँ से लाती ? मेरे पास भी तैयार न थी। मुझे अपनी स्त्री की वह माला याद आई।"

बूढ़े दादा बोल उठे—"मैं भी कहूँगा हकीम जी रूप को देखने की आँखें तुमने जरूर गँवा दीं।"

"लेकिन उस बुढ़िया के बेटे को मैं जीवित ही देखना चाहता था। बूढ़े दादा, तुम्हें ताज्जुब होगा, मुझे जरा भी इस बात का घमण्ड नहीं कि उसका बेटा मेरी दवा से अच्छा हुआ। अच्छा तो वह भगवान की ही दया और आशीर्वाद से हुआ, सिर्फ एक निमित्त मैं बना, और उस बूढ़िया को मरते समय सुखी देख सका—इसकी मुझे बड़ी खुशी है।"

"तुमने उसे किस दवा से अच्छा किया था ?"

"उसी मूंगे और मोती के भस्म के योग से।"

"क्या तुम्हारी स्त्री ने अपनी माला बलिदान कर दी थी ?'

"नहीं, मैंने उसे चुरा लिया।"

"ऐसा क्यों किया ?"

"माँगने से वह कदापि न देती।"

"जब उसे चोरी मालूम हुई तो क्या हुआ ?"

"झूठ बोलने की मेरी आदत नही। जब वह बोली मेरी माला खो गई तो मैंने कह दिया उसे फूंककर दवा में बदल दिया गया। वे दोनो मेरे साथ गाली-गलौज करने को तैयार हो गए। उसी दिन मुझे चीनी भाई की सारी सुशीलता का मर्म मिला। मैंने उसे बताया एक निराधार वृद्धा को मरते समय सुखी करना पत्नी के हार पहनने से कहीं बढ़िया चीज है।"

बूढ़े दादा गद्‌गद होकर बोले—"लेकिन इस मर्म को अधिक लोग कहाँ समझते हैं ?"

"बस उसी दिन से हमारे घर के भीतर दरार पड़ गई बूढ़े दादा, दरार के उस पार वे दोनों थे और दरार के इस पार अकेला मैं। कुछ दिन तक मेरी और उनकी आपस में बातचीत भी बन्द रही। मैं इधर-उधर गाँवों में चला जाता कभी घूमने और कभी बीमारों का बहाना बनाकर। मेरी अनुपस्थिति में उन्होंने न जाने मेरे विरुद्ध क्या-क्या

षड्यन्त्र रच डाले। पहली बार मैं दो महीने बाद लौटा। प्रवास में रह जाने के कारण मेरा मन बदल गया। कुछ मैं उन दोनों की नादानी को भूल गया, कुछ मैंने क्षमा कर देना उचित समझा। मैंने कोशिश की, पहले ही के प्रेम को लेकर उनके साथ मिला। दो-चार दिन ठीक बीते, लेकिन फिर शीघ्र ही हमारे बीच में वही भेद-भाव पनप गया।"

"हमारा दिल काँच का बर्तन है, उसके टूट जाने पर दुनिया के किसी भी मसाले से वह जुड़ नहीं सकता।"

"उसकी पहली शादी मेरे साथ हुई थी, उसे मेरा ही पक्ष लेना था। लेकिन वह मुझे धोखा दे गई।"

"वह उमर में अपने दूसरे पति के निकट थी, तुमने यह बात बता दी है मुझे।"

"नहीं, उमर का उतना पक्ष नहीं इसका एक दूसरा और ज़बरदस्त कारण था। चीनी भाई अफ़ीम खाता था और उसने स्त्री को भी उसका आदी बना दिया था।"

बूढ़े दादा हँसकर कहने लगे—"हकीम जी, तुम्हारी यही ग़लती हो गई, अगर तुम भी अफ़ीम खाना शुरू कर देते तो तुम्हारे विचार ज़रूर उनके साथ मिल जाते। क्या वे शराब नहीं पीते थे?"

"वह तो पीती ही थी, चीनी भाई को अच्छी नहीं लगती थी। वह सदैव अफ़ीम ही खाता था और उसका साथ देने के लिये उसने भी अफ़ीम ही खानी शुरू कर दी।"—कहकर कलजन कुछ देर के लिये चुप हो गया।

बूढ़े दादा के मन में कौतूहल बढ़ गया। उसने पूछा—"फिर क्या हुआ?"

"हम दोनों समझ गए कि अब हमारे मन किसी तरह शुद्ध नहीं हो सकते।"

बूढ़े दादा ने कुछ चोआ और कुछ शिंग आग पर डाल दिए—"एक प्याला चाय और बना देता हूँ।"

"नहीं, अभी नहीं," कलजन ने अपनी जीवनी के सूत्र फिर पकड़े—"धीरे-धीरे चीनी भाई ने स्त्री के साथ न जाने क्या षडयंत्र किया, मुझे उसकी दूकान में माल कम होता दिखाई दिया। एक दिन उसने कुछ रेशम खरीदने के लिए चीन को प्रस्थान किया। उसके थोड़े ही दिन बाद भाई की बीमारी की बात बनाकर श्रीमती जी भी अपने मैके को चली गईं।"

"साले की बीमारी पर तो तुम्हें भी जाना चाहिए था।"

"हाँ, जब कई दिन हो गए तो मैं गया वहाँ और उनका सारा षड्यंत्र फूट गया। चीनी भाई जिस घोडे को मोल लेकर चीन को गया था, वह घोड़ा मैंने अपनी ससुराल के एक खेत में चरते देखा। मैंने इसका किसी से कोई ज़िक्र नहीं किया। दूसरे दिन मेरे सबसे छोटे साले ने मुझसे कहा—'तुमने जीजी को क्यों नाराज़ कर दिया, वह छोटे जीजा के साथ चीन जा रही है।' फिर तो सारी बातें मुझ पर खुल गईं। मैं बिगड़ उठा। पहला पति होने के कारण जब तक मैं उसका परित्याग न करता दूसरे पति को कोई अधिकार नही था कि वह बिना मेरी राजी के उसे चाहे जहाँ ले जाय।"

बूढ़े दादा ने इस बात का अनुमोदन किया।

"मैंने उसी दिन पंचायत बुलाई। सबने मेरे ही पक्ष में फैसला दिया और मैं दूसरे ही दिन उसे लेकर ल्हासा को चला।"

"चीनी भाई कहाँ था ?"

"ससुराल में ही न जाने कहाँ छिपा बैठा था।"—कलजन की आँखें भारी हो चली थीं।

बूढ़े दादा ने उसके लिये अपने साथ ही बिस्तर लगा दिया और चाय बनाने लगा।

कलजन ने कहा—"मुझे क्या मालूम ! अफ़ीम उसके पास थी ही, घर से चलते वक्त उसने एक शीशी में थोड़ा-सा तेल रख लिया था। हमारे मार्ग के दो पड़ाव तक कुछ नहीं हुआ, तीसरे पड़ाव के आरम्भ

होने पर मैं नहीं जानता उसने किस समय अफ़ीम तेल मिलाकर पी लिया और जब मुझ पर भेद खुला तब बड़ी देर हो गई थी। एक जन-शून्य निर्जन में जब बर्फ़ का तूफ़ान उठ चुका था उसने मेरी गोद में प्राण त्याग दिए।"

३

पिछले पृष्ठ

कलजन की बातें सुनते-सुनते बूढ़े दादा को नींद आ गई लेकिन कलजन की आँखों में नींद कहाँ ? जीवन के कुछ पिछले पृष्ठ जो उसको आज उलटने पड़े थे, वे अब फिर और भी स्पष्ट होकर उसकी आँखों के आगे नाचने लगे ।

वह स्वप्न नहीं था, क्योंकि उसमें जीवन का प्रतिबिंब था। वह सत्य भी नहीं था, क्योंकि उसमें परिमाण न थे। स्मृति के परदे पर वह अतीत की प्रतिध्वनि ! कलजन उस अँधकार मे आँखें बन्द किये हुए देख रहा था ।

बाहर सर्वत्र बर्फ जमी हुई थी जो आग की गरमी पाकर कहीं-कहीं घरों की छतों पर से टपटपा रही थी । आकाश में बादल का कोई भी टुकड़ा नहीं था। तारक चमक रहे थे ऊपर और धरती पर हिम की चादर के कारण चाँदनी का भ्रम भास रहा था ।

कलजन के पिता एक साधारण स्थिति के व्यापारी थे। सिक्कम, नेपाल और तिब्बत में एक जगह का माल दूसरी जगह ले जाकर अपनी गुज़र करते थे। चमरियाँ और बकरियाँ उनके माल ढोने की माध्यम थीं। कुछ दवा-दारू और झाड़-फूंक का काम भी करते थे। नेपाल में ही उन्होंने विवाह किया था। कलजन उसी नेपाली स्त्री से पैदा हुआ था। बचपन ही में उसकी माता मर गई थी। पिता देश-विदेश ही में रहते थे। इस अभाव से उसके भीतर एक आत्मनिर्भरता जाग उठी ।

आत्म-निर्भरता के सहारे उसकी कठिनाइयों से मैत्री भी हो गई। एक उदासीनता उसके मानस में फूट उठी बचपन ही से, जब उसके पिता

व्यापार के लिये विदेशों में घूमते होते तो कलजन ल्हासा में अपने एक रिश्तेदार के घर रहता था। दिन में पाठशाला में जाता और सुबह-शाम उनके यहाँ काम करता। जब उसके पिता ल्हासा लौट आते तो उसे दिन में पाठशाला को त्याग कर उनके जानवरों को जंगल में चराना पड़ता था।

बड़े होने पर कलजन को पिता के वाणिज्य में कोई आकर्षण नहीं मिला, लेकिन उनकी दवा-दारू ने जरूर उसका ध्यान खींच लिया। बचपन में वह सड़कों पर से कागज के टुकड़े बटोर किसी में कोयला, किसी में ठीकरा और किसी में बालू पीसकर पुड़ियें बाँध लेता और अपने साथी बच्चों को बीमार बनाकर उनका इलाज करता था। बाद को जीवन के लिये उसकी यही वृत्ति बन गई। उसके पिता को जो कुछ नुसखे-लटके, टोने-टोटके मालूम थे, उन्होंने वे सब बेटे को सौंप दिए और कहते हैं वह एक बार कहीं हिमालय पार करते हुए किसी अवलांश के नीचे दबकर मर गए, किसी-किसी का यह भी ख्याल है तिब्बत के डाकुओं ने उन्हें मारकर लूट लिया।

बहुत दिन तक कलजन पिता के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। वह नहीं लौटा। लेकिन उसके भीतर एक भरोसा जागता रहा कि उसका पिता जीवित ही है। फिर लोगों ने कहा कि अब उसकी आशा छोड़कर उसे जीविका के लिए कोई धंधा पकड़ना चाहिए। दवा-दारू में ही उसकी रुचि थी और धीरे-धीरे उसी में उसको सफलता मिलने लगी।

कलजन युवा हुआ। विवाह के लिये उसके मन में कोई रुचि नहीं जागी, ऐसा कोई सम्बन्धी-नातेदार भी उसका नहीं था जो उसका विवाह करा देता। वह अपनी साधु वृत्ति और दवाओं के लिये गाँवों में प्रसिद्ध हो गया। लोग उसे बिना गुरु का लामा कहने लगे।

सिनेमा के परदे पर मानो कलजन अपने जीवन के पिछले वर्षों को बड़ी त्वरित गति से देख रहा था। नट ही दर्शक हो गया था। वर्ष सिमट कर क्षणों में और विस्तार संक्षिप्त होकर बिंदु में समा गया था।

कलजन को वह सुन्दरी बाला याद आई जो बाद को उसकी स्त्री बनी। जब वह पहले-पहल उसके पिता के इलाज के लिए उनके गाँव में गया। कलजन की दवा और सुश्रूषा सफल हो गई।

बीमार पिता अच्छा होने पर बोला—"हकीम जी, तुमने मुझे अच्छा कर मेरे बाल-बच्चों की रक्षा कर दी, इसका कोई बदला नहीं दे सकता मैं। तुम्हारी इस भलमनसाहत और इस सूने जीवन को देखकर मेरे मन में बड़ी दया जाग उठी है। नहीं, मैं तुम्हें अब ल्हासा को अकेले ही नहीं जाने दूँगा।"

और इसी के फलस्वरूप कलजन को अपने बीमार की कन्या के साथ विवाह करना पड़ा। कन्या सीधी-सादी, उसके स्वभाव के ही अनुरूप थी। बहुत दिन संसार की सीमा कलजन को उस बहू की छाया में ही समाई जान पड़ी। वह पति की सारी गृहस्थी का भार उठाने लगी। ग्राम की कन्या एक क्षण के लिये भी अपना समय व्यर्थ नहीं बिताती थी। उसने पति की दिनचर्या में से उसका आधा काम अपने सिर-हाथों पर उठा लिया और आधा समय उसके लिये अवकाश का बनाकर रख दिया।

कलजन को न दिन में सोने की आदत थी, न कहीं चौपड़ या ताश खेलने की। वह लोगों के बीच में बैठकर न अपनी शेखी बघारता था, न दूसरों की निंदा करना उसका काम था। पत्नी की नियुक्ति से जो समय उसके लिये बच गया था, उसका वह क्या करे? ससुराल से उसे दहेज में एक प्रार्थना-चक्र—मानी मिली थी, उसके जीवन-क्रम में बदलाव हुआ। जौ, जई, मटर, गेहूँ जो कुछ भी वह पहले अपनी दवा-दारू के प्रतिदान में पाता वह सब उसे ही चक्की चलाकर आटे या सत्तू के रूप में पीसना पड़ता था।

शादी हो जाने पर उस चक्की की मूंठ पर उसकी स्त्री के हाथ पड़ गए और वह घुमाने लगा मानी—'ओ३म् मणि पद्मे हुँ!—ओ३म् मणि पद्मे हुँ!' एक मूंठ धरती पर के पाट को घुमाती थी, दूसरी में

सृष्टि का चक्र घूमने लगा। जीवन के लिये दोनों ही आवश्यक है। स्थूल पर ही सूक्ष्म का आधार है। आटे और सत्तू पर से उठकर कलजन की कल्पना आकाश में मँडराने लगी। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए। ये तीन वर्ष उसके जीवन में बड़े सुख के थे, इसीलिये उन्हें बीतने में कोई देर नहीं लगी।

उस रात को उसके दिमाग में उसकी पत्नी और चीनी भाई यही घूम रहे थे। उन तीन वर्षों के बीत जाने पर कलजन के जीवन में एक नई दिशा प्रकट हुई। उसकी कल्पना में चीनी भाई का वह प्रथम प्रवेश उस रात को बड़े विशाल आकार में फिर जाग पड़ा। उसने सोचा, वह उसी की दया थी, कैसा अजीब रूप रखकर उसने उसे डस लिया।

उसने चीनी भाई को अपने घर में जगह दी। उसकी दवा और भोजन दोनों का प्रबन्ध उसकी दयालुता ने अपने कंधों पर ले लिये। चीनी भाई धीरे-धीरे, कलजन के मानस में तो घुल-मिल गया ही था, उसके घर में भी समा जाने लगा।

सिर्फ दो कमरों का था मकान। एक में उसके सोने और खाने-पीने का प्रबन्ध था, दूसरे में उसकी बैठक। एक सन्दूक में कुछ दवाओं की शीशियाँ थीं, कुछ किताबें। ऊपर धन्नियों में बँधी जड़ी-बूटियों की थैलियाँ लटकती थी। एक तख्त पर कुछ चँवर गायों, हिरन और बकरियों की खालें बिछी रहती थीं। उसमें कलजन कभी दवा घोटता और कभी मानी घुमाता था।

चीनी भाई को वही कमरा दिया गया। वह घटना न-जाने कब हुई, कलजन को वह उसी रात की सी जान पड़ी। उसी तख्त में लिटा दिया गया चीनी भाई। कलजन और उसकी स्त्री दोनों उसकी सेवा-सुश्रूषा में लगे। हकीम ने अपनी स्त्री से ताकीद कर कहा—"देखो, इस बीमार को एक क्षण के लिये भी विदेशी, विजातीय और कोई फालतू समझोगी तो फिर यह अच्छा न हो सकेगा। जो दरजा मेरा है इस घर में वही इस अतिथि का भी होगा।" स्त्री ने अक्षरशः पति की उस आज्ञा

का पालन किया।

चीनी भाई द्रुत गति से अच्छा हो चला। वह चलने-फिरने लगा। वह हँसने-बोलने लगा। उन दोनों कमरों के बीच में जो द्वार था, वह जाड़े की ऋतु आने पर बन्द कर दिया गया। चीनी भाई के मन में कोई भेद-भाव न जम जाय, उसे साफ कर देने के लिये कलजन ने उससे कहा—"चीनी भाई, अगर यह बीच का दरवाजा हम आज से बन्द कर लें तो हम दोनों की ठंड से रक्षा हो जाय।"

ऐसा ही किया गया। उस दिन से चीनी भाई के मन में ज़रूर कुछ असमंजस बस गई। उधर कलजन ने एक दिन अपनी धर्मपत्नी से कहा—"चीनी भाई बहुत अच्छा आदमी है वैसे, लेकिन फिर भी तुम्हें उसके साथ मतलब के बाहर की ज्यादा बातें करने की ज़रूरत ही क्या है?" स्त्री के मन में भी एक कौतूहल उपज गया उसी दिन से। बीच के द्वार के ढक जाने से वह उस चीनी भाई को देखने के लिये व्यग्र हो उठी और उसके साथ के मुक्त संभाषण के लिये मुख के बन्द हो जाने से और भी वह उसके लिये लालायित होने लगी।

फिर कुछ दिन बाद—तब कलजन ने उसके लिए कपड़े की दूकान नहीं खोली थी—एक दिन जब वह कुछ देर में बाजार से लौट रहा था उसने उन दोनों को द्वार के बाहर एक दीवार की ओट में बहुत निकट से कुछ खुसपुसाहट करते सुना। उस पर नजर पड़ते ही दोनों चिल्ला उठे—"काला बाघ!"

"काला बाघ? कहाँ?"—कलजन ने पूछा।

चीनी भाई ने जवाब दिया—"मेरे कमरे में घुस आया। अगर यह श्रीमती आकर शोर न मचातीं तो वह ज़रूर मेरी टांग घसीट ले गया होता।"

कलजन बड़ी जोर से हँसा—उसने उसकी पीठ थपथपाकर कहा—"चीनी भाई, यह बाघ हमारे मन ही के भीतर है। चलो, मैं उस बाघ को भगा देने के उपाय करूँगा अभी।"

कलजन की पत्नी कुछ शरमा-सी गई। उसने उससे कहा—"शरमाने की क्या बात है ? छिपने और छिपाने की वृत्ति ही तो पाप है। पाप से बढ़कर भयानक बाघ और कौन हो सकता है। बाघ हमें घर के बाहर घायल करता है, यह हमें घर और बाहर दोनों जगह।"

सब भीतर को चले। चीनी भाई अपने कमरे को और वे दोनों पति-पत्नी अपने कमरे को। कलजन ने कहा—"चीनी भाई, आज से अब तुम इधर से भी अपने कमरे को जा सकोगे। चलो इधर ही से।" उसने चीनी भाई का हाथ खींच लिया और उधर ही से उसे अपने कमरे को ले गया।

भीतर जाकर उसने चीनी भाई को अपने पास बैठाकर कहा—"चीनी भाई, विश्वासघात से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। लो मैं इस बीच के द्वार को खोल देता हूँ कि अब कभी अगर फिर बाघ आ गया, तो तुम दोनों को एक दूसरे की सहायता के लिये जाने में आसानी हो।"

इसी समय बाहर से घोड़ा लेकर कोई आया और पुकारने लगा—"हकीम जी, हकीम जी !"

कलजन भीतर से बोला—"अभी आता हूँ।" इसके बाद उसने चीनी भाई से कहा—"मुझे शिगर्ची से बुलाने यह आदमी आया है। अपने-अपने विश्वास की बात है। ल्हासा में और भी इतने योग्य पुरुष हैं, उसने जब मुझे ही बुलाया है तो मुझे तुरन्त ही उस बीमार की औषधि के लिये जाना चाहिए।"

उसकी पत्नी कुछ कहने लगी। चीनी भाई भी मुँह खोलने लगा। लेकिन कलजन ने दोनों को चुप रह जाने का इशारा किया। तुरन्त ही अपनी औषधियों की थैली उठाकर बाहर चला गया और घोड़े पर सवार होकर उस आदमी के साथ चल दिया।

पत्नी ने बाहर आकर आवाज़ दी—"कब आओगे ?"

"दस-बारह दिन तो आने-जाने के ही हुए, रहना जितने दिन भी

पड़े।"

चीनी भाई बोला—"जल्दी आना।"

कलजन जाते-जाते बोला—"डर की कोई बात नहीं चीनी भाई, मैंने वह दरवाज़ा खोल दिया है, जो तुम दोनों के बीच में लालच के मेघ उठाए हुए था।"

वास्तविकता में न-जाने क्या था, पर कलजन कई वर्ष पहले की उस शिगर्ची की यात्रा को घोड़े पर चढ़कर तय करते हुए देखने लगा—कुछ देर तक चीनी भाई और उसकी स्त्री ने हकीम जी को शिगर्ची की ओर जाते हुए देखा। एक मनुष्य उसके घोड़े के पीछे-पीछे उसका सामान लिए हुए चल रहा था और एक जलती हुई लालटेन लेकर आगे-आगे। उन दोनों ने आपस में बातचीत कर निश्चय किया—"ज़रूर आज हकीम जी को किसी बड़ी जगह से ही बुलावा आया है। इस समय तो वह एक ही घोड़े पर जा रहे हैं। आते वक्त कई घोड़ों के साथ आयेंगे और हर एक में कई तरह का सामान लदा होगा।"

कलजन आगे को बढ़ता गया, पर उसकी कल्पना पीछे अपने घर पर देख रही थी। चीनी भाई ने कहा—"हे सुन्दरी, अब कब तक तुम हकीम जी को देखती रहोगी? वह अब उस चूने और गेरू से पुती हुई दुरंगी दीवार की ओट में चले गए हैं। उनके चाकर के हाथ की लालटेन का प्रकाश भी अब छिप गया और कुछ ही देर में पटी हुई गली पर से उनके घोड़े की टापों की ध्वनि भी मिट जायगी। चलो, हिमालय से आनेवाली ठंडी हवा का दंश बिच्छू के डंक से क्या कम है। हम भीतर चलें और बाहर का द्वार बन्द कर दें। हकीम जी की उदारता के गुण गायें क्योंकि वह बीच के दरवाज़े को हमारे लिये आज खोल गए हैं।"

तिब्बत की बाला ने कहा—"हे चीन के सिपाही, तुमने मेरे पति के प्रेम में कैसे हिस्सा पा लिया? मैं तुम्हारी उस चतुराई को ढूंढती फिर रही हूँ। मैं गाँव की एक भोली-भाली लड़की, कैसे उस भेद को पा सकूंगी। अगर तुम स्त्री होते तो मैं तुम्हें अपनी सौत बनाकर अपनी

आँखों में रख लेती, शिगर्ची की इस लम्बी यात्रा में मेरे पति रात के अँधेरे में जा रहे हैं, देवता उनकी रक्षा करें। मैं दरवाज़ा बन्द कर देती हूँ क्योंकि उनकी मूर्ति मेरे हृदय में ही है। चलो हम दोनों मिलकर उनकी कठिन यात्रा के मंगल की प्रार्थना करें।"

द्वार बन्द कर दोनों घर के भीतर चले गए। तिब्बत की बाला अपनी शय्या में चली गई और चीनी भाई बैठक में अपने तख्त पर।

कुछ देर तक तिब्बत की बाला ने चूल्हे के गरम भूभल को कुरेदकर अपने हाथ सेंके, फिर उस पर चाय रख दी और कहने लगी—"हे चीन के सिपाही, तुम बड़े मतलबी जान पड़ते हो। कम्बल में सिमट कर उतनी दूर कहाँ बैठ गए? उनके इस बीच के द्वार को खोल देने का मतलब कब तुम्हारी समझ में आयेगा? आओ, हम उनकी यात्रा के लिये यहाँ एक साथ बैठकर भगवान से प्रार्थना करें। जितने अधिक मन प्रार्थना में जुड़ते हैं, उतनी ही अधिक उसकी शक्ति बढ़ती है।"

चीनी सिपाही वहाँ आया और उन दोनों ने हकीम जी की यात्रा की सफलता के लिए प्रार्थना की। चीनी प्रार्थना के अनन्तर फिर अपने कमरे की ओर जाने लगा। तिब्बती बाला बोल उठी—"उतनी दूर पर का वह तख्त ही क्यों तुम्हें इतना प्रिय हो गया। अब तुम बीमार भी नहीं हो कि तुम्हारा खाना तुम्हारे तख्त पर ही दिया जाय। और तुम्हें बाहर से घूमकर भी नहीं आना पड़ेगा क्योंकि जिस साँकल पर तुम्हारी आकांक्षा बँध गई थी, उसने खुलकर दोनों द्वारों की बाँहों को आज़ाद कर दिया है।"

चीनी सिपाही मुसकराकर वहीं पर बैठा रह गया।

बाला कहने लगी—"उनके लिये भी भोजन तैयार था, लेकिन वह शिगर्ची के लामा के अतिथि होने के कारण और भी मूल्यवान और स्वादिष्ट भोजन के अधिकारी हो गए हैं। हम उनके हिस्से को खाना बचाकर किसी भूखे प्राणी को दे देंगे। वह तृप्ति पाकर जो आशीर्वाद देगा उससे उनकी यात्रा के तमाम संकट दूर हो जायेंगे।"

चीनी ने छुपा के भीतर से अपना फुरू बाहर निकाला और उसे अपने सामने रखा।

बाला बोली—"हे चीनी यूवक, जिस तरह चीन की चाय और तिब्बत का मक्खन मथानी में मथकर एक मन और प्राण हो जाता है, ऐसे ही आज की रात हम दो प्यालों में उसे पीकर कोई भिन्नता न उपजायेंगे ? क्योंकि इस गृह का स्वामी बड़ा उदार है। वह बीच के द्वार को उन्मुक्त कर खुद शिगर्ची के मठ में आदर का आसन पाने को चला गया है।"

दोनों एक ही प्याले में से चाय पीने लगे। चीनी कहने लगा—"मेरी समझ में जूठा इतना खतरनाक नही है जितना झूठा।"

भीतर जब वे दोनों बारी-बारी से इस प्रकार चाय पी रहे थे, उस समय बाहर फिर लौट आया था कलजन।

घर से कुछ दूर जाने पर न-जाने कलजन को क्या याद आई, उसने अपने साथ के सेवक से कहा—"भाई, एक थैली दवाओं की घर ही भूल आया हूँ, उसे ले आना जरूरी है।"

घोड़ा लौटा दिया गया और लालटेनवाले सेवक ने भी अपनी दिशा बदल दी। कलजन अपने घर से कुछ दूर ही घोड़ा छोड़कर पैदल वहाँ जा पहुँचा। उसने चुपचाप लकड़ी के तख्तों की दरजों पर से भीतर झाँका। उसने देखा, वे दोनों एक ही फुरू से चाय पी रहे थे।

बाला कह रही थी—"उस गृह-स्वामी का मार्ग कंटकहीन और यात्रा विजयिनी हो, जिसने इस बीच के द्वार को खोलकर इन दोनों कमरों का भेद मिटा दिया।"

और चीनी सिपाही समर्थन कर रहा था—"और उस गृह-स्वामिनी की जय हो, जिसने दो फुरूओं को एक कर उसमें दोनों घूंटों की संधि कर दी।"

कलजन ने बाहर से देखा और सुना। उसके दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बँधने लगीं।

इसी समय भीतर चीनी बोला—"मैं बीमार था, उसने मुझे तंदुरुस्ती दी, मेरे सिर के ऊपर कोई छत नहीं थी, उसने मुझे अपने घर में आश्रय दिया, मेरा दुनिया में कोई न था, उसने मुझे बड़े भाई का रिश्ता दिया। उसकी जय हो, उसने यह बीच का द्वार खोलकर मुझे अपने दिल में जगह दे दी।"

बाहर सुननेवाले कलजन की मुट्ठियाँ अपने-आप खुल गईं। वह लौट गया और अपने साथियों से कहने लगा—"थैली मैं पहले ही ले आया हूँ। ऐसे ही मन में एक भ्रम उपज गया। चलो।"

सब फिर पहले की तरह अपनी यात्रा में बढ़ने लगे।

भीतर बोलनेवाली बाला ने सावधानी से अपने होठों पर का फुरू खींचकर कहा—"कोई है बाहर !"

"तुम्हें यह कैसा भय व्याप गया ? बाहर कोई भी हो, हमें गृह-स्वामी की अनुमति प्राप्त है। हम अपने घर के भीतर हैं और हमको अलग-अलग कर डराने वाला बीच का द्वार विमुक्त है सुन्दरी, अब हमें बाघ का कोई भी भय नहीं है।"

सुन्दरी हँसने लगी। भोजन समाप्त कर चीनी सिपाही अपने तख्त पर सोने चला गया। एक कोने में बोधिसत्व की प्रतिमा के पास एक घी का दीपक जल ही रहा था।

सुन्दरी ने पुकारा—"चीनी युवक !"

"नहीं सुन्दरी, भय का कोई भी आधार नहीं है।"

"जाड़े का तो है। तुम्हें क्या नहीं लगता ?"

"लगता तो है, यह बीच का द्वार खोल देने से जरूर बढ़ गया है।"

"उपाय कुछ सोचते क्यों नहीं ?"

"बीच का द्वार बंद नहीं किया जायगा। इससे हम गृह-स्वामी की आज्ञा को तोड़ देंगे। उनकी पीठ पीछे, यह बात ठीक नहीं जान पड़ती।"

"तो फिर हम अपना ओढ़ना-बिछौना एक कर लें।"—सुन्दरी ने कहा।

सिपाही चौंक पड़ा—"सुन्दरी ?"

'हाँ चीनी युवक ! मनुष्य के बनाये हुए क़ायदे, हर जगह अलग-अलग हैं। क्योंकि सभी जगहें एक-सी नहीं हैं, लेकिन भगवान् के बनाए हुए क़ायदे सभी जगह एक-से हैं। यह मकान भगवान् का बनाया हुआ नहीं है। हम इसके दरवाज़ों को खोलने-बंद करने में ख़ुद मुख़्तार हैं। और मैं तुमसे निश्चय रूप से कहती हूँ अगर हम अपने कंबल एक कर लें तो इस बाहर के द्वार की भी हमें कोई चिंता नहीं है। इसे भी खोल दिया जायगा तो सर्दी नहीं सता सकेगी हमें।"

"सर्दी भी कुछ न कर सकेगी और लोगों का भी कोई डर नहीं, लेकिन बाघ का क्या होगा ?"

ज्योंही वे दोनों उन थैलों को मिला रहे थे। आधी-आधी नींद में जगे हुए कलजन के मुँह से उस कल्पना को देखते हुए एक चीख-सी निकली।

सोता हुआ बूढ़ा गृह-स्वामी जाग पड़ा, उसने कलजन को झकझोर कर कहा—"हकीम जी ! हकीम जी ! क्या हो गया तुम्हें ?"

"कुछ नहीं, एक डरावना सपना देखा मैंने।"

"तुम्हारे मन में भय घुस गया है पत्नी की मृत्यु का। संसार ऐसा ही नाशवान है, तुम्हें इस डर को निकाल देना चाहिए।"

"हाँ दादा।" बड़ी उदासीनता से कलजन बोला।

"कितना समय हो गया होगा ?"

"आधी रात।"

बूढ़े दादा ने करवट बदलकर कहा—"हाँ, तुम्हारा अनुमान ठीक है। दो बजे से फिर मेरी नींद टूट जाती है।"

"मुझे तो बिलकुल नींद ही नहीं आई।"

"फिकर के मारे। चीनी भाई का क्या करोगे ?"

"वह अच्छा आदमी है, मैं उसकी खोट को उसकी अच्छाई की ओट में छिपा देने को तैयार तो हूँ लेकिन वह न-जाने क्यों मेरे सामने आने

से डर रहा है।"

"वह चीन नहीं गया ?"

"नहीं गया। उसका घोड़ा मैंने ससुराल में देखा।"

"वह दूसरे घोड़े में नहीं जा सकता क्या ?"

"नहीं।"

"उसकी दूकान का क्या होगा ?"

"उसकी दूकान बंद है।"

"वह उसके लिए तो आयेगा तुम्हारे पास।"

"नहीं कह सकता।"

"तुम उसे माफ कर दो तो आयेगा।"

'मैंने उसके लिए कोई क्रोध मन में जमा नहीं किया है।"

"यही ठीक है। हकीम जी सो रहो अभी रात बहुत है।"—बूढ़े दादा ने फिर सोने की चेष्टा की और थोड़ी देर में उनकी नाक बजने भी लगी।

लेकिन कलजन फिर उसी अवस्था में रहा। वह न जागृति ही थी, न स्वप्न ही। उसने देखा चीनी भाई फिर बीमार होकर उसके पास आया और बोला—"बड़े भाई, मुझे माफ कर दो।"

कलजन ने उसे छाती से लगाकर कहा—"तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है ?"

"मैंने कुछ नहीं बिगाड़ा। मैं फिर बीमार हो गया। मुझे अच्छा कर दो।"

"अच्छा कर दूंगा लेकिन मूंगे और मोती की माला कहाँ से आयेगी ?"

"श्रीमती के गले से निकाल लाऊंगा मैं। वह कहाँ है ?"

"श्रीमती कहाँ है ? मैं नहीं जानता, वह तुम्हारे ही साथ तो भागी थी चीन को ?"

"नहीं, वह मेरे साथ नहीं भागी। उसने मुझसे साफ़ लफ़्जों में कह दिया उसे चीनी भाषा नहीं आती। इसलिए उस अजनबी देश में अन-

जानों के बीच में अनबूझ बोली में वह जाने को तैयार नहीं है।"

"अगर ऐसी बात है तो फिर मूंगे और मोती की माला पहनने के लिये एक औरत लानी पड़ेगी। चीनी भाई, इस बार तुम लाओ कहीं से शादी कर क्योंकि बिना औरत के माला नहीं और बिना माला के मूंगे-मोती नहीं और बिना उनके किसे फूंककर दवा बनाऊँगा ?"

चीनी भाई बोला—"नही बड़े भाई यह बात असंभव है। मैं तुम्हारे देश में परदेसी हूँ, कोई भी नहीं पतियाता मुझे।"

"उमर को देखकर उमर पतियाती है। मैं अब बुढ़ापे की ओर दौड़ रहा हूँ। मेरे पास कोई संपत्ति भी नहीं कि किसी के लालच बढ़ा सकूँ। कितने ही चीन के सौदागर यहाँ मौजूद हैं, उनके मुहल्ले में जाकर तुम्हारा यहाँ परदेसी हो जाने का डर चला जायगा। क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है चीनी कुमारियों की पलटन की पलटन अपने-अपने पतियों की तलाश में यहाँ निकलती है।"

"झूठी बात ! बिलकुल झूठी बात !"—चीनी भाई चीख उठा।

कलजन की तंद्रा भंग हुई। उसने करवट बदली। सुबह की शीतल पवन बहने लगी थी, अब उसे ज़रा गहरी नींद प्राप्त हुई, सपनों में भी कुछ अधिक स्थूलता प्रकट हुई। वह देश और काल का अतिक्रमण कर ल्हासा जा पहुँचा। अपने घर का दरवाज़ा उसने खटखटाया। उस की स्त्री ने उठकर द्वार खोला और बोली—"जाओ, उस तख्त में सो रहो अपनी बैठक में।"

कलजन गर्दन झुकाकर तख्त पर जा बैठा और उसकी स्त्री कहने लगी—"खाना खाने के लिये उधर से घूमकर आना। मैं इस बीच के द्वार को बंद कर देती हूँ।" उसने बड़ी जोर से दरवाज़े भिड़ाकर सांकल लगा दी।

उस आवाज़ से कलजन की नींद टूट गई। उसने देखा, सूर्य की प्रातःकालीन सुनहरी किरणों से बूढ़े दादा का कुटीर उद्भासित हो उठा था। अँगीठी पर चाय खौल रही थी और वह आँगन में कलजन के वस्त्रों

को धूप में फैला रहे थे।

चाय पीकर कलजन बोला—"बूढ़े दादा, अब मुझे जाने की इजाजत दो। मेरा मन जल्दी ही ल्हासा पहुँच जाने के लिये बेचैन है।"

"कपड़े तो सूख जाने दो। बड़ी अच्छी धूप है आज।"

"रास्ते भर रहेगी धूप। क़रीब-क़रीब कपड़े सूख ही गए हैं, जो कसर बाकी है वह पहने-पहने ही निकल जाएगी। मेरे मन की हालत तुम्हें मालूम ही है।"

"इसीलिये तो कह रहा हूँ, दो-चार दिन और यहाँ रहकर अपना दुख भुला जाओ।"—बूढ़े दादा ने बड़े आग्रहपूर्वक कहा।

लेकिन कलजन नहीं माना। बूढ़े ने फिर हठ की—"अब तुम्हें किस घर-बार की चिंता है? मेरी समझ में तो अब तुम्हें जगह-जगह घूमते-फिरते रहकर बिना किसी लोभ-लालच के लोगों का कल्याण करना चाहिए।"

"दादा, ऐसा ही करना पड़ेगा। घर-गिरस्ती का जो कुछ अवशेष बचा है, उसका फैसला कर आता हूँ। चीनी भाई के साथ एक बार भेंट करनी ज़रूरी है।"

"तुम तो कहते हो वह वहाँ नहीं है।"

"लेकिन वहाँ आयेगा वह, उसकी दूकान है वहाँ। उसकी स्त्री के बचे हुए ज़ेवर हैं मेरे पास। इनको लेकर मुझे क्या करना है। ये उसे लौटा दूंगा।"

कलजन किसी प्रकार नहीं माना। बूढ़े दादा ने गाँव में से घोड़ा ला देने को कहा लेकिन वह पैदल ही चला गया। बहुत दूर तक दादा उसे सांत्वना देता हुआ पहुँचा आया। शीघ्र ही फिर उसका अतिथि बनने का वचन लेकर बूढ़ा दादा लौट आया।

४

उत्तरी भारत में

उत्तरी भारत में भैरव के पिता की अच्छी जमींदारी थी। उसके पर्याप्त सुख और ऐश्वर्य था। लेकिन उसे सुखी होना नही बदा था। वह अपने माता-पिता की एकमात्र संतान था। घर के भीतर बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन हुआ था, बाहर भी धनी प्रभु का बेटा होने के कारण सभी लोग अनेक लालचों से उसका आदर करते थे और उसे श्रेय देते थे।

बुद्धि का तीक्ष्ण था भैरव लेकिन ठीक लक्ष्य पर ठहर नहीं सकी उसकी समझ। खेल-कूद, मिथ्या आहार-विहार, जीवन की तड़क-भड़क घर के भीतर ही से शुरू हो गई थी, बाहर संगति ठीक नही मिली।

पढ़ने-लिखने में प्रीति न रही। उसे बेगार समझा उसने, सिगरेट-चाय-और ताशों में जीवन का मार्ग खुलना शुरू हुआ। धीरे-धीरे स्कूल छूट गया और व्यसन बढ़ गए। माता-पिता के उपदेश प्रभावहीन हो गए। उन्होंने कुछ कठोरता बरतनी आरंभ की तो घर से ही ग़ायब रहने लगा। कई-कई दिन हो जाते उसे घर की शकल देखे।

भैरव की माता उसके पिता को दोष देती कि उन्होंने ही उसे सिर पर चढ़ाया और उसके पिता उसकी माता का ही क़सूर बताते। एक दिन उन दोनों पति-पत्नी ने आपस में समझौता किया।

पति बोले—"देखो भैरव की माँ! अपराध न मेरा है न तुम्हारा, अगर हम बेटे के बिगड़ने के कारण को ही ढूँढते रह गए तो अभी जो कुछ समय है उसके सुधार का वह भी हाथ से चला जायगा, फिर लकीर पीटने से कुछ हाथ न आएगा।"

पत्नी की समझ में बात आ गई। वह बोली—"हाँ, अब तुम राह पर आए हो। तुम तो छूट उसके बिगड़ने की सारी ज़िम्मेदारी मेरे ही ऊपर रख देते थे। जब मेरा अपराध नहीं है तो फिर तुम्हारा ही क्यों हो? तुम्हारे एक लड़का, धन-संपत्ति की कमी नहीं, तुम क्यों नहीं उसकी तमाम ज़िदें पूरी करते? क़सूर किसी का नहीं भाग्य का है।"

"भाग्य को भी हम बना लेते हैं। मेरे पास काफ़ी पैसा है, मैं भाग्य पर भी जैसा चाहूँ वैसा रंग पोतकर उसे चमका सकता हूँ।"

"फिर कोई तरकीब सोचो न जिससे यह लड़का हाथ में आ जाय। इसने तो सारे शहर में हमारी हँसी उड़ा दी। दुश्मनों की बन आई।"

"पिछले दिनों यह कैश-बक्स का ताला तोड़कर न जाने कितने रुपए निकाल ले गया। एक महीने बाद बंबई से लौटकर आया, वह भी जब एक-एक दाने को वहाँ मोहताज हो गया। मुझे सब मालूम है कौन बहका ले गया इसे।"

"कौन?"—धीरे-धीरे उसकी पत्नी ने पूछा।

"बताऊँगा समय आने पर।" कुछ सोचते हुए पति बोले—"इतना बड़ा क़सूर किया। बताओ एक भी लफ़्ज कहा मैंने कुछ उससे?"

"कुछ तो कहना चाहिए था।"

"अरे क्या कहता! क्यों कहता? सुनती नहीं हो तुम? वह कहता है, किसी को अधिकार नहीं है धन को तिजोरी में बंद करके रख दे। यह नदी की धारा और पवन के झोंके की तरह बिना किसी रुकावट के धरती पर बहते रहने की चीज़ है।"

"फिर क्या होगा, जब तुम्हारी बात नहीं सुनता तो और किसका कहा मानेगा?"

"कहने-सुनने का ज़माना गया और उसकी उमर भी। अब तो कोई और बात सोचनी चाहिए।"

"पढ़ा-लिखा नहीं उसने, बचपन में बुरी संगत से नहीं रोका तुमने

उसे।"

"पढ़ने-लिखने से भी क्या होता है ? समझ देखती नहीं हो तुम उसकी ? बहस में कोई जीत नहीं सकता उससे ? दुनिया की हर बड़ी घटना की खबर उसे रहती है। अखबारों का कीड़ा और सिनेमा का शौकीन। उसके फैशन, उसकी बातचीत की शैली देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह सिर्फ नौवें दरजे तक ही पढ़ा है। फिर तुम जानती ही हो सोने में सुगंधि नहीं होती।"

"बंबई या कलकत्ते के किसी कॉलेज में भेज दो इसे। जितना वाजिब खर्च हो इसे दे दिया जाय। मेरा गतलब है इसका मन वहीं है। वहाँ भेज देने पर पढ़ने-लिखने में नही लग सकेगा जी ?' पत्नी ने पूछा।

"चूल्हे में जाय पढ़ना-लिखना। पैसा बड़े-बड़े पढ़े-लिखों को नौकर रख सकता है। वहाँ अगर यह निशाचरों के फेर में पड़ गया तो फिर बेटे से भी हाथ धो बैठोगी। बुरा-भला जैसा भी है, आँखों के आगे सब ठीक है।"

"भगवान् जानें क्या होगा ?"—बड़ी निराशा के स्वर में पत्नी ने कहा।

"मेरी समझ में एक बात आई है, उससे बढ़कर दूसरा अब और कोई इलाज नहीं है।"

"कहो भी तो।"

"एक सुन्दर लड़की ढूंढकर इसकी शादी कर दी जाय।"

"यह तो मैं कब से कह रही हूँ, पर तुमने सुना ही नहीं।"

"अब जल्दी करनी चाहिए। मुख्य बात लड़की सुन्दर होनी चाहिए। मुझे किसी के दहेज का लालच नहीं है। भगवान् ने मुझे काफी दे रखा है।"

"भैरव को भी राजी कर लेना चाहिए।"

"उसकी राजी कैसी ? मैं उसका पिता हूँ। मैं जहाँ कहूँगा उसको

करना होगा। अधिक-से-अधिक उसे बहू की फोटो दिखा दी जायगी।"

पत्नी ने कहा—"सूचना तो देनी ही चाहिए उसे।"

"कुछ नहीं, तुम इससे अपने पक्ष की दुर्बलता दिखा दोगी।"

"कहना तो चाहिए ही। फिर तुम ही कह देना किसी चतुराई से।"

"देखा जायगा।"

"सफल हो जायँ तो।"

"सफल होंगे कैसे नहीं? होशियार बहू ढूंढ लेने की बात है। तभी उसकी नाक में ऐसी नकेल पड़ेगी कि इशारों पर राइट-लेफ्ट करे।"

यह उपाय पत्नी के मन में गहरा गड़ गया था। बहू की उपस्थिति से सूने घर में चहल-पहल होगी, यह साध पूरी होने के सिवा बेटा ठीक राह पर आ जायगा। इन बातों को याद कर माता के हृदय में एक नया आनंद छा गया और वह इस खबर को बेटे पर प्रकट कर देने के लिये आकुल हो उठी।

शाम को जब भैरव चाय पीकर घूमने को जा रहा था, उसकी माता ने उसके कमरे में जाकर बड़ी प्रीति के साथ कहा—"भैरव!"

बड़ी रूखाई से उसने जवाब दिया—"क्या कहती हो?"

"बेटा तुम्हारे ही हित की बात।"

"हो गया फिर, लौटकर आने पर कहना। इस समय मुझे देर हो रही है।"

"मेरा जरूरी काम है।"

"मेरा भी तो, मुझे क्लब में जाना है। हमारा ड्रामा हो रहा है।"

"तुम फिर जा सकते हो वहाँ। ऐसी हठ ठीक नहीं है, अब तुम सयाने हो चुके हो। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये एक सुन्दर बहू की खोज में हैं।"

"किसलिये?"

"विवाह के लिये और किस लिये।"

"उसकी आवश्यकता ही क्या है ?"

"मनुष्य का धर्म है वह, और क्या आवश्यकता होनी है उसकी ?"

"मैं ऐसे धर्म को नहीं मानता ।"

"फिर तुम किस धर्म को मानते हो ?" माता ने तेजी से बाहर को जाते हुए पुत्र की बाँह पकड़कर कहा—"तुम्हें जवाब देना होगा ।"

"हर एक आज़ाद है, ये सब व्यक्तिगत प्रश्न हैं ।"

"यह आज़ादी नहीं कही जायगी ।"

"खूब ! आजादी तब इसी का नाम है ? तुम अपने पसंद की किसी छोकरी की चोटी मेरी चुटिया से बाँध दोगी और हम जन्म भर रोने-कुढ़ने के लिये छोड़ दिए जायेंगे ।"

'ऐसा क्यों होगा ?"

"जरूर ऐसा ही होगा ।"

"कभी न होगा, सब दृष्टिकोणों से सुन्दर ! रूप-रंग, विद्या-विनय, धन-सम्मान, जाति-कुल सब कुछ देखकर लाऊँगी मैं अपनी बहू !"

"धन-सम्मान की ताक़त से यह जो कुछ लोगों ने संसार के उज्ज्वल पक्ष अपने काबू में कर लिए हैं, यह अब अधिक दिन तक ठहरनेवाले नहीं हैं । सब का धन समान हो जायगा । रह गई जाति और कुल की बात !—भगवान् ने सबको एक ही सा पैदा किया है । चमड़े में फर्क हो सकता है, लहू सबके लाल ही है ।"

"बेटा, ऐसी बातें नहीं करते । विवाह से पहले बहू की फोटो तुम्हें दिखा दी जायगी ।"

"मैं किसी की फोटो नहीं देखता ।"

"तुम्हारे पिता जी ने ऐसा कहा है ।"

"हूँ हूँ ! मुझे शादी नहीं करनी है ।"— कहकर भैरव चला गया ।

माता ने मन-ही-मन कहा—"कैसे नहीं करेगा शादी ? संसार का धर्म है । यों ही बक रहा है ।"

संध्या द्रुत पगों से छा रही थी । जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ भागता

जा रहा था भैरव भी। चौड़ी सड़क छोड़कर वह एक तंग और मैली गली के भीतर घुस गया। वहाँ कहाँ उसका क्लब था ?

इधर-उधर देखकर वह एक इकमंजिले खपरैल से छाए मकान के भीतर घुस गया। बाहर के कमरे में एक प्रौढ़ा लालटैन की चिमनी साफ कर रही थी। भैरव को देखकर वह कुछ सहमी। उसने कहा—"आइए भैरव बाबू।"

"अभी तक दिया भी नहीं जला तुम्हारे यहाँ ?"—कहता हुआ भैरव बेधड़क भीतर के एक अँधेरे कमरे में घुस गया।

मानो वह उसका अपना मकान हो। साफ-सुथरे भवन में रहनेवाला उस गंदी गली में कैसे घुस गया ? क्या यही था वह नाटक, जिसके खेलने की बात वह अपनी माता से कह रहा था ? सुन्दर सुसज्जित कक्ष में रहनेवाला, क्यों उस मैले और अँधेरे कमरे के भीतर विराजमान हो गया ?

उसके मन में मनुष्यों के बीच में जो समता का स्वप्न था, क्या यही उसका प्रयोगात्मक पक्ष था ? मूंज की चारपाई की तमाम टूट और मलिनता, ऊपर से एक साफ चादर बिछाकर ढक दी गई थी। भैरव उसी पर जाकर बैठ गया।

प्रौढ़ा लालटेन जलाकर ले आई थी। कहने लगी—"लालटेन में तेल ही नहीं था, जब खुद बाज़ार गई तब लाई। इसी से देर हो गई !"

"बासो कहाँ है ?"

"राम बाबू के यहाँ बर्तन मलने गई थी।"

"और रात होने को आई अभी तक नही लौटी।"—भैरव चारपाई पर से उठा और दो-चार कदम इधर-उधर टहलकर एक मैली कुरसी पर बैठ गया। कुरसी की बेंत की बुनाई टूट गई थी और उसके ऊपर चीड़ के एक तख्ते का टुकड़ा रख दिया गया था।

"बाजार का कोई सौदा खरीदने चली गई होगी।"

"फिर भी इतनी देर ?"

"भैरव बाबू, नाराज होने की कोई बात नहीं है। जब नौकरी की जायगी तो मालिक का कहना मानना पड़ेगा।"

"दिन-भर की नौकरी थोड़े है ? झाड़ू और बर्त्तन बस इतना ही तो ? बहुत हुआ हल्दी-धनियाँ पीस दिया, सिगड़ी सुलगा दी। अरे बढ़ते-बढ़ते इस सड़क का कहीं अन्त भी है या कल से खाना भी पकाना पड़ेगा, परसों से बच्चा भी घुमाना होगा।"

"पेट की खातिर सभी कुछ करना पड़ेगा, हमें क्या कोई शौक है। आप कुछ कर भी तो नहीं रहे हैं। रोज टाल-टूल ही करते जा रहे हैं।"

"तुम्हारा यह ख्याल बिलकुल ग़लत है बासो की माँ। भैरव को तुम काग़ज़ की बनावट का आदमी न समझो कि जरा-सी फूक में उड़ जाय। मैं अपने बाप से भी नहीं डरता, मुझे समझो ज़रा।" भैरव ने पतलून की जेब में हाथ डालकर सिगरेट निकाली और सभी जेबों में तलाश कर दियासलाई की डिबिया न पाने पर कहा—"दियासलाई है ?"

"लाना भूल गई बाज़ार से। अंगारा ले आऊँ ?"—बासो की माँ ने पूछा।

"रहने दो।" भैरव ने लालटेन की चिमनी ऊपर उठाकर अपनी सिगरेट सुलगा ली।

"मैं जानती हूँ आपको।"

"मैं अलग मकान ढूंढ रहा हूँ तुम्हारे लिये। फिर कोई ज़रूरत नहीं रहेगी तुम्हें किसी के यहाँ नौकरी करने की। सिर्फ एक ही अड़चन आ गई है।"—भैरव ने सिगरेट में जोर का दम लगाकर धुआँ आकाश की ओर छोड़ा।

"अड़चन कैसी ?"

"कभी सोचता हूँ कोई नौकरी कर लूं। क्योंकि मैं अपने पिता से एक पैसा नहीं लेना चाहता।"

"आप उनके इकलौते बेटे हैं। जब आप ही उसे नहीं लेंगे तो वह किसके काम आएगा ?"

"वह शायद मुझे देने से इनकार करें। लेकिन मैं न्यायालय की मदद से अपना हक़ ले सकता हूँ।"

"क्यों नहीं ?"

"कभी सोचता हूँ किसी व्यापार में लग जाऊँ। व्यापार के लिये धन चाहिए और धन के लिये ज़रूरत है बाप से लड़ने की।"

"इन सब बातों से पहले आपको बासो के साथ शादी कर लेनी चाहिए।"

"शादी ?"—कुछ शरमाते हुए भैरव ने कहा।

"हाँ आपने कहा था, मजिस्ट्रेट की मेज पर दोनों के दस्तखत कर लेने पर शादी हो सकती है। इसी के लिये तो आपने उसे पढ़ना-लिखना सिखाया।"—बासो की माँ ने कहा।

"तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। लेकिन शादी कर तुम्हें रक्खूंगा कहाँ ? मनोरंजन के लिये मैं कभी-कभी यहाँ आ जाता हूँ। बराबर रहने के लिये इस अँधेरी गली में, बड़ी मुश्किल की बात है। देखो, मैं बराबर इस फिकर में हूँ, मकान तलाश कर रहा हूँ। जब प्रेम किया है तो उसे आखिरी दम तक निबाहा भी जायगा। शादी से ही क्या होता है ? हजारों घर ऐसे हैं जहाँ शादी हो जाने पर भी पति-पत्नियों के बीच में रात-दिन जूती-पैजार होती रहती है।"

"चाय बना लाऊँ। सिगड़ी सुलग रही है।"

"नहीं, नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है।" भैरव को फिर-फिर बासो की अनुपस्थिति खटक रही थी। उसने फिर बाहर की ओर देखकर कहा—"नहीं आई अभी तक ?"

"बस आती ही होगी, क्या जाने बहूजी के साथ चली गई हो कहीं सैर को।"

"घर कह जाना चाहिए था। मैं अपने क्लब का हर्ज करके आया हूँ।"

"मैं जाकर देख आऊँ ?"

"नहीं, नहीं।"

बासो की माँ ने न-जाने फिर क्या समझा। कहने लगी—"शादी तो हो ही जानी चाहिए बाबू। कोई अविश्वास या खुदगरज़ी की बात नहीं है।" वह फिर चुप हो गई।

"फिर क्या बात है ?"

"बात तो कोई छिपी नहीं रह सकती। शहर की मैं नहीं कहती हमारे मुहल्ले में तो सभी इस बात को जानते हैं कि आपको बासो के साथ प्रेम हो गया है। मैं प्रेम को कोई खराबी की बात नहीं कहती। आखिर आदमी को एक का होकर तो रहना ही पड़ता है।"

'फिर क्या बात है, डरती क्यों हो ?"

'डरती हूँ लोगों से। अगर आप शादी कर लें तो मैं फिर मेरी ओर हाथ उठानेवालों की आँखो में कोच दूं अपनी अँगुली।"—बासो की माँ उत्तेजना के साथ बोली।

"और एक घटा उठ रही है। मेरे माता-पिता मेरी शादी के लिये लड़की ढूंढ़ रहे हैं।"

बासो की माँ चिल्ला उठी—"भैरव बाबू ! यह क्या कर दिया आपने ?" उसने माथा पीट लिया।

"हैं ! है ! क्या कर दिया मैंने ? अभी कुछ नहीं किया मैंने।"

"मेरी बासो की ज़िंदगी का नाश मार दिया। कहाँ जाएँ, क्या करें अब हम ?"

"बात तो सुन लो पूरी। उनके शादी ठहराने से क्या होगा ? अरे शादी करनेवाला तो मैं हूँ।"

"आपके कहीं और शादी कर लेने से फिर दूसरी बात हो जाती है। फिर आप यहाँ नहीं आ सकते। मेरी लड़की को कलंक लग जायगा। लेकिन नहीं ! नहीं ! आपके यहाँ न आने से आपका तो कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, पर मेरी बासो कहाँ जायगी ?"—वह रोने लगी।

भैरव उसे ढाढ़स बँधाता हुआ बोला—"तुम्हें मेरी बात का विश्वास

रखना चाहिए। मैंने बासो को अपना हृदय ही नहीं दिया है, सर्वस्व दिया है—अपनी आत्मा दी है।"

"यह सब मुँह देखे की बातें हैं। समय के बीतते आदमी को बदल जाने में कोई देर नहीं लगती। मैंने बहुत-सी बातें सुनी हैं और कई देखी हैं अपनी आँखों से। मेरी इतनी उमर होने को आई। संसार की बहुत-सी काली-सफ़ेदी मेरे सिर पर से होकर बीती है, मेरी आँखों से होकर गुज़री है। आदमी कोई खराब नहीं है, सभी सच्चे हैं लेकिन बखत उनकी नाक पकड़कर उन्हें घुमा देता है और वे कुछ-के-कुछ बन जाते हैं।"—बासो की माँ के मुख पर मनुष्य की जाति के ऊपर घोर अविश्वास प्रकट हुआ।

"तब कैसे विश्वास दिलाऊँ मैं तुम्हें?" भैरव ने कुछ सोचकर कहा—"यह सोने की रिस्टवाच है मेरी आठ सौ रुपए की, इसे तुम्हारे पास ज़मानत के रूप में रख देता हूँ। लेकिन तुम्हारा ऐसा ख्याल करना ही ग़लत है।"

"देखूँ कैसी घड़ी है? बिना चाबी दिए चलनेवाली जो थी?"

भैरव जब कलई पर से घड़ी खोल रहा था उसी समय बासो आ पहुँची। भैरव ने घड़ी खोलनी छोड़ दी। बासो की माँ ने पूछा—"कितने बज गए?"

बासो रुमाल के सिरे पर बँधा हुआ चाबी का गुच्छा घुमाती हुई आ रही थी। उसकी माँ ने दूर ही से उसकी आहट पहचान ली। वह उठकर बाहर को चल दी।

बासो उसे बाहर के ही कमरे में मिली। वहीं उनकी रसोई बनती थी। माँ चूल्हे की ओर बढ़ती हुई पूछने लगी—"बड़ी देर लगाई?"

"हाँ माँ, राम बाबू का छोटा लड़का अकेले ही बाजार चला गया। भीड़ में रास्ता भूल गया। हम सब उसे ही ढूँढने में रह गए। छोटे बच्चे की बात थी, मैं मना कैसे करती?"

"भिखा कहाँ?"

"अपने आप आ गया घर। पार्क में चला गया था। उसके मामा मिल गए उसे, वह पहुँचा गए, और हम लोग सारे शहर की परिक्रमा कर जब घर गए तो वह खिलखिलाकर हँस रहा था।"—कहती हुई बासो भीतर के कमरे में चली गई।

"इतनी रात तक तुम्हें घर पहुँच जाने की फुरसत नहीं ?"

हँसकर बासो बोली—"मैं तभी नौकरी छोड़ देने को तैयार थी। तुम्हीं ने मना कर दिया था।"

"बासो, द्वार बंद कर दो।"

बासो ने दबी हुई आवाज से कहा—"माँ बैठी है वहाँ। जरा देर ठहर जाओ।"

भैरव ने खुद उठकर द्वार बन्द कर दिया और धीरे-धीरे बोला—"बासो मेरे माता-पिता मेरी शादी के लिये जोर दे रहे हैं। बताओ मैं क्या करूँ ?"

"मैं क्या बताऊ जो ठीक समझो करो।"

"नहीं, नहीं छोड़ सकता। माता-पिता को छोड़ सकता हूँ, तुम्हें नहीं।"

"मैं भी दुनिया को छोड़ दूंगी, पर तुम्हें नहीं।"

"इस बात पर क़ायम रहोगी ?"

"भगवान् साक्षी है।"

'मैंने एक बात सोची है। यहाँ रहना मेरे लिये असम्भव हो गया है। रहता हूँ तो वे ज़बर्दस्ती मेरी शादी कर देंगे।"

"उससे पहले···"

बीच ही में भैरव ने कहा—'नही, उससे पहले मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता। तुम्हें खूब मालूम है तुम्हें देने के लिये मेरे पास अनंत प्रेम है पर पैसा कुछ भी नहीं।"

"मुझे तुम्हारा प्रेम ही चाहिए।"

"पैसा भी उतना ही जरूरी है। पैसे के होने पर ही प्रेम का मोल

बढ़ता है। लेकिन बाप के पैसे पर नज़र रखना बेटे की सबसे बड़ी मूर्खता है। मैं अपने भाग्य के बंद द्वार खटखटाऊँगा। तुम साथ दोगी ? तभी सब कुछ संभव है।"

"इसका पूछना ही क्या है ? मैं लहराते सागर और धधकते ज्वालामुखी में भी तुम्हारे साथ कूद सकती हूँ।"

"हाथ दो।"

बासो ने अपना गौर कोमल हाथ भैरव के हाथ में दिया। उसकी चूड़ियाँ खनक उठीं।

"तब मैं तमाम बाधाओं को कुचलकर अपना सितारा चमका लूँगा। सच्चा प्रेम सबसे बड़ी ताकत है। जिन्दगी की सारी कमी उससे पूरी हो जाती है। बासो, चलो हम चलें।"

कुछ आकुल और कुछ उल्लसित होकर बासो ने पूछा—"कहाँ को चलें ?"

"चलें इतनी बड़ी धरती है। पौरुष के लिये ही उसका इतना बड़ा विस्तार है। संसार के अनेक करोड़पति अपने आरम्भिक जीवन में कौड़ियों के लिये मोहताज थे। लेकिन उन्होंने संघर्ष किया, सच्ची लगन से, सच्चा प्रेम पाकर, और अंत में वे सफल हो गए। केवल तुम्हारे प्रेम की पूँजी चाहता हूँ।"

"तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"हम दोनों यहाँ से भाग चलें।"

"कहाँ ?"

"दूर देश को कहीं।"

"कितनी दूर ?"

"बहुत दूर, जहाँ ये लोग कोई न ढूंढ सकें हमें।"

"नाम भी तो होगा उसका।"

"बंबई।"

"बंबई ? वहाँ क्या करेंगे ?"

"भाग्य को ढूंढ निकालेंगे।"

"माँ का क्या होगा यहाँ ?"

"अपनी हालत सुधर जाने पर माँ को वहीं बुला लेंगे।"

"देश, जाति और संबंधी सबको ही छोड़ जाना पड़ेगा ?"

"हाँ बासो, प्रेम के लिये। प्रेम में कोई जबर्दस्ती नहीं है। मैं भी तो सब कुछ छोड़कर ही जा रहा हूँ। माता-पिता, धन-दौलत, इष्ट-मित्र, सब कुछ। बासो ! कहो तुम राजी हो मेरे साथ चलने को ?"

'हाँ, राजी हूँ।"

"बस यही पूछने आया था।"

"कब चलेंगे ?"

"यह सब निश्चय कर लेने पर बताऊँगा तुम्हें बहुत शीघ्र। इस बात का एक लफ़्ज भी तुम्हें किसी पर प्रकट नहीं करना होगा। नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जायगी।"

बासो की आँखों में अश्रु बनने लगे थे। उसने गद्‌गद् कंठ होकर पूछा—"क्या माँ से भी नहीं ?"

"नहीं, माँ से भी नहीं।"

"वह हमें न पाकर रोना-पीटना शुरू कर देगी।"

"कुछ दिन रोने-पीटने के बाद जब उन्हें हमारी राजी-खुशी की चिट्ठी मिल जायगी तो उन्हें उतनी ही बड़ी खुशी पहुँच जायगी। जमा-खर्च बराबर हो जायगा।"

"नहीं," बासो ने भैरव का एक हाथ पकड़ लिया और अपना दूसरा हाथ उसके कन्धे पर रखकर बोली—"नहीं माँ को साथ ले जाना होगा, नहीं तो यहाँ सब उसकी हँसी उड़ायेंगे।"

"जल्दी से कोई लाभ नहीं।"

बासो ने मचलकर कहा—'मैं किसके साथ भागी हूँ और तुम किस के साथ ? इस बात को समझने में किसी को भी ज्यादे देर न लगेगी। अगर तुम्हारे पिता ने पुलिस की सहायता से मेरी माँ को तकलीफ देना

शुरू किया तो ?"

"किसी की मजाल नहीं है। हम दोनों बालिग हैं और एक-दूसरे की राज़ी से ही परदेश को जा रहे हैं। बासो, तुमसे कुछ छिपाना नहीं है मुझे। मेरे पास कोई बड़ी पूंजी नहीं है। मुश्किल से दो व्यक्तियों के लिये राह-खर्च और एक-दो महीने की गुजर-बसर से अधिक नहीं है मेरे पास।"

"तुम्हारी दी हुई वे दोनों सोने की चूड़ियाँ तो हैं मेरे पास। एक बेचकर माँ का टिकट खरीद लेंगे।" बासो ने बड़ी आशा में भरकर भैरव की ओर देखा। उसकी आँखों में माता के लिये किए गए त्याग की तेजस्विता थी।

"मेरी भोली-भाली रूपसी !" भैरव ने उसका चिबुक पकड़कर कहा—"उन चूड़ियों को पहले ही मैंने अपने हिसाब में शामिल कर खर्च का जोड़ लगाया है।"

"तब क्या होगा ?"—बासो चिल्ला उठी।

"इतनी ज़ोर से न चिल्लाओ, माँ सुन लेगी।"

"फिर उसे बताकर जाने में क्या नुक़सान है ?"

"वह कभी हमें न जाने देंगी।"

"मैं उसे राज़ी कर लूंगी।"

"ग़लत पत्ता न चलो बासो, शुरू की ग़लत चाल से फिर सारा खेल ही चौपट हो जायगा। जिसके माने हैं सारा जीवन बरबाद हो जायगा। मेरा और तुम्हारा दोनों का।"

"फिर कोई ऐसी तरकीब सोचो न जिससे बाघ भी भूखा न जाय और बकरी की भी जान रहे।"

"अच्छा, मैं अकेले ही जाता हूँ। जब वहाँ कुछ ठौर-ठिकाना हो जायगा तो फिर तुम दोनों को लेने यहाँ आ पहुँचूंगा।"

बासो गहरे सोच-विचार में पड़ गई। उसके मन में चोर था। वह सोचने लगी—अगर भैरव वापस न आया। बम्बई से और कहीं को

चल दिया या वहाँ किसी और के साथ उसने प्रीति बढ़ा ली तो क्या होगा ?

उसे चुप देखकर भैरव ने पूछा—"क्यों इसमें क्या सोचने की बात है ? भगवान जानता है। मेरे और तुम्हारे बीच में कोई कपट नहीं है। बोलो, शीघ्र उत्तर दो। जल्दी ही मुझे इस बात का फैसला कर लेना है दो तीन दिन के ही भीतर।"

"माँ से पूछकर इसका जवाब देती हूँ।"—बासो द्वार की ओर बढ़ी और उसने साँकल पर हाथ रखा उसे खोलने को।

'नहीं," भैरव ने उसकी कमर पकड़कर खींच ली—"माँ को इस बात का एक लफ़्ज भी बताना नहीं है। किसी को भी नही। मेरे माता-पिता नहीं हैं क्या ? क्या मेरी माँ मेरे लिये आँसू न बहाएगी ? तुम्हारी माँ के लिये तो मैं जल्दी ही अपनी और तुम्हारी कुशल लिख भेजूंगा, लेकिन मेरी माँ को मेरा पता कब मिलेगा—इसका कोई ठीक नहीं है।"

"तो ऐसा क्यों करते हो ?"

"विधाता का लेख ऐसा ही है।"

"कब चलोगे ?"

"जल्दी ही आकर बता जाऊँगा। लेकिन याद रखना इसका जरा भी सूत किसी को न मिले। द्वार खोल दो।"

"नहीं।" बासो ने द्वार खोल दिया।

बासो की माँ चाय बनाती हुई बोली—"चाय तो पी जाइए।"

"जल्दी ही आऊँगा कल-परसों को। आज देर हो गई है"—भैरव चला गया।

५

प्रेम-प्रभाव

भैरव के चले जाने पर बासो कुछ देर तक कमरे के भीतर ही बैठी रह गई। उसके मन के भीतर उस अनदेखे नगर की धूसर छवि प्रकट हो रही थी। खिड़की में एक छोटा-सा दर्पण पड़ा था। उसने उसे उठा लिया और उसमें अपने मुख का प्रतिबिंब देखने लगी। मन में फिर दूसरी लहर चल पड़ी—"इतने बड़े सम्पन्न घर का युवक मेरी ओर आकृष्ट हो गया, कौन कहता है मैं सुन्दरी नहीं हूँ। गली में जाते हुए मोड़ पर जो लौंडे तरह-तरह की आवाजें कर भाग जाते थे, जब से उन्होंने हम दोनों की प्रीति की बात सुनी है, सब चुप हो गए। रामू पनवारी, उसका नियम था मेरी पीठ पर खाँस देने का। या जब मुझे उसकी दूकान के रास्ते होकर जाना ही पड़ता था तब वह जरूर कहता था—पान तो खा जाओ। अब उसे भी जब सच्चाई मालूम हो गई तो मेरा अदब करता है।"

उसकी माँ ने इतने ही में चूल्हे से आवाज़ दी—"बासो।"

"हाँ माँ!"

"क्यों वहाँ क्या कर रही है?"

"कुछ नहीं।" कहती हुई वह माता के निकट चली गई।

"क्या कुछ कह गए बाबू?"

"नहीं तो।"

"कुछ जरूर कहा है। बहुत धीरे-धीरे बोल रहे थे। क्या मैं कान लगाए न थी? या मैं ही तुम्हारी दुश्मन हूँ?"

बासो ने माँ के होठों पर अपना हाथ रख दिया—"माँ, ऐसा यह

क्या कहती हो ?"

"बताती क्यों नहीं फिर क्या कहा उन्होंने ?"

"तुम्हारे सिर की कसम कुछ नहीं कहा।"

"ज़रूर कुछ कहा है। तभी तो तेरी शकल और आवाज़ दोनों बदल गई हैं। मैंने क्या दुनिया नहीं देखी है ?"

"कह रहे थे घरवाले शादी के लिये ज़ोर दे रहे हैं।"

"हाँ, यही मुझ से भी कहा। तूने क्या जवाब दिया ?"

"मैं क्या जवाब देती ?"

"क्यों ?" माता क्रुद्ध हो उठी—"क्यों? कोई जवाब नहीं दिया ? क्या तेरे मुंह में ज़बान और ज़बान में आवाज़ नहीं थी। कहती, क्या गरीब के कोई आबरू नहीं है ?"

"यह तो मैं जब कहती जब वह शादी के लिये तैयार हो गए होते।"

"अरी इन पैसेवालों की बात का क्या भरोसा ? किसी पैसेवाले ही की लड़की के साथ सगाई हो रही होगी। बात पक्की हो जाने पर फिर इस अँधेरी गली की तरफ कोई झाँकने को भी नहीं आयेगा।"

"नहीं माँ वह ऐसे नहीं हैं।"

"अरी, कैसे-कैसों को मैंने पलट जाते हुए देखा है। वह ग़रीब ही है जो रास्ते पर चलता है, जो दुनिया से भी डरता है और जिसे भगवान् का भी ख्याल रहता है।"

"नहीं, मुझे उनका पक्का भरोसा है।"

"तू जाने फिर। अगर धोखा खा गई तो फिर कहीं की न रहेगी। कोई न रहेगा फिर हमारा। मेरी समझ में तो एक बात आती है। मैंने कहा भी उनसे, पर मेरे कहने से न माने। तू कह, ज़रूर तेरी बात मान लेंगे।"

"क्या कहना है ?"

"यही कह कि वह तेरे साथ अब जल्दी ही शादी कर लें। कहना, जाना शादी किए हमें बिरादरी में मुंह दिखाना मुश्किल हो रहा है।"

"यहाँ शादी कैसे हो सकती है ?"

"क्यों नहीं हो सकती ? मुझे सब मालूम है। किताब में दस्तखत करने से सब-कुछ हो सकता है। तूने और दस्तखत करने सीखे ही किस लिये हैं ?"

"लेकिन यहाँ उन्हें शहरवालों की डर है। उनके पिता के सब बड़े-बड़े लोग जान-पहचान के हैं। वे सब रोड़े अटका देंगे।"

"हूँ !" माँ ने एक ठंडी साँस छोड़ी—"मैं तभी तुझ से कहती थी बासो, समझ-बूझकर कदम रखना।"

"एक बात हो सकती है।"

"क्या हो सकती है ?"

"बाहर कहीं और जगह जाकर शादी कर सकते हैं।"

"बाहर कहाँ ?"

"कहीं हम दोनों चले जायेंगे और शादी कर फिर यहाँ आ जायेंगे।"

"नहीं, इस बुढ़िया को यहीं छोड़ जाओगे क्या ?"

"जल्दी ही लौट आयेंगे। अगर तुम इस पर राजी हो तो मैं उन्हें भी राजी कर लूँ।"—बासो ने कहा।

"नहीं, मैं इस पर तो राजी नहीं हूँ।"

"क्यों ? क्या हर्ज है इसमें ?"

"सब हर्ज ही हर्ज है ! तुम दोनों की पागल जवानी, कौन जाने क्या कर दो, कहाँ चले जाओ। इस बुढ़ापे में मैं असहाय होकर कहाँ तुम्हें टटोलती फिरूँगी ?"

"नहीं माँ, तुम्हें सपने में भी ऐसा ख्याल नहीं करना चाहिए। मैं क्या ऐसा पत्थर का कलेजा रखती हूँ कि तुम्हें छोड़कर चल दूँ ?"

"फिर तुमने खुसुर-पुसुर खुसुर-पुसुर कर क्या बातें कीं मुझसे छिपाकर ?" माँ रोने लगी—"देखो बेटी, बुढ़ापे की आँख न फूट जाय, लाठी न लुट जाय। तुम ना-समझ नहीं हो अब। माता-पिता और किस लिये तमाम तकलीफें उठाकर सन्तान का पालन करते हैं ?"

माता के रुदन को सुनकर बासो का हृदय विद्रोह करने लगा अपने प्रेमी के विरुद्ध। रह-रहकर उसके जी में आता कि सारी सच्चाई माता पर खोल दूं। लेकिन फिर उसने सोचा—"माता को धोखा देने की तो कोई बात ही नहीं है। कुछ देर के लिये उसे अँधेरे में रखकर फिर तो बिजली के उजाले में उसे खींच लिया जायगा।"

"बेटी, जब माँ बनोगी तभी पता चलेगा, माता सन्तान के लिये कितना कष्ट उठाती है।"

"बेटी होकर क्या मैंने तुम्हारी तपस्या नहीं देखी है ?"

"क्या याद है तुम्हें ? क्या देखा है तुमने ?"

"अपना याद नहीं है दूसरों को तो देखा है। शाम का समय है माँ, दिया जला रखा है, तुम्हारा रोना अच्छा नहीं जान पड़ता।"

"बता दो, फिर तुमने क्या तय किया है ?"

"क्या तय किया है ? अपने सुख के पहले तुम्हारा सुख। माँ यही तय किया है।"

माता को कुछ भरोसा हुआ, लेकिन उसका संशय गया नहीं। उसने पूछा—"चाय पिओगी ?"

बासो ने अपने प्रेमी की बात खुलने न दी। अपनी इस दृढ़ता पर वह भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हो उठी। वह बोली—"हाँ पिऊँगी क्यों नहीं ?"

दोनों माँ-बेटी चाय पीने लगीं।

भैरव वहाँ से सीधा अपने नाटक-क्लब में जा पहुँचा। सभी मेम्बर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। नाटक-क्लब का प्राण-विधाता भैरव ही था। वह उसका प्रधान नायक-अभिनेता तो था ही, क्लब का आर्थिक आधार भी वही था।

क्लब यद्यपि टिकट लगाकर ही अपने खेल करता था और टिकटों में उसे अच्छी आमदनी भी होती थी, लेकिन उसके खर्च भी काफी होते थे। बाढ़, भूचाल, महामारी, अकाल-पीड़ितों की मदद को वे लोग सबसे

पहले आगे बढ़ जाते थे।

नाटक-क्लब की जो मखमल की यवनिका अभी हाल ही में बनकर आई है, जो चार स्थानों पर से बल खाकर परियों के पंख-सी सिमटकर पखवाइयों में छिप जाती है, उसे भैरव बाबू ने अपने ही खर्च से बनवाया है और जो क्लब का चार सप्तक का ओरगन है वह भी उन्होंने ही खरीदा है।

उनके क्लब में पहुँचते ही सबने उन्हें घेर लिया। मंत्री कहने लगे—"कहाँ रह गए आप ? हम सब आप ही की राह देख रहे हैं।"

"मेरी राह क्यों देखी ?"

"आप सभापति, बिना आपकी अनुमति के ही पार्ट कैसे बाँट दिए जाते ?"

"उप-सभापति तो थे ही।"

उपसभापति पीछे को खिसकते हुए बोले—"आपके सामने मैं ? मेरी क्या हस्ती ?"

भैरव बोला—"यह जनता का काम है। एक पर इसे नहीं टिकना चाहिए, हमें बहुतन्त्रात्मकता की चेतना बढ़ानी है। मान लो अगर मैं मर गया होता तो क्या···?"

मंत्री बोला—"हैं ! हैं ! यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"मरा न सही लेकिन मुझे कहीं बाहर जाना है।"

सेक्रेटरी ने पूछा—"कितने दिन में लौटेंगे ?"

भैरव के होंठ उसकी हँसी को रुद्ध न रख सके, वह बोला—"बहुत दिन लग जायेंगे।"

सेक्रेटरी भैरव का अंतरंग मित्र था। उसने उसके कान में कहा—"क्या हनीमून की यात्रा है ?"

भैरव ने उसका हाथ पकड़कर जोर से दबा दिया—"क्या हर्ज है ?"

"कितने दिन में लौटोगे ? हम तब तक ड्रामा नहीं खेलेंगे, तुम्हारे बिना खेल भी नहीं सकते हैं।"

"नहीं ऐसा नहीं होगा, किसी एक पर क्लब का काम नहीं अटकना चाहिए। मेरे लौटने की कोई ठीक नहीं। अगर जहाज डूब गया तो ?" भैरव उठने लगा।

सेक्रेटरी ने उन्हें बैठाते हुए कहा—"अभी तो आए हो।"

"जाऊँगा, ज़रूरी काम है, तुम लोग धोखे में न रह जाओ इसीलिए आया हूँ।"

"कब जाने का विचार है ?"—सेक्रेटरी ने पूछा।

"अभी तारीख का निश्चय नहीं है।"

"तो हम लोग कल को आपकी प्रतीक्षा करेंगे फिर।"

"शायद ही आ सकूं।"—भैरव उठकर जाने लगा। क्लब के सभी मेंबर उसे बाहर लक पहुँचाने गए।

घर पहुँचते ही उसे फाटक पर पिता जी मिले। और दिन वे घृणा से भैरव पर अपनी दृष्टि फिरा लेते थे, लेकिन आज उन्होंने बड़ी प्रीति से उसे देखकर कहा—"भैरव !"

"हाँ, पिता जी।"—भैरव ने भीतर को जाते हुए पिता का अनुसरण किया।

"छोटी आयु में एक चपलता और एक लापरवाही होती ही है, उसे माफ़ कर देना अभिभावकों को चाहिए ही। लेकिन वय प्राप्त हो जाने से जीवन पर गम्भीर दृष्टि ज़रूरी हो जाती है। मनुष्य को अपने माता-पिता तथा देश और समाज के प्रति कर्त्तव्य देखने पड़ते हैं। तुम स्कूल की परीक्षा पास न कर सके, यह कोई बात नहीं है। स्कूल या कॉलेज का सर्टिफिकेट मनुष्य की योग्यता का सबूत नहीं है। वह नौकरी के लिए सहायक हो सकता है। तुम्हें किसी की नौकरी करनी नहीं है। तुम चाहो तो कई नौकर रख सकते हो।"—पिता ने कहा और चुप हो गए।

दोनों-पिता पुत्र बैठक में आ गए थे। पिता को नीरव देखकर भैरव बोला—"हाँ पिता जी।"

"तुम अब अवस्था में बढ़ गए हो। मनुष्य के जीवन का क्या ठीक

है ? मेरी वह कमर का दर्द, कोई डॉक्टर अभी तक इसके कारण को नहीं समझ सका है। इलाज जो भी किए गए, सभी बेकार साबित हुए हैं। यह प्राण का पखेरू न जाने किस समय किधर को उड़ जाए कोई ठीक नहीं है"—पिता ने बड़ी करुणा के स्वर में कहा।

उतनी ही दर्दनाक वाणी से बेटे ने तुक मिलाई—"और पिताजी, काल के यहाँ कोई अंतर नहीं माना जाता। यह बात जितनी एक प्रौढ़ के लिए सच है, उतनी ही एक नवयुवक के लिए भी—और क्या वह पालने में से कलियों को उठाकर नहीं मसल देता ?"

पिता ने कहा—"हाँ बेटा, जब तुम्हारे इतनी दार्शनिकता जाग उठी है तो अवश्य यह तुम्हारी समझ का अंकुरित हो जाना है।" पिता पुत्र को लेकर भीतर चले गए पत्नी के पास। पत्नी के तर्क से अपने वाक्यों का बल बढ़ाने के लिए।

पत्नी भूमि पर बैठी हुई थी ठाकुरघर में। मीठे तेल के दीपक के क्षीण प्रकाश में रामायण के पाठ का नियम पूरा कर रही थी। पिता-पुत्र को इस प्रकार भावों के साम्य में आता हुआ कभी नहीं देखा था उसने कई वर्षों से। उसने मन में समझा, आज भगवान् उस पर दयालु हुए हैं। उसने जल्दी से उन दोनों के बैठने के लिए एक गलीचा बिछा दिया और स्वयं भी उनकी ओर मुख कर बैठ गई।

पिता बोले—"तुम्हारे विवाह के योग्य अवस्था हो गई है। पहले यह नियम था माता-पिता अपनी छाँट और पसंद को संतान के कल्याण के लिए सर्वोपरि समझते थे। लेकिन अब समय बदल गया है। विवाह की अवस्थाएँ बढ़ गई हैं। इसलिए अभिभावकों को संतान की सम्मति लेने की आवश्यकता पड़ गई।"

"ज़रूर पिता जी, पहले के युग अंधकार और एकाधिपत्य के थे। घर के भीतर गृहस्वामी मनमानी करता था और घर के बाहर राजा और उसका परिषद्-वर्ग। लेकिन अब बहुमत और समानता का युग आ गया। मनुष्य को अपने अधिकारों का बोध हो गया। इस बदले हुए

युग में अब वे पुराने सिक्के नहीं चल सकते।"

"लेकिन मेरी समझ में एकदम नवीनता भी उचित नहीं, ऐसे ही बिलकुल पुरानी लकीरों की फ़कीरी भी ठीक नहीं।"—पिता ने कहा।

माता ने पिता के स्वरों में दुहरा रंग चढ़ाया—"हाँ बेटा, धर्म का आश्रय ही सबसे बड़ा सहारा है। बाप-दादाओं से चली आती हुई रीत को तोड़ना बड़ी भारी नादानी है। बाद को पछताने से अच्छा है पहले ही ठीक रास्ता पकड़ा जाय।"

"तुम्हारा मतलब क्या है ?"

पिता बोले—"मतलब है, तुम्हारी माता तुम्हारे लिये उपयुक्त बहू ढूंढ लेंगी। तुम चाहो उसकी फोटो देख लो, चाहे उसको खुद ही देख आओ।"

"पिता जी, पहले समय में भी बराबर स्वयंवर होते थे। उनमें माता-पिता के स्वार्थ और उनकी इच्छा का कोई मूल्य न होता था।"

"अच्छी बात है, तुम अपने मन से ही बहू ढूंढ लो।"

"आपको प्रसन्नता होनी चाहिए, मैंने ढूंढ ली है।"

माता-पिता दोनों हकबकाकर बोल उठे एक साथ—"तुमने ढूंढ ली है।"

"हाँ पिता जी।"

"कौन है वह ?"

"पिता जी यह गरीबों का युग है। मैं भावना का मोल जानता हूँ। बढ़िया कपड़े, ऊँचे महल और कीमती भोजन—ये सब झूठे दिखावे हैं। इनके संसर्ग में हमें मनुष्यता के दर्शन नहीं होते।"

"इस भूमिका की क्या जरूरत है, हम तुमसे उसका परिचय पूछते हैं।"

"है वह भी एक मजदूर की लड़की।"

"मजदूर की लड़की !

जात नहीं मिलती।"

"लेकिन मेरा दिल तो मिलता है। विवाह हृदय का सौदा है या धन-संपत्ति की प्रतियोगिता ? मैंने धन-सपत्ति के चारों ओर बड़े भयानक गिद्धों को मँडराते देखा है जिनके भीतर केवल अपने स्वार्थ की जलती हुई आकांक्षा, हर समय दूसरे को लूट लेने का कौशल ही साँस में चलता रहता है। गरीबों के लिये जिनकी दृष्टि में घृणा, हृदय में पाषाण और छाया में अभिशाप जीवित है। उन संपत्तिवानों को याद कर मेरे भयानक ज्वर चढ़ जाता है।"

"तुम स्वयं एक धनी पिता के पुत्र हो, तुम्हें ऐसे शब्द ज़रा सोच-समझकर ही मुँह से निकालने चाहियें।"

पिता जी इसीलिये तो मेरी बात में सच्चाई है और इसीलिए मेरा मन गरीब की तरफ झुक गया। मैंने निर्धन में कोई बनावट, कोई पाखंड नहीं पाया। उसकी वाणी का संबंध हृदय से रहता है। साफ़, सीधा और सच्चा। धनी कूट होता है, उसके शब्द उसके मस्तिष्क की कूटता में रँगे होते हैं।"

"तुम्हारे इतने बड़े व्याख्यान का मतलब क्या हुआ ?"—पिता ने पूछा।

"मेरा हर वाक्य आपके प्रश्न का उत्तर है।"

"तुम्हारी रुचि के लिए सारे शहर में हमें शर्मिंदा होना पड़ेगा। समाज में तो तुमने हमारी नाक ही कटा दी। कहाँ तुम ? कहाँ एक मज़दूर की लड़की ? धन-संपत्ति की बात जाने दो, जात तो देखनी ही पड़ेगी।"

"जात और कुल—यह भी तो धन-संपत्ति का ही दूसरा नाम है। मैं धरती पर मनुष्य की एक ही जात मानता हूँ। वह मानवी भावों की प्रधानता है। उन मानवी भावों से गरीब ही ओत-प्रोत है।"

"बेटा, यह क्या कह रहे हो तुम ?" माता ने जल्दी-जल्दी रामायण का नियमित पाठ पूरा कर पुस्तक रख दी और बेटे के निकट आकर कहने लगी—"वह नीच जाति की लड़की, हमारे रीति-रिवाज, हमारा

चलन, हमारी बोली—सभी चीजों से अनजान, वह कैसे हमारे घर के भीतर बहू बनकर आ जायगी ?"

"अब मुझे याद पड़ता है, कुछ लोगों ने मेरे कानों में इस बात का इशारा दिया था। मैंने नहीं समझा था, यह इतना भयानक आकार रख लेगी। भैरव, मुझे स्वप्न में भी तुमसे यह आशा नहीं थी। तुमने अपने पिता को बड़ा धोखा दिया।"

"पिता जी, उसमें धोके की कौनसी बात है ? धोखा तो तब होता जब मैं आपको किसी की कन्या के लिए वचन-बद्ध करा अपनी मनमानी कर लेता।"—भैरव ने कहा।

"नहीं भैरव, ऐसा नही होगा। तुम्हें उस मजदूर की लड़की का ध्यान छोड़ना पड़ेगा।"—पिता ने बड़ी दृढ़ता से कहा।

"नहीं पिता जी, यह कदापि नहीं हो सकता। मैंने उसे वचन दिया है और मैं उस वचन को पूरा करूँगा।"

"यह कोई वचन नहीं कहा जाता। तुम उसकी तरफ जाओ ही नहीं। मैं देख लूंगा कैसे वह मेरी कोठी में घुस सकती है ?"

"कितना बड़ा स्वार्थी मानव आपके भीतर से बोल रहा है ! उसका भी एक समाज है। ऐसा कर देने से वह अपने समाज में कितनी तिरस्कृत और लांछित हो जायगी। आप उसकी क्षति का अंदाज़ ही नहीं लगा सकते।"

"हम पर्याप्त रुपया देकर उसकी क्षति-पूर्ति कर देंगे।"

"उसकी गाय-बकरी या खेत-फ़सल की क्षति है क्या यह जो आप अपने धन के बल से उसे पूरा कर देंगे ? पिता जी, किसी के शारीरिक भाग की क्षति भी आप नहीं भर सकते। यह किसी के मन की हत्या ? कौन इसका नुकसान भर सकता है ?"—भैरव भी उठ गया।

"विवाह को यह गौरव छोटे समाज में नहीं दिया जाता इतना, जितना तुम समझ रहे हो ?"

"क्यों नहीं दिया जाता ? यह आप अपने दृष्टिकोण से कह रहे हैं।

ग़रीब के कोई आबरू-इज्ज़त नहीं है ? कैसी भयानक यह आपकी धारणा है ?"

"वाद-विवाद से कुछ फल नहीं निकलेगा। एक बात है, तुम मेरी संपत्ति के उत्तराधिकारी उसी हालत में हो सकोगे जब कि तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। अगर तुम्हें छोकरी का मोह छोड़ना स्वीकार नहीं है तो भैरव···" कुछ सोचने लगे पिता।

माता एकदम विह्वल होकर पति के निकट खड़ी हो गई कि उनके मुंह से कोई कठोर वचन न निकले, कहा कुछ भी नहीं उसने।

"नहीं, मैं इस बारे में किसी की बात नहीं सुनना चाहता।" रोष से पिता का स्वर बहुत ऊँचा हो गया था—"यह सारी जायदाद मेरे अपने हाथों का उद्यम है। बाप-दादाओं से उत्तराधिकार में मैंने इसकी कोई कोड़ी नहीं पाई।"

"दो-चार दिन का समय देना चाहिए।" पति से इतना कहकर माँ बेटे के अभिमुख हुई—"भैरव, तुम सोच लो इस बात को। अपने मित्रों की भी सलाह लो और अपने सम्बन्धियों से भी जाकर पूछ आओ।"

"मैं अपना मित्र और सम्बंधी खुद ही हूँ।"

"मैं ऐसे कुपूत के साथ तब तक कोई बात नहीं करूँगा जब तक यह अपने मन के भीतर से इस गंदी भावना को निकाल नहीं देता।"—कहते हुए पिता बड़ी तेज़ी से चले गए।

उसी उत्तेजना में भरकर भैरव भी दूसरी ओर को जाने लगा था। माता ने उसके पैरों में अपना सिर रख दिया—"भैरव, हमारी लाज रखो बेटा, तुम जो कहोगे वही करेंगे हम। सिर्फ अपनी हठ को छोड़ दो। एक कुल और जाति से हीन छोकरी को हम कैसे अपनी बहू बना लें ? क्या लोग कहेंगे, क्या भगवान् ?"

"ये कुल और जातियाँ सब मनुष्य की अपना रचना है। इसमें भगवान् का कोई हाथ नहीं है। मैं उसको किसी हालत में नहीं छोड़ सकता। मुझे आत्मघात स्वीकार है, विश्वासघात नहीं।"—भैरव अपने

कमरे में चला गया।

माता उसके पीछे-पीछे चली। बड़ी देर तक वह उसे समझाती रही पर उस पाषाण के भीतर उसका कोई आँसू न समा सका।

उस रात भैरव ने घर में खाना भी नहीं खाया। उसकी सारी रात भविष्य के नक्शे बनाने में बीती, उसके पिता की चिंता करने में और माता की रोने में।

दूसरे दिन सुबह होते ही भैरव उठ गया। रात-भर में सोचकर उस ने यही निश्चय किया कि वह अपनी जन्मभूमि का त्याग कर दूर भाग जाय। वह घर से चला, सीधे बासो के घर जाकर, रात-भर की चिंता के फलस्वरूप जो कार्यक्रम उसने बनाया था, वह सब उसे बता आना निश्चित किया। लेकिन वह कुछ दूर जाकर रुक गया—"बासो की माँ के मन में इस असमय भेंट से ज़रूर कुछ शक पैदा हो जायगा।"

वह मार्ग में दुविधा में पड़ गया। फिर उसे याद आई—बासो सुबह-शाम राम बाबू के यहाँ काम पर जाती है। वह उनके मकान की ओर लपका और सौभाग्य से उसकी भेंट बासो से हो गई।

"बासो!" उसने उसे आवाज़ दी। सड़क पर अभी अधिक लोग नहीं चलने लगे थे।

बासो इधर-उधर देखकर भैरव के पास दौड़ी आई। भैरव ने बहुत धीमी आवाज़ में कहा—"बासो, आज शाम को ही जाना पड़ गया हमें।"

"आज ही?"

"हाँ, साहस रखो, भगवान् सब ठीक ही करेंगे।"

"एक-दो दिन ठहर नहीं सकते?"

"नहीं, सिनेमा देखने के बहाने से मैं तुम्हें बुला ले जाऊँगा और सीधे स्टेशन ही पहुँचेंगे। अधिक बातों के लिए समय नहीं, तैयार रहना।"—कहकर भैरव चल दिया।

बासो के विचारों में एक प्रलय फूट पड़ा। नौकरी में गई वह, किसी से कुछ कहने की आज्ञा थी नहीं उसे। वह जानती थी आज उसकी

नौकरी का अंतिम दिन है। कुछ भूली-भूली और खोई-खोई-सी वह काम कर रही थी। मालकिन ने एक-दो बार जो उसे फटकारा तो उस फटकार को भी चुपचाप फूल की तरह उसने माथे पर रख लिया। मालकिन समझी किसी दुविधा में पड़ी हुई है। सुबह का काम समाप्त कर वह घर को चली। उसने मन में सोचा, अंतिम बार! अब शायद यह झाड़ू यहाँ कोई दूसरा लगाएगा। वह शाम का काम भी दिन ही में कर छुट्टी माँग ले गई।

बासो घर आई बड़े डरते हुए पगों से। माता को अब वह कैसे देखेगी? इतना बड़ा विद्रोह, उसके खिलाफ़ मन में छिपाकर माता से क्या बात करेगी वह। रह-रहकर डर रही थी वह, कहीं बातों ही बातों में मन का भेद न निकल पड़े उसके सामने।

किसी प्रकार दिन काट लिया उसने। एक-एक क्षण की गिनती करते-करते कैसा भारी हो गया वह दिन? हर आहट पर वह भैरव की कल्पना करती। अंत में भैरव आया। उसने उससे कहा—"बासो, चलो। सोने की चूड़ियाँ रख लीं?"

बासो ने बड़ी चिंता में पड़कर कहा—"नहीं, चूड़ियाँ तो माँ के संदूक में हैं।"

"अब तक माँग क्यों नहीं ली थीं?"

"कैसे माँगती?"

"अब जाकर जल्दी करो।"

"कपड़े बदल लूँ?"

"ज़रूर।"

बासो माता के पास जाकर बोली—"माँ, मैं सिनेमा देखने जा रही हूँ।"

"जाती क्यों नहीं?"

"सोने की चूड़ियाँ दे दो पहनकर जाऊँ।"

"सिनेमा देखने जाओगी या अपनी चूड़ियाँ दिखाने?"

"शायद उनके कोई दोस्त लोग भी जा रहे हैं। ऐसे ही नंगे हाथों से उनका अपमान होगा।"

माता की कुछ समझ में नहीं आई। वह बोली—"वह नई साड़ी पहन लो, ब्लाउज भी, चप्पल भी। जेवर कौन पहनता है अब ?"

"मेरा जी कर रहा है माँ !"

"लेकिन चूड़ियाँ तो मैंने अपनी बहन को दे रखी हैं। उसकी बहू अपने भाई की शादी में उन्हें पहनकर गई है।"

"तो फिर मैं कहीं नहीं जाती।"—रूठकर बासो बोली।

"नहीं तुम्हें जरूर जाना चाहिए। वे तुम्हें अपने साथ ले जा रहे हैं क्या ?"

"हाँ, अपने साथ।"

"जरूर जाओ बेटी। इससे दस-बीस आदमी तुम्हारे सम्बंध को जानेंगे तो हमारी बात पक्की होगी और वे फिर एकाएक कुछ न कर सकेंगे। अरी जब उनका साथ तुम्हें लोगों को दिखाने को मिला है तो चूड़ी दिखा कर क्या करोगी ? वह ओछापन है। तुम्हारे आभूषण भैरव बाबू हैं। भगवान् उनकी मति कायम रखें और उनकी तंदुरुस्ती ठीक रहे, उनकी लंबी उम्र हो।"—माता भगवान् को हाथ जोड़ती हुई बोली।

बासो बड़ी कठिनाई में पड़ गई माता के इस उत्तर से। क्या करती ? उसे कोई बात ही नहीं सूझी। कुछ देर के लिये तो उसकी चेतना सूनी और उसके मुँह को मानो लकवा मार गया। कठिनाई से उसने बड़ी कातरता से माता की ओर देखकर कहा—"माँ !"

इतने ही में भैरव ने भीतर के कमरे से धीरे-धीरे आवाज दी—"बासो ! बासो !" उसकी आवाज में आकुलता प्रतिध्वनित थी।

बासो तुरंत ही वहाँ जा पहुँची। भैरव बोला—"जल्दी करो, देर हो जायगी तो फिर कहीं गाड़ी न छूट जाय।"

"लेकिन"—बासो आगे कुछ न कह सकी।

"लेकिन क्या ?"

"चूड़ियाँ तो माँ ने मौसी को दे रखी हैं।"

"जाकर माँग लाओ।"

"मौसी की बहू उन्हें पहनकर गाँव गई है अपने भाई की शादी में।"

भैरव ने आकाश की ओर देखा बड़ी निराशा में और फिर तुरंत ही उसने कलाई की अपनी घड़ी पर नजर डाली।

बड़ी चिंता से बासो बोली—"तो अब क्या होगा?"

भैरव ने बड़े प्रेम से बासो की पीठ पर हाथ रखकर कहा—"कुछ नहीं ये सब बाधाएँ आती हैं। लेकिन अपने निश्चय में दृढ़ मनुष्य एक इंच भी नहीं इधर-उधर खिसक सकता। हम इसी गाड़ी से चलेंगे इसमें कोई संशय नहीं। तुम फौरन कपड़े पहन कर तैयार हो जाओ। मैं अभी आता हूँ।"

भैरव चला गया और बासो भैरव के दिए हुए उन कपड़ों को पहनने लगी जिन्हें पहनकर वह आज तक कभी बाहर नहीं गई थी। उसकी माँ बहुत प्रसन्न हो उठी। बासो की उस साज सज्जा को देखकर अपने भाग्य को सराहने लगी। अब उसका यह डर जाता रहा कि भैरव किसी दिन उसे धोखा दे जायगा।

वह बेटी के पास जाकर बोली—"बेटी, मुँह ढककर न जाना। सारी दुनिया को मालूम होना चाहिए कि इन कीमती कपड़ों में तू बासो है। मेरा मतलब है शहर में सब पर यह बात खुल जाय। इस मुहल्ले-वालों को तो यह बात मालूम ही है. रामू बाबू के घर के रास्ते मत जाना। समझ गई?"

बासो ने अचंभे में आकर पूछा—"क्यों उधर से जाने में कौन-सा खटका है? मैं शाम का उनका तमाम काम करके रख आई हूँ पूरा-का पूरा।"

"यह नहीं कहती। अगर उधर से यह सतरंगी साड़ी पहनकर जाओगी तो कल को उनके यहाँ मैली ओढ़नी ओढ़कर कैसे जाओगी?"

बासो अपने मन में सोच रही थी—"और जब आज रात को यह

मेरे आने का इंतजार करते-करते थक जायगी तब कहीं इस पर सारी सच्चाई खुल जायगी।" उसने ज़ाहिर में कहा—"नहीं माँ न जाऊँगी उधर से।"

भैरव लाचार होकर फिर घर जा पहुँचा। वह वहाँ से मूक अंतिम विदा ले चुका था, पर घटनावश फिर उसे वहाँ जाना पड़ा। वह अपने कमरे में जाकर अपने बक्सों को खोलकर कुछ ढूंढने लगा।

पिता उसकी तरफ से बिलकुल उदासीन हो चुके थे। वह बेटे से अंतिम शब्द कह चुके थे और जब तक भैरव उनकी आज्ञा पर अपने को निछावर न कर दे तब तक उससे किसी प्रकार का व्यवहार करने की उनकी जरा भी इच्छा न थी।

बेटे को आया जान माता फिर उसके पास पहुँची। कहने लगी—"बेटा, समझ में नहीं आई तुम्हारे कोई बात ?"

"बिलकुल आ गई माँ।"

माँ उसकी बोली से उसकी बात का अर्थ समझ गई। उसने भावना को दूसरा मोड़ देते हुए कहा—"क्या ढूंढ रहे हो ?"

"कुछ नहीं।"

"मैं कहती हूँ दो-चार सौ रुपए की जो भी ज़रूरत हो तुम्हें मैं अभी ला देती हूँ। लेकिन पिता की आज्ञा माननी ही पड़ेगी।"

भैरव ने कोई जवाब नहीं दिया और कमरे के बाहर हो गया। सीधे एक ज्वेलर के यहाँ घड़ी बेच दी और बासो के यहाँ जा पहुँचा, बासो तैयार बैठी थी। उसे लेकर चला। जाते समय उसकी माँ से बोला—"सिनेमा देखने जाते हैं।"

उसकी माँ ने पूछा—"कितने बजे तक लौटोगे ?"

भैरव ने जवाब दिया—"हाँ मैं खुद ही पहुँचा जाऊँगा।"

माँ संशय में पड़ गई इस जवाब से।

६

बंबई से बिदा

बड़ी तेजी से कदम बढ़ाते हुए वे दोनों गली पार करने लगे। शाम का समय था, सड़कों पर भीड़ बढ़ गई थी। अधिकांश लोग नहीं पहचान सके नीची नजर कर जाती हुई उस बासो को। कपड़ों के बदले जाने से जरूर उसकी शक्ल में भी कुछ परिवर्तन प्रकट हो गया था। लेकिन कुछ लोग जिन्हें भैरव का वह प्रेम का कथानक ज्ञात था उन्होंने सहज ही बासो को पहचान लिया। वह घूंघट में भी होती तो उनकी आँखों से नहीं छिप सकती थी। गली की नोक में बैठनेवाला वह रामू पनवारी, बला की उसकी नजर थी। वह पत्ते की हरियाली पर पत्थर की सफेदी में लकड़ी का कत्था मिलाकर एक नया रंग उपजानेवाला—सबसे पहले उसी ने इस भेद का पता लगाया।

तम्बाकू के लिये हथेली फैलाते हुए उसका एक ग्राहक बोला—"शायद बहू को अपने माता-पिता को दिखाने के लिये अपनी कोठी पर ले जा रहे हैं।"

दूसरा बोला—"जब पसंद आ जाय तब न।"

पनवारी ने फैसला किया—"पसंद न आने की क्या बात है? कसर सिर्फ कपड़ों की थी। देखा नहीं तुमने? किस ठसके से चली जा रही है। मैं रोज इसे आते-जाते देखता हूँ, मैं ही धोखा खा गया था।"

बासो ने जाते-जाते पूछा—"हुआ कुछ इंतजाम?"

"हाँ, काम चला ही देते हैं भगवान्। आदमी को सिर्फ अपनी अक्ल में जमे रहने की जरूरत है।"

गली से बाहर आकर ज्योंही वे ताँगे के स्टैंड की ओर बढ़े एक

ताँगेवाला दौड़ा आया। दोनों उसमें बैठ गए। भैरव ने उससे कहा—"पिक्चर हाउस।"

स्टेशन की सड़क पर ही था पिक्चर हाउस। ताँगेवाले ने उन दोनों को वहीं उतार दिया। जरा-सी दूर पर रेल का स्टेशन था, दोनों पैदल जा पहुँचे वहाँ। रेल के छूटने मे अभी पूरा घंटा-भर था। भैरव ने बासो को वेटिंग-रूम में बैठाकर कहा—"तुम बैठो यहाँ, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।"

"क्या रह गया ?"

'सभी कुछ बासो। परदे पर का सिनेमा देखने के लिये जरूर हमें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन हम तो बड़ा ठोस जिदगी का सिनेमा देखने जा रहे है। उसके लिये सभी चीजों की ज़रूरत पड़ेगी। इस तरह बिना सामान के जाने में अपन तो रास्ते भर और परदेस में तकलीफ उठायेंगे ही, लोग भी तो तरह-तरह की बातें सोचने लगेंगे।"

बासो ने कहा—"जल्दी आना।"

हँसकर भैरव ने जवाब दिया—"हाँ बासो, घड़ी खोकर मैं खब अच्छी तरह समय के साथ घुल-मिल गया। क्षण मेरे हृदय में धड़कने लगे।"

"तुम्हारे हाथ की घडी कहाँ गई ?"—बड़ी चिंता से वह बोली।

"फिर बताऊँगा।"

"खो गई ?"

"नहीं, खोई नहीं।"—कहते हुए भैरव चला गया।

ताँगा कर वह फिर बाजार आया। एक दूकान पर उसका एक बिस्तर रखा हुआ था, उसे लेकर वह फिर दूसरी जगह गया। वहाँ उसके दो बक्से रखे हुए थे उनको भी उसी ताँगे में रख वह सीधे स्टेशन पहुँचा। दूसरे दरजे के टिकट-घर पर वह उतर गया, कुलियों ने उसका सामान उठा लिया। वह दो टिकट खरीद कर स्टेशन के भीतर चला।

वेटिंग-रूम में बासो बड़ी उद्विग्न होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही

थी। भैरव ने पुरानी आदत की लाचारी से समय देखने को फिर कलई में नजर डाली। हाथ खाली था।

"क्यों घड़ी कहाँ गई ?"

भैरव ने स्टेशन की घड़ी में समय देखकर कहा—'अभी दस मिनट बाकी हैं।"

कुलियों ने सामान जगह पर रख दिया। दोनों गाड़ी की प्रतीक्षा वेटिंग-रूम के भीतर ही कर रहे थे। भैरव ने सिगरेट जलाकर उस अवकाश की पूर्ति करनी आरंभ की।

बासो ने पूछा—"घड़ी दे आए क्या किसी को ?"

"नहीं ! राह-खर्च की जरूरत थी। फिर वहाँ पहुँचने पर भी तो जब तक कहीं कुछ काम न मिल जाय। गुजर-बसर के लिये कुछ नकद पैसा चाहिए न !"

"तो क्या बेच दी घड़ी ?"

"बेची तो नहीं, एक मित्र के पास गिरवी रख आया हूँ। देखो अगर भाग्य चमक उठा बंबई में तो छुड़ा लूँगा घड़ी को। नहीं तो माता-पिता का प्रेम छोड़ जा रहा हूँ। जमीन-जायदाद पर लात मार दी ! सखा और मित्रों से विदा ले ली—एक उस घड़ी में ऐसी कौन-सी बात है !"—भैरव ने बड़ी लापरवाही के साथ कहा।

बासो ने एक ठंडी साँस ली—"और यह सब मेरे लिये ?"

"नहीं बासो, तुम्हारे लिये नहीं सब अपने लिये। तुम्हारी इस मूर्त्ति में मेरा ही प्रेम साकार हुआ है। और मैंने अपनी ही घृणा से इस सुख और संपत्ति के आडंबर को, इस प्रभुता के पाखंड को तोड़ दिया।"

"अगर बंबई जाकर कुछ न हुआ तो ?"

"ऐसी बुरी वाणी यात्रा के इस शुभ अवसर पर न बोलो। बंबई में उचित आकांक्षा के अनुकूल सबको मिल जाता है। हम कुछ अधिक की आकांक्षा न करेंगे।"

एक कुली दौड़ा हुआ आया। प्लेटफॉर्म पर चहल-पहल चरम सीमा

को छूने लगी थी। कुली बोला—"हुजूर, गाड़ी आ रही है।"

दोनों बाहर को चले। भैरव बोला—"बासो, मन में उत्साह जमा करो। हम एक नए ही विश्व की पैड़ी पर पैर रख रहे हैं।"

बासो के कोमल अधर किंचित मुसकान पर खिचे। यौवन की मादकता से भरी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें प्रदीप्त हो उठीं। दूर क्षितिज पर घड़घड़ाती हुई गाड़ी आ रही थी।

दोनों गाड़ी में बैठ गए, माल-असबाब भी रख लिया गया। गाड़ी चल पड़ी। अब तक जो बंबई जाने का उत्साह था, वह सहसा गाड़ी के चलने पर टूटने लगा। धीरे-धीरे नगर के प्रिय और परिचित सब घाट-बाट जब छूट गए, भवन-मंदिर आँखों से तिरोहित हो गए और गाड़ी शून्य निर्जन और खेतों पर से होकर जाने लगी तो बासो का मुख उदास हो गया।

भैरव ने पूछा— 'क्यों बासो ? भूख लग गई ? मैं टिफन कैरियर में खाना रखकर लाया हूँ।"

"नहीं, भूख नहीं लगी है। अभी समय ही कहाँ हुआ है ?"

"फिर क्या चिंता व्याप गई तुम्हें ? वह सब मेरी जिम्मेवारी है। हम कहाँ रहेंगे, क्या करेंगे, क्या खाएँगे ? बंबई के लिये मैं बिलकुल परदेसी नहीं हूँ। मैं वहाँ कई बार आया-गया हूँ। वहाँ की सड़कों और लोगों से कुछ परिचय है मेरा। तुम्हारी उदासी मेरा दिल तोड़ देगी।"

"नहीं भैरव, मैं तुम्हारे लिये अपना सब-कुछ निछावर कर दूंगी।"

"लेकिन तुमने अपने मुख की वह प्रसन्नता, वह हँसी-खुशी कहाँ छिपाकर रख दी है ? तुम्हें बराबर उससे मुझे जीवित और उत्साहित रखना होगा, नहीं तो इस भयानक परदेस में बिना पैसे के हम खो जायेंगे।"

"कुछ घर की याद आ गई थी।"

"तुम्हारा किराए का घर है बासो, मैं अपने घर में रहता था, और जिसका अकेला उत्तराधिकारी मैं ही था।"

बासो ने मुसकान के साथ कहा—"अब न होगी भूल।"

उधर घर पर बासो की माँ सात ही बजे से बासो के लौट आने की बाट देखने लगी। सात बजे, आठ का घंटा ठनका, नौ और दस ! अब तो वह घबरा उठी। पास-पड़ोसियों के पास जा पहुँची।

एक ने पूछा—"कितने बजे गए थे ?"

बासो की माँ ने जवाब दिया—"साढ़े पाँच बजे।"

"छः बजे के खेल में या तो देर हो गई होगी, या टिकट नहीं मिला होगा। आठ बजे वाले में गए होंगे। अभी दस ही तो बजा है, खेल खतम हो रहा होगा। फिर सवारी मिली या नही, इधर गली में वह आ भी नहीं सकता। आते ही होंगे।"—एक ने जवाब दिया।

दूसरी ने जान-बूझकर भी अनजान होकर पूछा—"किसके साथ गई है ?"

"और किसके साथ जायेगी ? अपने बाबू के साथ।" बासो की माँ अपनी सफाई देती हुई बोली—"मैं क्या करती ? मेरा कहना माना ही नहीं !"

और एक तीसरी बोली—"रामू पनवारी कहता था, भैरव बाबू के साथ चल दी आज बासो।"

बासो की माँ ने माथा पीट लिया—"हे ! चल दी ! कहाँ को चल दी ! वे तो सिनेमा देखने गए हैं।"

"अब धरा है क्या सिनेमा ? दस कब के बज गए। ग्यारह बजेंगे अब।"

बासो की माँ ने उसके हाथ पकड़ लिए। गिड़गिड़ा उठी—'दीदी, सच बता दो वे दोनों कहाँ गए फिर ?"

"मैं क्या जानूँ कहाँ गए ? एक बात बता दी जो सुनी। तुम तो खाल उधेड़ने को तैयार हो गई।"

बासो की माँ दौड़ी-दौड़ी बजरिया की तरफ गई। रामू पनवारी अपनी दूकान बढ़ा रहा था। बासो की माँ को उधर आते देखकर उसने

ख़ुद ही पूछा—"क्यों बासो की माँ क्या बात है ? बासो कहाँ गई ?"

"यही मैं तुमसे पूछने आ रही हूँ।"—उसकी आँखों में आँसू भर गए थे।

"अरे वह तुमसे पूछकर नहीं गई ?"

"पूछा तो था सिनेमा जाने के लिये।"

"अब तो ग्यारह बजेंगे। सिनेमा देखने कहीं नहीं गए वे। एक बाबू मुझसे कह गए थे उन्होंने उन्हें तांगे में बैठकर स्टेशन को जाते देखा था।"

"माई री !" सिर पीटकर बैठ गई बुढ़िया पनवारी की दूकान के सामने—"अब क्या करूँ मैं, स्टेशन जाऊँ ?"

"घर जाओ, स्टेशन में क्या बैठे होंगे वे ? छः घंटे में वे पहुँच गए होंगे दो सौ-तीन सौ मील की दूरी पर।"

"बड़ा धोखा दिया इसने ? अपनी संतान होकर ऐसा जुल्म कर गई। भैरव बाबू के घर से पता लगेगा, वहाँ जाऊँ ?"

"क्या बात करती हो बासो की माँ ! जब तुम्हारी बेटी तुम्हें कोई खबर नहीं दे गई तो भैरव बाबू क्यों कह गए होंगे ? वहाँ कौन तुम्हारी बात सुनेगा, और आफत में फँस जाओगी। जाओ घर जाओ, देखा जायगा। दुनिया ऐसी ही है।"

"अरे राम दुनिया ऐसी ही है।" बासो की माँ ने कहा—"जो उस दिन ऐसा जानती तो ··"

"चुपो, चुपो माँ, गड़बड़ मत बको, उधर से पुलिसवाला आ रहा है।"—कहते हुए रामू पनवारी ने दूकान बंद कर ली।

माता उदास और निराश होकर घर लौट आई। पास-पड़ौसवाले द्वार ढककर चुपचाप इस ताक में थे बासो लौटकर आई या नहीं, जब उसकी माँ अकेली ही लौटकर आई तो एक बुढ़िया ने उसके यहाँ जाकर पूछा—"क्यों नहीं आई बासो ?"

"नहीं।"—रोते हुए बासो की माँ ने जवाब दिया।

"अब बारह बजेंगे, कहाँ गई ?"

"कहाँ बताऊँ ? भैरव बाबू ऐसे आदमी तो नही थे।"

"मैं तो समझती हूँ, वह अपने घर ही ले गए होंगे उसे। कल को मालूम हो जायगा। सो रहो, कोई फिकर की बात नहीं है।"—इस तरह उसे ढाढ़स बँधाकर बुढ़िया चली गई।

लेकिन माता का हृदय, उसका तर्क उससे कहता था—"वे दोनों तुझे छोड़कर चले गए।" ममता कहती थी—"नहीं, कहीं नहीं गए। देर हो गई किसी कारणवश, रात में नही आयेंगे तो कल सुबह तो ज़रूर ही आ पहुँचेंगे।" इस प्रकार दुविधा के दो पाटों में पिसती रही वह। द्वार बन्द कर दिए उसने, उन पर साँकल नही चढ़ाई! आँखें बंद कर लीं उसने, नींद नहीं छाई उन पर।

बम्बई पहुँचकर भैरव ने फिर एक बार अपनी नकद सम्पत्ति को जोड़ा और बासो से कहा—"अब क्या होगा ?"

बासो ने जवाब दिया—"मैं क्या बताऊँ ?"

"बुद्धि से काम लेना होगा बासो। जब तक कहीं पर कोई आशा नहीं बँधती, तब तक पैसे की बहुत सोच-समझकर रक्षा करनी होगी। इस कनक-नगरी में मनुष्य को ऊँची अट्टालिकाओं में सुशोभित होते भी देर नहीं लगती और फुटपाथों में बिछते भी विलम्ब नहीं लगता"—भैरव बोला।

स्टेशन के बाहर एक फुटपाथ में कुलियों ने उनका सामान रख दिया था और वे दोनों वहाँ पर अपना मार्ग टटोल रहे थे।

भैरव ने फिर कुछ सोचकर कहा—"बासो, अभी किसी होटल के स्वप्न देखना उचित नहीं है। मेरी समझ में किसी धर्मशाला में चलें।"

यही किया गया। वे दोनों एक विक्टोरिया में सामान लादकर चले और हाथ-पैर जोड़कर किसी प्रकार उन्हें एक धर्मशाला में जगह मिल गई। एक छोटे-से कमरे में दोनों ने अपने हाथ से सामान उठाकर रख लिया।

भैरव बोला—"बासो, भगवान् की यह असीम कृपा ही समझनी चाहिए कि हमें यहाँ जगह मिल गई। बिना पैसे की शक्ल दिखाए यहाँ कौन किसे पूछता है ?"

दोनों ने नहा-धोकर चाय पी, कुछ नाश्ता किया, अब क्या हो ? दोनों निश्चय करने बैठे। बासो बोली—"बम्बई समुद्र के किनारे है, मैं तो कहीं भी समुद्र नहीं देख रही हूँ।"

हँसकर भैरव ने उत्तर दिया—"वह सब धीरे-धीरे देख लोगी। सब से पहले हमें पैर रखने के लिये एक आधार को ढूंढ लेना जरूरी है। मैं शहर में जाता हूँ, एक-दो जगह कुछ जान-पहचान है, उनकी मदद से कहीं किसी नौकरी का सिलसिला जमाता हूँ।"

"मुझे भी साथ ले चलो। मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी ?"

"डर कैसा ? हमारा हर समय साथ कैसे हो सकेगा ?"

"हम माँ को साथ क्यों न ले आए ?"

"आगे को देखो अब क्या करना चाहिए। पीछे को देखना नादानी है। भीतर से द्वार बन्द कर लो। मैं ज्यादा देर नहीं लगाऊँगा। तुम्हें विश्राम की जरूरत है, आँखें कह रही हैं। तुम सो जाओ। मेरे एक बात और समझ में आती है। मैं नीचे दूकान से एक ताला खरीद लाता हूँ। उसे बाहर से लगा दूंगा। जब लौटकर आऊँगा तो बिना तुम्हें कोई कष्ट दिए और तुम्हारी नींद को बाधा पहुँचाए ताला खोल लूंगा।"

अन्त में यही निश्चय हुआ। भैरव धर्मशाला की इमारत में ही स्थित बाहर की ओर की एक दूकान में से एक ताला खरीद लाया। उनका कमरा दूसरी मंजिल पर था। ताला लेकर जब उसने अपने कमरे में प्रवेश किया तो एक मनुष्य बासो से पूछ रहा था—"कब होगा यह कमरा खाली ?"

भैरव ने कहा—"आज ही तो यह कमरा मिला है हमें, अभी कहाँ खाली होगा ?"

"कहाँ से आए हो ?"

"उत्तर प्रदेश से।"

"नौकरी ढूंढने ?"

"हाँ।"—कहकर भैरव ने उसकी ओर पीठ फेर ली। वह न-जाने किस तरफ चला गया।

कुछ देर बाद भैरव चला। बासो ने कहा—"जल्दी आना।"

'कोशिश तो यही रहेगी। लेकिन तुम्हें जानना चाहिए, इतने बड़े विस्तार का यह नगर है। एक आदमी इस सिरे पर रहता है तो दूसरा बिलकुल दूसरे सिरे पर! बीच में बीसों मीलों का अन्तर! काम अपना शीघ्र-से-शीघ्र कर लेना है। तुम्हें साहस रखना चाहिए अगर मेरे आने में कुछ देर भी हो गई तो। देखो शायद कोई सुसमाचार लेकर शीघ्र ही आ पहुँचूं—यह भी कोई असंभव बात नही है। तुम सो जाओ, तुम्हारी आँखें नीद से भारी हो उठीं।"

भैरव ने द्वार बन्द किया और उसमें ताला लगाकर चला गया। जब वह बस में बहुत दूर निकल गया तो सोचने लगा—"लेकिन बाहर से ताला लगाने की ऐसी क्या सूझी मुझे। यह बासो की नीद को न तोड़ने का बहाना क्या उसके एक पार्श्व पर उसके प्रति अविश्वास नहीं है ?"

भैरव ने माथा हिलाकर उस विचार को सिगरेट के धुएँ के साथ उड़ा दिया वायुमंडल में और बस से उतर गया वह दादर की चौड़ी सड़क पर। कुछ दूर पैदल चलकर उसने एक भवन का फाटक पार किया। ग्राउंड फ्लोर पर के एक मकान के बरामदे में चढ़कर घंटी दबाई।

द्वार खुला, एक परिचारिका ने आकर पूछा—"कौन है ?"

भैरव ने पूछा—"सरकार बाबू को बुला दो।"

"यहाँ कोई सरकार बाबू नहीं है। यहाँ जोगेश राव रहते हैं।"

भैरव बाहर चला आया और मन में सोचने लगा—"कई कोठियाँ तो बिलकुल एक ही सी हैं। उनको पहचानना कठिन है।" बहुत घूमा-फिरा वह। कहीं सरकार बाबू का कोई पता न चला!

अपने पिता के किसी परिचित के पास जाना उसके लिये घोर अपमान की बात थी। उसे अपने ही बल और पौरुष का अभिमान था। उसने फिर याद किया। उसका एक मित्र सांताक्रुज में रहता था। दादर के रेल स्टेशन पर इस बार उसने रेल का सहारा लिया।

रेल से उतरकर वह ज्यों ही मित्र के घर गया तो जान पड़ा मित्र ने मकान बदल लिया है और माटुंगा की तरफ कहीं रहते हैं। ठीक-ठीक पता कोई नहीं बता सका।

फिर भैरव ने कमर कसी। उसे भूख लग गई थी। दोपहर बीत चुकी थी। उसने एक जलपान-गृह में प्रवेश कर हल्का भोजन किया। उसे बासो की याद आई—वह सोचने लगा—"उसे ताले में बन्द कर कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया मैंने। जाकर खोल आऊँ? आखिर वह भी तो मेरी ही भाँति एक जीव है। उसे भूख-प्यास लगी होगी?"

इसी समय कोई दूसरा उसके मन में बोल उठा—"ऐसे भी क्या कमज़ोर मिट्टी के मानव हो तुम! भूख लगी होगी तो टिफिन कैरियर में बहुत खाने-पीने को पकवान, मेवे और मिठाइयाँ रखी हैं। कंडी में संतरे और केले हैं। चाय की बासो को अधिक आदत नहीं, सुराही पानी से भरी रखी है।"

होटल में खाते-पीते समय उसकी एक मनुष्य से जान-पहचान हो गई। उसका सुख-दुख सुनकर उस मनुष्य ने उससे कहा—"आप अपनी तकदीर रजत-पट पर क्यों नहीं आजमाते? आप का दिखाव, कद और गठन मुझे तो अच्छा जान पड़ता है। बहुत सम्भव है तुम्हारी आवाज़ भी माइक खूबसूरती से उठाले। जाकर क्यों नहीं किसी सिनेमा के डायरेक्टर से मिलते। बहुत सम्भव है कोई आपको ढूंढता हो। अगर आपने कहीं उसे ढूंढ लिया तो फिर एक ही रात में आपका सितारा चमक जायगा।"

भैरव के भीतर-ही-भीतर एक बड़ी मधुर पुलक पैदा हो गई। वह ऐसा तो चाहता ही था। इसी विश्वास पर वह बम्बई आया भी था।

वह खूब अच्छी तरह समझता था—बासो के रूप की एक-एक दिशा, उसके गति-विधि का एक-एक कोण, उसकी भावनाओं की एक-एक रेखा, उसकी बोली की एक-एक स्वर-भंगिमा, उसकी दृष्टि की एक-एक बंकिमता और उसके भौंहों की एक-एक ग्रंथि—रागी और वैरागी दोनों को प्रभावित कर सकती है।

लेकिन भैरव ने बासो को आगे बढ़ाकर किसी सिनेमा कंपनी के द्वार खटखटाने अपमानजनक समझे। उस नए मित्र की बात ने उसके भीतर एक नया उत्साह लहरा दिया। वह सोचने लगा—"क्यों किसी मित्र की खोज करूँ? झूठी खुशामद! अपने ही आधार पर स्थिर हो जाऊँगा मैं।"

उसने उस नए मित्र से पूछा—"तो क्या करना चाहिए मुझे?"

'महालक्ष्मी चले जाओ। थोड़ी दूर चलकर वह बड़ी इमारत दिखाई देगी तुम्हें।"

"वह मुझे मालूम है।"

"बस वहीं, जाओ और देखो तकदीर कौन-सा स्वर बजाती है।"

चाय पीने के अनंतर भैरव ने उस मित्र को सिगरेट पिलाई और ठीक समय पर एक बढ़िया बात सुझा देने के लिये धन्यवाद दिया।

मित्र बोला—"मैं ट्राम की लाइन में इन्सपेक्टर हूँ। चार बजे से मेरी ड्यूटी है। नहीं तो मैं तुम्हारे साथ आता।"

भैरव फिर महालक्ष्मी के लिये रवाना हो गया। वहाँ पहुँचकर इधर-उधर डायरेक्टरों को टटोलने लगा।

एक ऑफिस पर पहुँचा तो बॉय ने कहा—"जरा देर ठहरो। अभी डॉयरेक्टर साहब बहुत जरूरी काम में हैं।"

दूसरी जगह मालूम हुआ—"डायरेक्टर साहब छः बजे से पहले नहीं मिल सकते।"

तीसरी जगह कहा गया—"एक कागज में अपना नाम-पता, उमर और मतलब लिखकर रख जाओ। साथ ही अगर अभिनय करना चाहते हो तो एक फोटो भी। तीन-चार दिन में जवाब मिल जायेगा।"

तमाम ऑफिसों में घूमता रहा भैरव, उसने निश्चय कर लिया था कि अपने को ढूंढनेवाले को ढूंढ ही लूंगा। ढूंढते-ढूंढते उसे शाम हो गई, लेकिन उसका उत्साह कम नहीं हुआ। बहुतों ने उससे वादे किए, कई लोगों ने उसे मीठी-मीठी आशाएँ दिखाईं।

उसका आशय था, तुरन्त ही काम सिद्ध हो जाय। एक ने कहा—"भाई, तुरन्त ही कुछ नहीं होता। मिट्टी में दाना बोओ तो वह भी कई-कई दिन ले लेता है जमीन की सतह पर आने के लिये ही। उस पर भी ठीक-ठीक पानी और धूप उसे मिले तो। ऐसे बाजीगर यहाँ कोई नहीं है जो चुटकी बजा हथेली पर पेड़ उपजाकर रख दें।"

शाम ढलकर रात हो गई। सिनेमा—विश्वास की उपज का क्षेत्र वहाँ तो दिन में ही अँधेरा कर रात उपजा ली जाती है। दीपक जल उठते हैं। भैरव जब अनेक ऑफिसों की परिक्रमा कर आशाओं के कई बण्डल बाँधे धर्मशाला को जाने के लिये बाहर आया तो चारों ओर बिजली के दीप जगमगा उठे थे।

उसकी गति में उमंग थी। "अवश्य कहीं-न-कहीं वह धर्मशाला की अवधि पूरी होने से पहले कोई ठौर ढूंढ ही लेगा। उसे काम मिल जाने पर फिर बासो को काम नहीं ढूंढना पड़ेगा। काम उसे ढूंढता हुआ चला आएगा। फिर हमें कोई कष्ट न रहेगा।"—वह सोचता चला।

शाम हुई, अँधेरा हो गया। बासो तब तक भी सोई ही रही। अचानक किसी ने बाहर से द्वार खटखटाया—"उठो, द्वार खोलो।"

आवाज़ जानी-पहचानी न थी। पहले बासो द्वार खोलते हिचकिचाई। दूसरी बार फिर किसी ने झिड़ककर कहा—"अभी तक सो रही हो क्या? द्वार खोलो।"

बासो ने द्वार खोले। वह जाने कौन था। साधारण वेष था, बड़े परिचित की भाँति वह बासो के कमरे में घुस गया और बिजली की बत्ती जलाकर फौरन ही बिस्तर बाँधने लगा।

बासो ने पूछा—"भैरव बाबू कहाँ हैं?"

"भैरव बाबू ही ने भेजा है मुझे, बाहर मोटर खड़ी है। चलो फौरन ही बुलाया है उन्होंने। उनके दोस्त मिल गए हैं। चलो देर न करो।" —आगन्तुक ने कहा। दो कुलियों को भी बुला लाया था वह।

थोड़ी ही देर में सब सामान बाँधकर बाहर मोटर में रख दिया गया। आगन्तुक बासो को लेकर मोटर की ओर चला।

बासो का ख्याल था शायद भैरव मोटर में बैठे होंगे, वहाँ उन्हें न पाकर वह कुछ हिचकिचाने लगी।

आगंतुक बोला—"आज पहली ही मर्त्तबा बम्बई आई हो ? किसी गाँव से क्या ? मोटर भी पहले कभी नहीं देखी ?"

बासो बड़ी लज्जित हो गई। पूछा उसने—"वह कहाँ हैं ?"

"कौन, भैरव बाबू ?"

"मोटर में बैठो तो सही। उन्हीं के पास ले जा रहा हूँ मैं तुम्हें।"

बासो मोटर में बैठ गई। लेकिन उसका हृदय धड़क रहा था। मोटर तेजी से न जाने कहाँ जा रही थी, नर-नारियों की अपार भीड़ से होकर। एक क्षण बासो का हृदय प्रसन्न हो जाता और दूसरे ही क्षण वह उदास होकर सोचने लगती—"कहाँ जा रही है यह मोटर ? भैरव के निकट या भैरव से दूर ! कहाँ जा रही हूँ मैं ? बिना उनकी आज्ञा या पत्र के ? यह मेरी बुद्धिमानी है या मूर्खता ?"

कई सड़कों पर मोड़ खाती हुई मोटर न-जाने कहाँ-कहाँ होती चली, बासो को क्या पता ? अंत में वह एक कई मंजिल की गगनचुंबी अट्टालिका के पास जाकर रुक गई। मोटर का द्वार उस मनुष्य ने खोला और बासो से कहा—"यहीं उतरना है।"

बासो ने उतरकर उस अट्टालिका को देखा और वह विस्मय-स्तब्ध हो गई। वह मनुष्य बोला—"सामान अभी आ जायगा। आप आइए मेरे साथ।"

बासो उसके पीछे-पीछे चली। थोड़ी दूर भीतर जाकर उस मनुष्य ने लिफ्ट का प्रवेश खिसकाया और बासो से कहा—"चलिए इसके

भीतर।"

बासो फिर हिचकिचाई। उसकी समझ में नहीं आया वह क्या बला थी। मनुष्य हँसा—"तभी तो कहा मैंने आप किसी गाँव से आई हैं।"

बासो ने उसकी आज्ञा मानी। उसने स्वयं भी लिफ्ट में दाखिल होकर उसका द्वार बंद किया और लिफ्ट का बटन दबाया। लिफ्ट ऊपर को खिसक चला। चौथी मंज़िल पर जाकर रुक गया। दोनों उसमें से बाहर निकले। लिफ्ट का द्वार बंद कर दिया गया।

उस मनुष्य का अनुसरण करती हुई बासो एक के बाद एक दूसरे कमरे में जा पहुँची। खूब सजा हुआ था कमरा। चारों ओर परदे लगे हुए थे। बिजली की बत्तियाँ प्रकाशित थीं। मेज पर सुगंधित धूप जल रही थी। एक तश्तरी में कुछ फल और मेवे रखे हुए थे।

"बैठिए।"

बासो ने पूछा—"भैरव बाबू कहाँ हैं?"

"बैठिए तो सही आप, वह भी आ जायेंगे। उनको ढूंढकर लाता हूँ।"—कहकर वह मनुष्य चल दिया बाहर को।

बासो काँपते हुए हृदय को लेकर बैठ गई। एक-एक क्षण कई-कई युगों-सा बढ़ गया। वह कभी बैठती सोफे पर, कभी फिर कुछ अन्यथा विचार आने पर उठ जाती। एक मिनट बीता, दो मिनट—दस मिनट! भैरव बाबू का पता नहीं!

भरव बाबू रजत पट की अनेक सुवर्ण आशाओं को हृदय में लिए धर्मशाला को चले। सोच रहे थे—"बासो बहुत खुश हो जायगी। चार डायरेक्टरों ने तो उसे पूरी-पूरी आशा दिलाई है अपने-अपने चित्रों में काम देने की। एक ने कहा है, अगर मैं कहीं से कुछ आर्थिक सहायता जुटा सकूं तो वह मुझे अपने आगामी चित्र में हीरो का काम भी दे देंगे। और अगर उन्हें बासो की योग्यता का पता लग जाय तो · ? खुद बासो भी नहीं जानती, उसके भीतर सिनेमा जगत की एक प्रख्यात नटी छिपी

हुई है। उसी दिन मैं बताऊँगा पिता जी को जिस दिन बासो के चित्र भारत के घर-घर टँग जायेंगे। वही दिन इस बात का सबूत होगा कि विद्या और कला पर कुलीनता का ही अधिकार नहीं है।"

भैरव बाबू इन्ही विचारों में लहराते हुए ट्राम में चले जा रहे थे। ऐसी कोई जल्दी नहीं थी उन्हें और जो भी पैसा बच जाय जब तक उसके कमाने की सूरत नहीं बनती—वह लाभ-ही-लाभ था।

वह ट्राम के स्टेशन पर उतर पड़े और धर्मशाला की ओर पैदल चल पड़े। एकाएक उनके बड़ी चिंता का उदय होने लगा—"बिचारी को दिन भर एक जेलखाने में बंद कर गया। क्या वह सोचती होगी और क्या लोग ? दम घुट गया होगा उसका। मानवी अधिकारों के इस विमुक्त वायुमंडल में उसके घूँघट के ऊपर यह कारागार का ताला—अवश्य मेरी बर्बरता है। अब भूलकर भी ऐसा नहीं करूँगा।"

भैरव धर्मशाला का फाटक पार कर भीतर को चला। कुछ लोग उसे देख रहे थे। उनका जो भी मतलब हो, पर भैरव को ऐसा जान पड़ा मानो वे उसी की बाबत कुछ बातचीत कर रहे थे। उनकी वह दृष्टि उसके हृदय में गहरी चुभने लगी, वह काँप उठा।

वह धर्मशाला की सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर को जाने लगा। उसके ऐसा जान पड़ा—वह कहाँ जा रहा है वहाँ ? कौन है वहाँ उसका ? वह दौड़कर तीन नंबर के कमरे में गया। मन में वह अपने लगाए हुए ताले को देख रहा था। पर क्या देखा उसने ?

कुछ समझ ही में नहीं आया उसके। चारों ओर अँधकार देखने लगा वह। माथा पकड़कर बरामदे की लोहे की रेलिंग का सहारा लिया उसने। सामने तीन नंबर का कमरा खुला था। उसमें किसी और का बिस्तर सजा और सामान खुला पड़ा था। कोई दूसरी ही महिला वहाँ विराजमान थी—उसके दो बच्चे खेल रहे थे उसके निकट।

अपने नवीन जगत का जो उजला दृश्य रच रहा था भैरव वह सब बालू के नगर-सा भूमि पर बिखर गया ! साहस रखकर उसने बरामदे

में जलनेवाली बिजली की ज्योति में फिर अपने कमरे के नंबर को पढ़ा—"तीन !'

वह और इधर-उधर कई कमरों तक हो आया, और किसी कमरे में उसका ताला नहीं था। उसकी तमाम सुध-बुध जाती रही। वह क्या करे, उसकी समझ उसका साथ देने से इनकार करने लगी।

वह तीन नंबर के कमरे के द्वार पर खड़ा हुआ। उसने उस कमरे को पहचाना। भीतर से महिला ने पूछा—"किसे ढूँढते हो ?"

महिला के दोनों बालक अपनी क्रीड़ा छोड़कर, उसके कंधों पर लटक गए, ज्योंही उन्होंने एक अपरिचित को कमरे के भीतर अपनी गर्दन डालते देखा।

भैरव ने पूछा—"इस कमरे में हमारा सामान था वह कहाँ गया ?"

"प्रबंधक से पूछिए, हमें तो यह खाली ही मिला।"

"और मेरी श्रीमती भी थीं, वह किस कमरे में चली गईं ?"

"हमें यह कुछ नहीं मालूम, वह सामने दफ्तर है, वहाँ जाकर पूछिए शायद कमरा बदल दिया हो।"—महिला ने जवाब दिया।

आशा में भरकर भैरव मैनेजर के पास गया। बोला—"तीन नंबर के कमरे में मेरा ताला लगा था, किसने खोला ?"

मैनेजर का एक सहकारी बोला—"हम नहीं जानते। जिसका ताला होगा उसी ने खोला होगा।"

"मैं तो यह खड़ा हूँ आपके सामने। और मैंने नहीं खोला।"—अब तो भैरव का मुँह पीला पड़ गया।

"हम क्या जानें, हमने नहीं खोला। क्या था तुम्हारे कमरे में ?"

"क्या था ? मेरा सामान था और मेरी श्रीमती थीं।"

कुछ लोग जो वहाँ मौजूद थे, सब हँस पड़े। भैरव के कटे में और भी नमक-मिर्च पड़ गया। वह कुछ रोष में भरकर बोला—"क्यों इसमें हँसने की क्या बात है ?"

"क्यों हँसने की बात कैसे नहीं ? आपकी श्रीमती क्या कोई बक्स

थीं या होल्ड डॉल जो आप उन्हें ताला लगाकर चले गये ? बड़े अजीब आदमी हैं आप !''

भैरव अपने दुख में डूब गया था। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

मैनेजर का सहकारी बोला—''अभी मैनेजर साहब आते हैं, उन्हें शायद कुछ मालूम हो।''

भैरव एक कटे हुए वृक्ष की भाँति ऑफिस की एक कुरसी पर बैठ गया।

पास ही बैठे हुए एक आदमी ने दैनिक पत्र हटाकर पूछा—''क्या कहीं बाहर से आए हो ?''

''हाँ भाई।''

'क्या काम करते हो ?''

''काम तलाश करने आया हूँ।''

उसने फिर अपना अखबार उठा लिया और उसे पढ़ने लगा। थोड़ी देर में मैनेजर आ पहुँचे।

भैरव ने ऑफिस के बाहर ही उन्हें पकड़कर कहा—''मैनेजर साहब, मेरा कमरा किसने खोला ?''

''कौन-सा ?''

''यही नंबर तीन।''

''तुम्हारा ही कोई आदमी आया होगा।''

''मेरा कोई आदमी नहीं है यहाँ।''

''हम क्या जानें फिर ?''

''तुम क्यों नहीं जानते ? तुम मैनेजर किस बात के हो ?''

''मैनेजर इंतजाम के लिये हैं। इंतजाम करते ही हैं। किसी के चेहरे पर तो कुछ लिखा है नहीं। उसकी जेब में क्या है, इसको ही कौन जान सकता फिर किसी के दिल में क्या है कौन बता सकता है ? क्या माल था आपका ?''

''माल की ऐसी-तैसी ? बिस्तर-ट्रंक की परवा किसे है ? मेरी

श्रीमती थीं, कहाँ गई वे ?"—भैरव ने बड़ी विह्वलता से तीन नंबर के कमरे की तरफ संकेत कर मैनेजर की ओर दृष्टि की। उसकी दृष्टि में एक विक्षिप्तता झाँक रही थी।

मैनेजर ने सिर से पैर तक भैरव को देखा और मन में यह निर्णय करने लगा यह आदमी पागल तो नहीं है।

भैरव उसकी यह मुद्रा देखकर चिढ़ गया, बोला—"क्या देखते हो ? तुम अपनी ड्यूटी में हाजिर नहीं रहते ? क्यों नहीं रहते ?"

"चुप रहो ! मेरी ड्यूटी की देखभाल करनेवाले तुम कौन हो ?"

"मेरा सर्वस्व चला गया और तुम्हें पता ही नहीं।"

"तो क्या मैं तुम्हारी औरत का चौकीदार था ? ट्रंक-बिस्तर बेजुबान चीजें हैं, कोई भी ले जा सकता है। लेकिन जैसा कि तुम कहते हो तुम्हारी औरत खो गई। कैसे खो गई ?"

बहुत-से लोग आस-पास के वहाँ आकर जमा हो गए थे। सब तमाशा देख रहे थे।

"यही तो मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि वह कहाँ गई ?"—भैरव ने पूछा।

"अजीब आदमी हो ? मैं कहता हूँ अगर कोई उसे बलपूर्वक ले जाता तो वह रोती-चिल्लाती नहीं ? यहीं पर मेरा ऑफिस है और वह चौबीसों घंटे खुला रहता है। वहाँ कोई-न-कोई हर वक्त धर्मशाला की आवाजों और टेलीफोन की घंटी पर कान दिए रहता है। मैं कहता हूँ तुम्हारी औरत को कोई नहीं चुरा ले गया।"

"फिर क्या कमरे में से उड़ गई हवा में ?"

"हवा में उड़ गई या किसी के साथ उड़ गई ? मैं ठेकेदार हूँ क्या तुम्हारी औरत का ?"

मैनेजर की रूखाई को अब तक भैरव जहर की घूंट-सा पीता जा रहा था, अब सहन न हो सका उससे। बरामदे के कोने में एक कूड़ादान रखा था टीन का। उसने उसे उठा लिया और मैनेजर के सिर पर उसे दे मारने को दौड़ा—"बेईमान ! बैठे-बैठे तनखा खाता है और तमाम

चोर-उचक्कों का अड्डा बनाकर रख दिया है यहाँ !"

लोगों ने बीच-बचाव कर दिया। मैनेजर चिल्लाया—"पकड़ो इसे ! क्या नशा पीकर आया है यह कोई ?"

क्रोध के आवेग में कुछ दिखाई-सुनाई न दिया भैरव को। वह सीढ़ियों से नीचे उतरता हुआ कहता जा रहा था—"यह धर्मशाला है, या बेईमानों और बदमाशों की गुफा ?"

नीचे उतरकर उसे धर्मशाला के प्रांगण में फुहारे के पास एक संगमरमर की मूर्ति दिखाई दी। शायद वह धर्मशाला के किसी दाता या संस्थापक की थी। उसे लक्ष्य कर भैरव अपने जलते हुए जोश में बोला—"यह हैं इस धर्मशाला के संस्थापक ! यह न होते तो यह धर्मशाला भी न होती, न मैं यहाँ आता, न मेरी बासो जाती।"

फुहारे की दीवार के पास लैम्प के खंभे की एक टूटी लोहे की छड़ पड़ी थी। भैरव उसे घुमाने लगा।

ऊपर से मैनेजर चिल्ला रहा था—"पकड़ लो !"

"किसकी ताकत है ? मैं सिर फोड़ दूँगा।"

किसी का साहस न हुआ उसके निकट जाने का। अंत में उसने अपना सारा गुस्सा निकाल दिया उस स्टैच्यू के ऊपर। उसने वह लोहे की छड़ दे मारी उस पर। मूर्ति की नाक टूट गई। ऊपर से मैनेजर चिल्लाया—"जाने न पाए ! पकड़ो ! पकड़ो ! मैं टेलीफोन कर पुलिस को बुलाता हूँ।" मैनेजर ऑफिस को भागा।

कुछ लोग भैरव को पकड़ने दौड़े। वह भाग गया सबकी आँखों में धूल झोंककर। एक गली में होकर कुछ ही देर में कहाँ का कहाँ हो गया ? जाते-जाते चौपाटी पर निकल गया, वहाँ एक लोहे की बेंच में बैठकर विचार-मग्न हो गया।

"क्या करूँ ? अब कहाँ जाऊँ ? बासो को कोई धोखा देकर उड़ा ले गया या वह मुझे धोखा देकर चली गई ? कुछ समझ में नहीं आता। लाखों मनुष्यों की आबादी का यह नगर ! मैं कहाँ खोजूं उसे ?"

समुद्र की ठंडी-ठंडी हवा उसे असह्य हो उठी। अपने मन में बोला वह—"बड़ा भयानक यह जगत है। अपने जीवन की कठिनाइयों को हल करने आया था। यहाँ तो वे चरम सीमा को पहुँच गईं ! अब क्या करना चाहिए मुझे ?" उसने जेब में हाथ डालकर टटोला। दस-दस के दो नोट, कुछ खिरीज के सिवा और सब रुपया उसके संदूक में ही था। कपड़े जो कुछ उसके बदन में थे वही उसके अपने रहे।

एकाएक उसे धर्मशाला का उपद्रव याद आ गया—"वह मैनेजर ज़रूर मेरे पीछे पड़ा होगा। उसने ज़रूर पुलिस में मेरा हुलिया लिखा दिया होगा। यहाँ मेरे पास दूसरा कपड़ा भी नहीं कि अपने तन पर का रंग बदल डालता। अगर पुलिस के हाथों में पड़ गया तो फिर बड़ी मुश्किल हो जायगी।"

भैरव ने अपना कोट खोलकर हाथ में ले लिया। रात के समय उसकी वह हरकत भी कोई मतलब नहीं रखती थी। समय का कोई अनुमान न हो सका उसे। सामने से एक बस आ रही थी। वह उसमें चढ़ गया और विक्टोरिया टर्मिनस चला गया।

बड़ी भूख लगी थी उसे। सबसे पहले उसने कुछ सस्ता भोजन किया, फिर सोचने लगा—"कहाँ जाऊँ ?···बासो के चले जाने पर अब तो जीवन का कोई लक्ष्य ही नहीं रहा। फिर जो भी, जहाँ की भी गाड़ी तैयार है, उसी में बैठकर चला जाना है···टिकट ? नहीं पैसा कहाँ है ? उदर-पूर्ति ज़रूरी है।"

भैरव ने अपने पिता को याद किया—"जिसको लेकर झगड़ा था, वह बासो तो गायब हो गई ! तब क्या करूँ ? घर ही को चल दूँ और माता-पिता का अनुचर होकर उनकी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनूँ !··· नहीं ! संपत्तिवानों के इस अत्याचार का विरोध करना है मुझे। संपत्तिवान होकर खुद एक अत्याचारी बन जाऊँ ? धिक्कार है ऐसे जीवन को ! बासो की माँ को वहाँ क्या जवाब दूंगा ? बासो किसी तरह मुझे छोड़कर गई हो। उसकी माँ से उसका बिछोह करानेवाला तो मैं ही हूँ !"

"बासो चली गई तो जाने दो। उसका पाप-पुण्य उसके साथ है और मेरा मेरे। जाने दो बासो को, वह मेरे मन की दुर्बलता को लेकर चली गई। और भी महान् लक्ष्य मेरे जीवन का बन सकता है। मुझे इन संपत्तिवानों के पाप का किला तोड़ना है और इन धर्म के ठेकेदारों की पोल खोलनी है। भोली और ग़रीब जनता इन दोनों के पापों से पिस रही है। मैं उसके त्रास को मिटाऊँगा। मेरे जीवन का यही अर्थ है।"

भैरव को जीवन में एक नया लक्ष्य और नया मोड़ मिल गया, वह उस पर अग्रसर होने लगा—"बासो! बासो! उसके कारण मुझे धनी पिता के पाखंड का पता चला और बासो! उसी की वजह से मुझे इन धर्म-संस्थानों की पोल ज्ञात हुई। बासो अब इस जीवन में कहीं न मिलेगी यह मेरे दिल की आवाज है। उसको ढूंढने की कोशिश बालू में से तेल निकालना है। चलूं, जब मेरे हृदय में चलने का उत्साह है तो चारों तरफ रास्ते ही रास्ते हैं।"

भैरव ने फाटक पर नज़र बचाई और प्लेटफॉर्म में घुस गया। गाड़ी भर गई थी, अभी उसके चलने में कुछ देर थी। उसके पास कोई सामान तो था नहीं। गाड़ी के चलने पर किसी भी डिब्बे में वह घुस पड़ेगा, ऐसा उसे विश्वास था।

एक चायवाले से लेकर उसने एक प्याला चाय का पिया। यात्रियों के दल इधर-से-उधर आ-जा रहे थे। फिर उसके भीतर से उसकी कमजोरी जाग उठी—"क्या यह संभव नहीं हो सकता इस भीड़ में कहीं पर बासो भी मुझे ढूंढ रही हो?·· तब तो फिर एक बार मेरे जीवन का लक्ष्य बदल सकता है! नहीं! नहीं!"—बड़ी निराशा से उसने चारों ओर देखा।

"बासो को ताले में कैद कर मैं गया था, कैसा अविश्वास किया मैंने उसका इसीलिये वह मुझे छोड़कर चली गई!"—उसने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला, वह खाली था। उसने एक सस्ती सिगरेट ली

और उसे सुलगाकर पीने लगा। वह उसके गले में लगने लगी।

गार्ड ने सीटी दी। वह दौड़कर एक डिब्बे में जा घुसा। बड़ी निराशा-भरी दृष्टि से छूटते हुए बंबई को देखकर मन-ही-मन कहने लगा—"विदा! बंबई से विदा! आशा और उमंगों की समाधि से विदा! बासो से विदा! जिसके लिये सबको छोड़कर आया था—उसे भी छोड़ देना पड़ेगा। ऐसा जो परदे के पीछे छिपकर हमारे अभिमान को चूर-चूर कर देता है, कौन है वह!···कोई नहीं! सिर्फ एक संयोग—एक ख्याल!"

कुछ लोगों ने उसके बैठने को जगह कर दी। वह बैठ गया।

•

७

ल्हासा में

बूढ़े दादा के गाँव से ल्हासा डेढ़ दिन के पड़ाव पर था, कलजन उस दूरी को एक ही दिन में तय कर लेने की दृढ़ता से चला। मार्ग में न कहीं पर क्षण-भर के लिये बैठकर उसने विश्राम किया, न किसी परिचित के मिल जाने पर कोई बातें ही कीं।

प्रकृति उसके पक्ष में थी। साफ़-स्वच्छ आकाश, बादल का कहीं पर कोई टुकड़ा न था। वायु में न वेग था, न थी ठंडक। मार्ग में बर्फ भी नहीं थी कहीं पर पहले दिन की। या तो इस तरफ गिरी ही नहीं थी, या वर्षा अथवा और किसी कारण से ठहरी नहीं थी।

इतनी चेष्टा करने पर भी कलजन ल्हासा से दो कोस की दूरी पर ही था जब सूर्य अस्त हो गए। जाड़ों की संध्या, विस्तार में बहुत छोटी, शीघ्र ही अँधेरा हो गया। ठंडी हवा बहने लगी और पाला पड़ने लगा।

दिन-भर का हारा-थका कलजन अपने लक्ष्य में ज़रा भी परास्त नहीं हुआ। वह अंधकार, शीत और श्रम सबके साथ युद्ध करता हुआ हर क़दम पर आगे को बढ़ता ही जा रहा था।

जाड़ों के छोटे दिन, घर पहुँचते-पहुँचते मानो आधीरात बीत गई! पास-पड़ोसवाले द्वार ढक दीप बुझा संध्या से ही गुम-सुम हो गए थे, इससे और भी निशा गंभीर हो गई थी।

घर के पास आते ही कलजन को ऐसा जान पड़ा मानो उस घर का सारा प्रकाश बुझ गया और वह एक प्राणहीन जीव की भाँति पड़ा है—केवल पिंजर ही पिंजर! उसमें चहल-पहल और जीवन फैलानेवाला पक्षी न-जाने कहाँ को उड़ गया है?

इतनी दूर से जिस घर की प्रीति से खिंचा हुआ दौड़ता चला आ रहा था, अब उसके पास आते ही सहसा वह रुक गया। उसके पैरों में मानो सीसा भर गया। वह मन में सोचने लगा—"अकेले कैसे रहूँगा अब इस जेल के भीतर ? एक साथी तो अब किसी प्रकार नहीं लौट सकता और दूसरा मनाने पर भी न आयेगा।"

उसने काँपते हुए हाथों से ताला खोला। अँधेरे में टटोलता हुआ किसी प्रकार दीवट के पास गया। उससे ज़रा और आगे हाथ बढ़ाकर उसने बुद्धदेव की प्रतिमा के चरणों का स्पर्श कर अपने पापों के लिये प्रश्रय ढूंढने की चेष्टा की···यह क्या ? उसने और आगे को हाथ बढ़ाया !···चारों तरफ दोनों हाथ बढ़ाए ! वह चीख उठा—"हे देव ! इस दुर्दिन में रूठकर क्या तुम भी चले गए ? अब संदेह नहीं रहा, पापी मैं ही हूँ।" थोडी देर के लिये वह संज्ञाशून्य-सा होकर भूमि पर बैठ गया।

फिर उठा—'इतने वर्षों से जिस ताँबे की प्रतिमा को पूजता रहा, वह निस्संदेह नहीं है अपनी जगह पर। फिर कहाँ गई ?"

उसने इधर-उधर टटोलकर भूमि पर से एक मिट्टी का दीपक ढूंढा। उसके मन में संदेह जाग उठा, उस घर की गृहिणी ही नहीं, उस घर का देवता ही नहीं, उसका साथी चीनी भाई ही नहीं और भी शायद सब-कुछ वहाँ से चला गया।

वह उस दीपक को लेकर पास ही एक पडौसी के यहाँ गया और उसके यहाँ से उसने कुछ घी माँगकर उस दीपक में प्रकाश की लौ उठाई। पड़ोसी ने बड़ी अन्यमनस्कता से उसकी सेवा की। लेकिन जब उसने अपनी पत्नी के निधन की बात कही, तो फिर वह मानो बड़ी गहरी नींद से जाग उठा और तन-मन-धन से कलजन की सहायता को तैयार होकर कहने लगा—"मेरे लायक काम बताओ भाई। यह तो बड़ी बुरी खबर तुमने सुनाई।"

"सब भगवान की इच्छा है। तुम्हें समय है तो मेरे साथ चलो मेरे

घर तक।"

"क्यों ?"—कुछ डरता हुआ पड़ौसी बोला।

"मुझे बड़ी डर लग रही है वहाँ जाते हुए।"

"मेरी समझ में इस समय तुम वहाँ ताला लगाकर यहीं आ जाओ। अब कैसे वहाँ भोजन का प्रबन्ध करोगे ? कुछ थोड़ा-सा यहीं खा-पीकर आराम कर लो।"

"तुम क्यों मेरा परिहास कर रहे हो। दस पीढ़ियों से पूजित, पूर्वजों की धरोहर वह बोधिसत्व की प्रतिमा चली गई !"

"कौन ले गया ?"

"क्या मालूम ?"

"ले जाने दो। बाहर की प्रतिमा के जाने से क्या होता है ? पूजा की जो भावना है, उसी से तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। उसे कौन ले जा सकता है ? सो रहो हकीम जी, भीतर आ जाओ, मैं द्वार बंद कर लूँ। ओह ! कैसी ठंडी हवा बह रही है।"

"वह बड़ी अद्भुत मूर्ति थी, खास भारतवर्ष से आई थी।"

"सारी धरती बोधिसत्व के जन्मों का विस्तार है, फिर केवल भारत ही का तुम्हें क्या मोह हो गया ? और तो कुछ नहीं गया ?"

"जब सत्य और अहिंसा चली गई तो फिर शेष ही क्या रहा ? लेकिन बर्त्तन-भाँडे, कपड़े-कंबल, जौ-जई, मक्खन-मांस, पोथी-पत्रा, दवा-दारू भी जो-कुछ था सबका सफाया हो गया जान पड़ता है।"

पड़ौसी ने कलजन का हाथ भीतर खींचकर दरवाजा बंद कर लिया और बोला—"तब क्या फिकर है, अब तो ताला लगाने का बखेड़ा ही चला गया। आँख फूटी, पीड़ा गई !"

कलजन लौटने लगा—"तुम अभी जवान हो, जीवन के साथ परिहास करने के लिये अभी तुम समझते हो तुम्हारे पास काफी उमर है। मैं मृत्यु का भयानक तांडव देखकर आ रहा हूँ। मैं गंभीर हूँ।" उसके एक हाथ में जलता हुआ दीपक था। उसने दूसरे हाथ से द्वार की सांकल

खोल ली और सावधानी से दीपक की हवा से रक्षा करता हुआ बाहर को जाने लगा।

पड़ौसी ने अपने शोंबे की तरफ हाथ बढ़ाते हुए कहा—"हकीम जी, ठहरो मैं भी आता हूँ।"

कलजन ने बड़ी उदासीनता से जवाब दिया—"नहीं मित्र, तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं। मैंने भय को जीत लिया है।"

"कैसे ?"

"मृत्यु एक अटल सत्य है। उस यात्रा में हम सबको अकेले ही जाना है, फिर अकेले का कैसा भय।"—कहते हुए कलजन बाहर को चला गया।

पड़ौसी ने भी उसका अनुसरण किया। काँपते हुए कलजन ने अपने घर के भीतर प्रवेश किया। जो चित्र उसने अपनी कल्पना में बना रखा था, उससे भी कहीं गया-बीता दृश्य उसके देखने में आया।

पड़ौसी ने पूछा—"हकीम जी, क्या-क्या गया ?"

सारे मकान में कूड़ा-कचरा ही शेष पड़ा था—चीथड़े, ठीकरे और राख-कोयले का गोदाम-सा प्रतीत हो रहा था वह। चोर एक भी चीज नहीं छोड़ गए थे। काठ-कबाड़ जो नहीं ले जा सके थे, वह सब वहीं जलाकर सेंक गए थे और खाना-पीना पकाकर खा-पी गए थे।

कलजन ने पड़ौसी को जवाब दिया—"जो रह गया है, उसी से जाने का अनुमान कर सकते हो।"

"नहीं, मेरा मतलब है रुपया-पैसा और सोना-चाँदी-जवाहरात ?"

"मैं तो जनम का भिखारी। मेरे पास क्या रखा था ?"

"तुम्हारा वह चीनी भाई ? वह तो मालदार भी था और उसे सब कुछ संग्रह करने का शौक भी था।"

"वह अपना सब-कुछ ले गया।"

"पत्नी की संपत्ति तो तुम दोनों के साझे की चीज़ थी।"

"पत्नी का संदूक उसके मैके में है और उसके अंग के आभूषण मेरे

पास हैं ।"

"तब तो फिर कुछ नहीं गया, भगवान् का धन्यवाद है ।"

"वाह ! यह खूब कहा तुमने ?" कलजन ने कुछ नाराज होकर कहा—"गया कैसे नहीं ? मैं तो कहीं का न रहा । मेरे पास कितनी ही बड़े परिश्रम से तैयार की हुई दवाएँ थीं । वे चोर सब फेंक गए हैं यहाँ । अब कैसे मैं उन दीन-दुखियों का इलाज करूँगा, जो बड़े भरोसे से मेरे पास आते हैं । इस बात को भी जाने दिया जाय तो वह बोधिसत्व की प्रतिमा, वह तो एक अमूल्य निधि थी ।"

ताँबे के उतने बर्तन थे तुम्हारे हकीमजी, उनका कुछ भी मोह नहीं रहा तुम्हें फिर वह प्रतिमा, वह भी तो धातु का ही एक भार था । उसकी बहुमूल्यता कुछ समझ में नहीं आई मेरे । क्या कभी कुछ बातें करती थी वह तुम्हारे साथ ?"—पड़ौसी ने पूछा ।

"क्यों नहीं ? हमेशा ही तो जब मुझे किसी मुश्किल बीमार का सामना पड़ जाता तो उसी के इशारे पर मुझे दवाओं का पता लगता, और जब मेरे मार्ग पर कोई कठिनाई आ पड़ती, उसी की कृपा से वह सुलझती ।"

"अच्छा ?" पड़ौसी ने बड़े अचरज से पूछा—"आज तक तो तुमने यह बात कभी हमसे नहीं कही । बिना खाए-पीए कैसे बोलती थी वह मूर्ति ?"

"स्वप्न में बोलती थी ।"

"आज वह मूर्ति खोई न होती तो क्या वह तुम्हें चोर का पता बता देती ?"

कलजन उस कूड़े के ढेर में कुरेद-कुरेदकर ढूँढ रहा था, कहीं कोई काम की चीज मिल जाय । कुछ भी नहीं मिला ।

पड़ौसी ने फिर उसका ध्यान आकर्षित किया अपने प्रश्न पर ।

कलजन कहने लगा—"हाँ, भाई कुछ पता तो ज़रूर मिल जाता ।"

"तुम्हारा शक किस पर है ?"

"कभी सोचता हूँ, यह कोई जान-पहचान का ही भेदिया है, क्योंकि जो चीज वह ले नहीं गया है उसे फेंक गया है। जैसे मेरी ये दवाएँ।" कलजन बड़ी आकुल दृष्टि से दवाओं के उस चूरे की तरफ देखने लगा, जो चोरों ने कई पुड़ियाँ खोलकर एक ही साथ मिला दिया था।

पड़ौसी कहने लगा—"चलो फिर हमारे ही यहाँ चलो, अब यहाँ क्या रखा है ? न खाने को सत्तू न ओढ़ने को कंबल !"

"जरूर मैंने कोई बड़े पाप किए हैं। इसी कारण इतने बरसों से मेरे पूज्य बोधिसत्व अवलोकितेश्वर मुझसे नाराज होकर इस तरह चल दिए हैं।"

"हकीमजी, चीनी भाई से तुम्हारा कोई झगड़ा तो नहीं हुआ ?"

कलजन ने कुछ सोच-विचार कर कहा—"नहीं तो, वह झगड़ालू नहीं है और मेरी आदत तुम्हें मालूम ही है।"

"लोग कई तरह की बातें करते हैं।"

"उन्हें करने दो भाई !"—कलजन फिर कूड़े के ढेर में टटोल रहा था न जाने क्या ?

"चलो हमारे यहाँ, जो होना था सो हो गया, अब इस कबाड़ में समय नष्ट करने से कोई लाभ नही।"

कलजन बोला—"ताला न-जाने कहाँ रख दिया ?"

"ताला टूटा नही था ?"

"नहीं, जैसा लगाकर रख गया था, वैसा ही मिला।"

"जाने दो नहीं मिलता तो, है ही क्या यहाँ जिसे बंद करोगे।"—कहकर पड़ौसी उसको अपने यहाँ ले गया। वह दिन भर का भूखा था। कुछ खिला-पिलाकर उसने उसके सोने का प्रबंध किया। आज दो दिन के हारे-थके और जागे कलजन को बड़ी गहरी नीद आ गई।

दूसरे दिन सुबह उठकर वह अपने घर गया। उस कबाड़ के ढेर में फिर अपने भाग्य को ढूँढने लगा। पास-पड़ौसी, स्त्री-पुरुष, जिसने भी सुना, सब वहाँ आ-आकर जमा हो गए और अपनी-अपनी भाषा बोलने

लगे।

एक पड़ौसिन बोली—"दुनिया भलाई को नहीं देखती। हकीमजी तुम बिना किसी लालच के अमीर-गरीब सबकी सेवा करते थे। क्या चोर को तुम्हारे ही घर पर हाथ साफ करना था ?"

एक दूसरी बुढ़िया कहने लगी—"हे भगवान्, न चाय की केतली छोड़ी, न पानी का घड़ा, न ओढ़ने का थुल्मा रहने दिया, न बिछाने को दन। खाने-पीने की चीजें तो मय बर्त्तनों के ही उड़ा दीं। मैं कहती हूँ यह किसी एक चोर का काम नहीं है। पूरे गिरोह का गिरोह जान पड़ता है।"

एक और पड़ौसी ने कहा—"हकीमजी, मेरी समझ में तुम्हें फौरन् ही पुलिस में खबर देनी चाहिए। अभी कोई देर नहीं हुई है। शीघ्र ही माल बरामद हो जायगा।"

बड़ी उदासीनता से उसने जवाब दिया—"उसका भला हो जिसने यह सब किया। पुलिस को खबर देकर क्या करना है मुझे ? मेरे भाग्य में होगा तो फिर सब-कुछ जोड़ लूँगा। लेकिन जोड़ना ही किसके लिए है ?"

और एक तीसरी महिला कहने लगी—"क्या हुआ तुम्हारी घरवाली को ? हमने तो उसकी बीमारी के भी कोई समाचार नहीं सुने। बिचारी बड़ी भली थी। उसी के सत से तुम्हारे घर में अन्न-धन और सुख-समृद्धि थी। वह देवी थी। मैं तो समझती हूँ जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उसी दिन तुम्हारे यहाँ भी यह चोरी हुई। वह घर कर सारा चमत्कार समेटकर अपने साथ ले गई।"

कलजन आवेश में आ गया और उसके मुँह से निकल पड़ा—"तुम्हें क्या मालूम वह क्या थी ? वह तो चीन को भाग रही थी न ?" सहसा वह रुक गया।

उसके घर की फूट की ज्वालाओं को बाहर निकलते देख सब पड़ौसी उसमें अपने हाथ और हृदय सेंकने को उत्साहित हो उठे।

बुढ़िया ने सबसे पहले पूछा—"ग़लती तुम्हारी ही थी, जो तुमने उस चीनी को भाई बनाकर अपनी बहू का भी मालिक बना दिया।"

कलजन अब अपने को सँभालने लगा—"लेकिन वह चीनी भाई, वह चीनी भाई···"

बुढ़िया फिर बोली—"हाँ, वह चीनी भाई जब बीमार होकर तुम्हारे पास आया था, तब बड़ा अच्छा था और जब तुमने उसके लिए दूकान खोल दी, वह खूब पैसा कमाकर मोटा हो गया और पैसे के नाम पर कभी उसने एक कानी कौड़ी भी तुम्हें नहीं दिखाई।"

"मैंने उस छोटे भाई के परिश्रम से पैदा हुए पैसे को लेने से हमेशा ही इनकार किया। घर के खर्च के लिए वह सब-कुछ लाता ही था।"

एक पड़ौसी ने कहा—"ऐसा त्यागी और नेक बड़ा भाई पाने पर फिर क्यों वह तुम्हारी स्त्री को लेकर चीन भाग जाने को तैयार हो गया?"

"ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो, जीव अनेक कमज़ोरियों का पुतला है, हमें उसकी कमज़ोरी को ढक देना चाहिए, उसे खोलकर बढ़ा देना पाप है। संसार बड़ा क्षणभंगुर है।"

बुढ़िया ने तत्क्षण कलजन की जीभ पकड़कर कहा—"अभी तुम्हीं ने कहा था कि चीनी उसे भगा ले जा रहा था।"

"कह दिया होगा, मैं भी तो उसी कमज़ोर इंसान का एक नमूना हूँ। चीनी कहाँ को भगा ले जाता उसे? उसे तो वह महाकाल भगा ले गया, जो हम सबके पीछे पड़ा है।"

महाकाल का नाम सुनते ही बुढ़िया ने रंग बदल दिया। आँखों में आँसू भरकर वह गद्‌गद् कंठ से बोली—"वह बड़ी अच्छी लड़की थी। पारसाल जब मैं गठिया से बीमार थी, बिचारी रोज आकर मुझे दवा दे जाती थी। दवा ही नहीं, चार-चार बार चाय पिला जाती थी। मैं उसके गुण नहीं भूल सकती। देवता करें वह स्वर्ग में सुख-भोग करे।"

एक और पड़ौसी कहने लगा—"हकीम जी, इस कूड़े के ढेर में अब

कुछ मिलनेवाला नहीं है। नाहक में तुम्हारे कपड़े मैले हो रहे हैं और समय बरबाद।"

लेकिन कलजन को कोई दूसरा काम ही उस समय नहीं सूझ रहा था। वह और करता भी तो क्या ? सब लोग अपने-अपने घर से कुछ-न-कुछ खा-पीकर आए थे। कलजन को भी भूख लग रही थी। कई बार चाय बनाने के लिए उसके इच्छा पैदा हुई। लेकिन जब हाथ अँगीठी की तरफ बढ़े तब न उसको केतली दिखाई दी न चाय का और सामान, उस ने अपने छुपा के भीतर से सुँघनी का सींग निकाला और सुँघनी सूँघ-सूँघ कर अपनी सारी कमी पूरी कर ली।

फिर और एक पड़ौसी को कलजन पर दया आई, वह बोला—"छोड़ दो यह सब, चलो कुछ खा-पी लो हमारे यहाँ, चलो।"

लेकिन न-जाने क्या एक झक-सी सवार हो गई थी उसके दिमाग़ में। वह उस कूड़े-कचरे को कुरेदता ही जा रहा था।

पड़ौसी ने फिर उसका हाथ पकड़कर बड़े आग्रह से कहा—"चलो।"

"नहीं भाई, बहुत ज़रूरी काम है मेरा।"

"चाय पी लो, तब और भी मन लगाकर इस कूड़े में ढूंढ सकोगे।"

"नहीं, पहले ढूंढ लेता हूँ।"

"क्या ढूंढ रहे हो ?"

"हाँ ढूंढ रहा हूँ। क्या ढूंढ रहा हूँ ? अपने इस दुर्भाग्य के कारण को। मैंने कभी किसी को नहीं सताया, फिर मैं क्यों सताया गया ? मैंने कभी देवता की पूजा में आलस्य या प्रमाद नहीं किया, फिर क्यों अवलोकितेश्वर की मूर्त्ति मुझे छोड़कर चली गई ? मैंने कभी किसी स्त्री की तरफ लालसा की दृष्टि नहीं बढ़ाई, फिर क्यों मेरी स्त्री मुझसे छीन ली गई ?"

पड़ौसी ऊबकर बोला—"देवता शायद तुम्हारे धीरज की परीक्षा कर रहे हैं। मन के आवेग को कम करो। ऐसी नासमझी से काम नहीं चलेगा।"

"क्या नासमझी है इसमें ? मैं किसी से क्या कुछ कह रहा हूँ ?

किसी दूसरे पर शक नहीं कर रहा हूँ मैं अपने इस सर्वनाश के लिए, फिर क्यों तुम मुझे दोष दे रहे हो ? तुम सब चले जाओ यहाँ से । मुझे भारी चोट लगी है । रो नहीं सकता हूँ, जो-कुछ यह कर रहा हूँ यह सब उसी रोने का एक रूप है ।"—कुछ झिड़ककर और कुछ गिड़गिड़ाकर कलजन ने कहा ।

कुछ पड़ौसी पहले ही चले गए थे कुछ को अब जाना पड़ा लेकिन एक पड़ौसी, जो कलजन से कुछ खा-पी लेने का आग्रह कर रहा था, उसकी परवशता से द्रवीभूत हो उठा । कहने लगा—"तुम्हारी यह हठ ठीक नहीं जान पड़ती, इससे तुम्हारे दिमाग में असर पड़ जायगा ।"

"जो-कुछ भी भगवान् को मंजूर है, मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तुम चाहो तो फिर सब-कुछ कर सकते हो । चोर चुराकर तुम्हारे भाग्य को नहीं ले जा सके ।"

"अब कुछ नहीं कर सकता मैं । अब तो केवल एक ही इच्छा है, सिर के तमाम बाल कटवाकर सारी इच्छाओं को समाप्त कर किसी मठ में जाकर प्रव्रज्या ले लेने की ।"

"सिर के बाल घुटाकर क्या कामना समाप्त हो जाती है, हकीम जी ?"

"तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ तुम मेरे साथ आज बहस न करो । बहस करने से हम किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकेंगे । कुछ देर के लिए मुझे यहाँ अकेले ही छोड़ दो । मैं कुछ सोच रहा हूँ । यह भूमि पर पड़ा हुआ जो कूड़ा है, वह सब मेरे जीवन के टुकड़े हैं । मैं उसे उलट-पुलटकर कुछ ज़रूर ढूंढ लूंगा । तुम थोड़ी देर के लिए जाओ भाई ।"—कलजन ने बड़ी दीनता से कहा ।

पड़ौसी चला गया । कलजन ने द्वार ढक लिए और फिर उसी तरह उस कूड़े की उलट-पुलट करता हुआ सोचने लगा । कुछ अधखुली दवाओं की पुड़ियें पड़ी थीं । बड़ी सावधानी से वह उन्हें सँभाल कर अलग रखने लगा ।

जब वह उस कूड़े में छान-बीन कर रहा था अचानक उसे एक चाबी दिखाई दी। उस चाबी ने उसकी विचारधारा को एक दम बदल दिया। वह चाबी उस चीनी सिपाही की दूकान की थी। कलजन को उस दूकान और चाबी से कोई मतलब नहीं था, लेकिन वह उसको उसकी विचित्र आकृति के कारण सहज ही पहचानता था।

कलजन अपने मन में सोचने लगा—"यह चाबी यहाँ कहाँ से आ गई ? चीनी भाई इसे यहाँ क्यों फेंक गया ? नहीं यह जान-बूझकर यहाँ फेंकी गई नहीं जान पड़ती। यह यहाँ गिर गई है। तो वह यहाँ कब आया ? वही आया, यह सब उसी की करतूत जान पड़ती है। यह उसी की प्रतिहिंसा है, जो इस तरह मेरे घर को उजाड़ गया है लेकिन वह मेरे सामान को ले कहाँ गया ? किसी को दे गया होगा।"

चीनी भाई की चाबी को लेकर वह उसकी दूकान पर चला गया उसी समय। उसके मन में एक कौतूहल था, उसका सामान उसकी दूकान में तो नहीं रखा है।

वहाँ जाकर उसने दूकान खोली तो क्या देखता है, दूकान का तमाम माल ग़ायब है। कुछ काठ-कबाड़ और कूड़ा-कचरा ही वहाँ भी पड़ा है। उसी तरह फिर ताला लगाकर वह अपने मकान पर आया। वहाँ आते ही उसे उसका मित्र सिपचा मिला।

८

बीमार स्त्री

सिरता रिंबूची से उसकी पुरानी मित्रता थी। बचपन में दोनों एक ही गुरु के निकट पढ़ते थे। कलजन ने हिकमत सीखी थी और रिंबूची ने ज्योतिष।

रिंबूची कहने लगा—"कलजन, आज बड़े उदास दिखाई दे रहे हो, क्या बात है ?"

कलजन ने कहा—"भाई तुम भी तो वैसे ही जान पड़ते हो।"

रिंबूची—"मैं तुम्हारी ही ढूंढ में आया हूँ, मेरी स्त्री कई दिन से बीमार है। आज तक सोचता रहा, ठीक ही हो जायगी, लेकिन बीमारी बड़ी बुरी तरह से बढ़ती जा रही है।"

कलजन—"मैं क्या करूँ भाई, मैं अपनी स्त्री को ही नहीं बचा सका।"

रिंबूची बोला—"क्यों क्या हुआ तुम्हारी स्त्री को ?"

कलजन ने सारी कथा कह सुनाई। रिंबूची कहने लगा—"तुम्हारी स्त्री आत्महत्या कर मरी है। मेरी तो रोग से पीड़ित है।"

कलजन ठंडी साँस खींचकर बोला—"रोग से पीड़ित है तो मैं क्या करूँ ? मेरी दवाओं का सारा संग्रह चौपट हो गया।"

रिंबूची की कुछ समझ में नहीं आया। कलजन उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने घर के भीतर ले गया। घर के भीतर का दृश्य देखकर वह अवाक् रह गया।

"क्या हो गया यह ?"

"क्या बताऊं ?"

"कब की बात है ? तुम कहाँ थे ?"

"ससुराल ।"

"चीनी भाई कहाँ है ?"

"मैं नहीं जानता ।"

"उसी ने तो नहीं किया ?"

"तुम ज्योतिषी हो, बता सकते हो ठीक-ठीक ?"

"विचार कर ही बता सकूंगा । इसी से कहता हूँ चलो मेरे घर चलो।"

"और यहाँ ?"

"अब यहाँ क्या रखा है ? घर घरनी को लेकर होता है, घरनी तुम्हारी चल बसी । फिर घर माल-असबाब को लेकर होता है, उसका ही अब कौन निशान बाक़ी है तुम्हारे ? चलो मैं तुम्हारी चोरी का पता लगाऊँगा और तुम मेरी स्त्री का इलाज करोगे ।"

कलजन को मित्र की आज्ञा-पालन करने के सिवा दूसरा और कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया । उसने मकान में ताला लगाया और उसके साथ चला ।

रिंबूची ने कलजन को ले जाकर अपनी बीमार स्त्री के सामने खड़ा कर दिया । कलजन ने देखा, वह हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गई थी । बीमार की अच्छी तरह परीक्षा कर उसने उसे उत्साहित करने को कहा— "कोई घबराने की बात नहीं है । बुखार तुम्हारे बहुत भीतर घुस गया है । खून को सुखाकर वह हड्डी के पास तक पहुँच गया है । लेकिन वह अभी उसे छेदकर उसके पार नहीं घुस सका है । मैं पूरी कोशिश करूँगा । भगवान चाहेंगे तो दवा शुरू करते ही तुम ठीक होने लग जाओगी ।"

बीमार ने आँखों में आँसू भरकर हकीम की तरफ देखा और आकाश को हाथ उठाकर न जाने क्या सोचा । क्षीण और मंद स्वर में कुछ कहा, जो सुननेवालों पर स्पष्ट न हो सका ।

कलजन रिंबूची का हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले गया । कुछ देर

तक वह सोचता ही रहा।

रिंबूची ने घबराकर पूछा—"क्या हाल है ?"

उदासी के साथ कलजन ने जवाब दिया—"क्या बताऊँ ?"

"बचनेवाली तो नहीं है यह।"

"भगवान् की माया अजीब है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि यह बच नहीं सकती।"

"फिर ?"

"कोशिश करेंगे मित्र। मैंने एक बुढ़िया के इकलौते बेटे को बचाया था। उसके तो हड्डी के भीतर घुस गया था बुखार।"

"मेरे ऊपर भी कृपा करो भाई।"

"सोच रहा हूँ कैसे ? दवाएँ कहाँ से लाऊँ ?"

"नई बना दो, बाज़ार से मैं सामान ले आता हूँ।"

"बहुत कीमती दवा बनाई जायगी। कुछ पूंजी है जमा तुम्हारे पास ?"

"पूंजी जो कुछ थी सब खर्च कर चुका हूं। कुछ उधार और मिल जायगा। तुम बताओ भी तो कैसी दवा बनाई जायगी ?"

कलजन हँसा। उसने अपने छुपा के भीतर से एक कपड़े की पोटली बाहर निकालकर खोलनी शुरू की।

"ये किसके आभूषण हैं ?"—रिंबूची ने पूछा।

"मेरी स्त्री के। वह मर गई। मैं इन आभूषणों को पहन नहीं सकता मित्र। इनका क्या करूँ। इन्हें कहाँ रखूं ? यह मेरी एक समस्या थी। मैं इन्हें फूंककर तुम्हारी स्त्री के लिये दवा बनाता हूँ। इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकेगा इनका ?"

रिंबूची ने कलजन की उदारता के गुण गाते हुए पूछा—"लेकिन मित्र, तुमने कुछ खाया भी ?"

"कहाँ से ? चूल्हे और घर की हालत तो तुम देख ही आए हो।"

"कलजन, मेरी खुदगरज़ी को धिक्कार है ! सबसे पहले मुझे तुम्हारे

भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए थी।"

"भोजन होता ही रहेगा। उससे पहले अगर तुम चोर का पता बता देते! मेरे तो विश्वासों की जड पर ही कुल्हाड़ी चल गई है। उसने मेरा घर ही चौपट नही किया है, मेरे संसार और स्वर्ग दोनों को समाप्त कर दिया है।"

रिबूची बोला—"बताऊँगा मित्र, तुम जग मुझे इस घरवाली की बीमारी से बाहर निकालो। मै चोर का पता ही नही कुछ ऐसा मंत्र पढ़ूंगा कि चोर तमाम चीज़ों को लिए हुए तुम्हें ढूंढता हुआ चला आएगा। लेकिन इस समय तो मुझे अभी सबसे मुख्य तुम्हारे भोजन की चिंता है। तुम कुछ देर बीमार के पास बैठो, मैं खाना तैयार करता हूँ।"

रिबूची कलजन को लेकर फिर बीमार के कमरे में जा पहुँचा। उसने कलजन को उसके पास बिठा दिया। आहट पाकर बीमार ने आँखें खोलकर दोनों की तरफ देखा। क्षीण स्वर में उसने पूछा—"क्या कहते हैं ये?"

"कहते हैं, तुम ज़रूर अच्छी हो जाओगी।"—रिबूची ने जवाब दिया।

"कितने दिन में?"—बीमार ने फिर पूछा।

रिबूची ने कलजन की ओर इशारा कर कहा—"इन्होंने सुबह से अभी तक कुछ नहीं खाया-पिया है। मैं इनके भोजन का इन्तज़ाम करता हूँ। तुम्हारे प्रश्न का यही जवाब देंगे।" रिबूची वहाँ से चला गया।

बीमार ने अपनी आकुल दृष्टि कलजन पर गड़ाई। उसने फिर अपना प्रश्न दुहराया—"कितने दिन में?"

"सबसे पहले मुझे तुम्हारे इस बुखार को तोड़ना है। अगर यह टूट गया तो फिर तुम्हारी भूख और नींद दोनों जाग उठेंगी। जहाँ वे दोनों जाग उठीं कि फिर क्या देर लगेगी तुम्हारे अच्छे होने में?"

"हाँ हकीम जी, खाने की बिलकुल इच्छा नहीं है और रात-भर करवट बदलते बीतता है।"

"बिलकुल नई दवा बनाऊँगा तुम्हारे लिये।" वह जेवरों की पोटली फिर खोलते हुए कलजन ने कहा—"ये मूंगे और मोती फूंककर इनका भस्म बनाऊँगा।"

बीमार जेवरों की चमक पर उठकर बैठने की कोशिश करने लगी। कलजन ने उसे हाथ का सहारा दिया। जेवरों को टटोलते हुए कहने लगी—"ये मूंगे और मोती की मालाएँ हैं, ये कान की बालियाँ, सोने की हैं। इनको फूंककर तुम कैसी दवा बनाओगे ?"

"तुम्हारी बीमारी दूर करने के लिये।"

"नहीं हकीम जी, ऐसा भी कहीं कोई करता है ? इनकी राख से भला क्या बीमारी दूर हो सकेगी ?"

"हैं, हैं ! ऐसा क्या कहती हो तुम ? इनकी राख बड़ी ताकतवर होती है, एक ही खुराक में पता चल जायगा।"

बीमार ने मालाएँ उठा ली, उनको अपने गले में पहन लिया और जो देवता का खऊँ था, उसे दिखाकर बोली—"इसे भी भसम कर दोगे ? बड़े अजीब आदमी हो ! कहाँ से ले आए तुम इन जेवरों को ?"

"मेरी स्त्री के है।"

"उनसे पूछकर नहीं लाए तुम इन्हें ?"

"वह मर गई।"

"किसी की मौत से खिलवाड़ करना बड़ा आसान है। तुम्हारे ज्योतिषी मित्र ने मरे हुए शेर की खाल बिछा रखी है, वह उस पर बैठ कर बहुत दिन तक बड़ा गर्व करते थे। मैं कहती हूँ, क्या कभी जिंदा शेर की पीठ पर बैठ सकने की उनकी हिम्मत हुई थी ?"—बीमार ने अपने गले में धारण की हुई उन मालाओं को दूसरों की दृष्टि से देखा।

कलजन बीमार की अटपटी बातों को चुप होकर सुन रहा था। वह फिर कहने लगी—"हकीम जी, एक बात नहीं मान सकते तुम ?"

"क्या ?"

"कुछ दिन तक इन मालाओं को मैं पहने रहती हूँ। इनकी राख

के बदले इनकी चमक का असर क्यों नहीं देख लेते तुम मेरी बीमारी पर ! हकीम जी ! हकीम जी ! मैं जनम भर इसी के लिये तरसती रह गई। तुम्हारे ज्योतिषी जी ने कभी मेरी एक भी बात नहीं सुनी। यदि वह सुनते तो मैं हरगिज बीमार ही नहीं पड़ती। खैर अब सही।"— वह बैठी न रह सकी, फिर लेट गई।

हकीम जी ने उसे फिर अपने हाथ का सहारा देकर सुला दिया।

"क्या हुआ तुम्हारी बहू को हकीम जी ?"

"उसका समय पूरा हो गया, उसे महाकाल ने बुला लिया।"

"उनके ज़ेवरों को फूंककर तुमने उनको अच्छा करने की कोशिश क्यों नहीं की, हकीम जी ?"

कलजन कहने लगा—"अधिक बोलने से तुम्हारी कमज़ोरी बढ़ जायगी, चुप रहो।"

"एक-दो सवालों का जवाब और दे दो। मारता कौन है हकीम जी, महाकाल और जिलानेवाला ? ज्योतिषी है या वैद्य ? कौन है ?"

"जिलानेवाला भी भगवान ही है।"

रिबूची दो फुरुओं में चाय बनाकर ले आया। उसने एक फुरू कलजन को दिया और दूसरा फुरू लेकर अपनी स्त्री के सामने खड़ा होकर बोला—"लो।"

"क्या है यह ?"

"चाय, एक घूंट पी लो।"

'हूँ हूँ।"

"अभी कुछ देर हुई तुमने चाय पीने को कहा था।"

"तुम बहुत मक्खन छोड़ लाए होगे। सोचते हो एक साथ ही खूब मक्खन खिला देने से मैं शीघ्र ही चंगी हो जाऊँगी और तुम्हारे घर का सारा काम सिर पर उठा लूंगी। देखो, तुम्हारे मित्र मेरी दवा के लिये यह कैसे आभूषण लाए हैं।" उसने अपनी छाती पर लटकती हुई मालाओं को दिखाकर कहा—'तुम्हें कभी ऐसी सूझ पैदा ही नहीं हुई।"

"लो पी लो, जरा सिर उठा लो।"—रिबूची ने कहा।

"ऐसे ही पिला दो।" रिबूची की स्त्री कहने लगी—"कोई और दवा नहीं है हकीम जी तुम्हारे पास ? औरतों के आभूषणों को फूंक कर दवा बना लेना किसने सिखा दिया तुम्हें ?"

एक-दो घूंट पीने के बाद बीमार ने फिर मुंह नहीं खोला दवा के लिये।

वह दिन वैसा ही चला गया। कलजन और रिबूची ने कई तरह के मनसूबे किए। अन्त में निश्चय वही मोती और मूंगा को भस्म कर दवा बनाने का हुआ। उसके लिये कुछ कंडों की ज़रूरत पड़ी, रिबूची ने दूसरे दिन उनका प्रबन्ध कर लिया। अब समस्या हुई बीमार के गले से माला निकालने की।

हाँ, वह एक विकट समस्या हो गई थी। आभूषणों के लिये उसके मन में बड़ी उत्कट लालसा जान पड़ती थी जो बीमारी की दुर्बलता के कारण उसके एक प्रमाद-सा हो गया था। रिबूची ने जब-जब उससे मालाएं माँगी, वह देने को किसी तरह तैयार नहीं हुई।

रात में कई बार रिबूची ने बीमार की आँख लगने पर उसके गले से माला निकाल लेने की चेष्टा की पर बार-बार वह असफल ही रहा।

कलजन ने उससे कहा—"इस समय रहने दो, कल को मैं किसी तरह माँग लूंगा। अभी कौन ऐसी आवश्यकता है ?"

"यह बड़े जिद्दी स्वभाव की है। तुम नहीं जानते।"

"देखा जायगा कल को। कंडे तो आ जाने दो। काफी कंडों की ज़रूरत पड़ेगी।"

"पास ही एक चरवाहा रहता है। उसके यहाँ कई गोठ कंडों के भरे पड़े हैं। तुम चाहोगे तो वह यहाँ कंडों के पहाड़ लगा सकता है।"

"कंडों की तो बेफिक्री हुई, लेकिन दवा कहाँ फूंकी जायगी ?"

"घर के भीतर नहीं फूंक सकते ? कीमती दवा ठहरी।"

"बहुत तेज आँच चाहिए, घर के भीतर, असंभव है।"

"तो शहर के बाहर किसी मैदान में चले चलेंगे, मौसम तो आजकल ठीक है।"

"घर से इतनी दूर ? आग लगाकर घर नहीं आ सकते, बराबर दवा की चौकसी करनी होगी।"

"कितने दिन तक ?"

"कम से कम तीन दिन तक तो करनी ही पड़ेगी । तुम बीमार को अकेले छोड़कर आ नहीं सकोगे।"

"उसी चरवाहे को कुछ और दाम देकर चौकीदारी का काम भी करा लेंगे।"

"उतनी दूर कौन जाए, खाने-पीने का झंझट ! जाड़ा ! अगर पानी बरस गया तो ? फिर कीमती चीज़ । तुम्हारे आँगन में जगह तो है।"

"हो जायगा यहाँ ?"

"क्यों नहीं।"

रिबूची बड़ी चिन्ता के साथ कहने लगा--"जगह तो हो गई लेकिन इससे मालाएँ कैसे ली जाएँगी ? कैंची से काट लेने पर आसानी से निकल आवेंगी।"

"इस समय सो रहो मित्र, कल को देखा जायगा।"

"कल को क्या देखा जायगा ? बीमारी निकालने के लिये यह माला लाए। यह माला ही इसके शरीर में बीमारी से अधिक गहराई में घुस गई है। एक खुराक अफीम की होती तो इसे दे देते। जब गहरी नींद आ जाती, सहज ही मालाएँ हटाई जा सकतीं। क्यों मित्र ?"

"यह एक तरह का धोखा देकर किसी को लूट लेना है। माला ले लेना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारा मतलब है, बीमार को अच्छा करना। नींद के नशे में माला गँवाकर जब यह होश में आयेगी तो तुम क्या समझते हो इसे कोई गहरी ठेस न लगेगी ?"

"फिर कैसे ? कैसे हम अपना काम साधेंगे ?"

"धीरज रखो, उतावली न करो। बीच में एक रात को बीत जाने

दो। कल को कोई-न-कोई तरकीब सूझ ही जायगी। लेकिन न बल-प्रयोग ही करना है, न कोई धोखा देना। इससे बीमारी दुसाध्य से असाध्य हो जायगी।" कलजन ने कहा।

दूसरे दिन सुबह होने पर रिंबूची बीमार के पास चाय लेकर पहुँचा। कलजन भी साथ हो लिया था।

बीमार के चेहरे पर एक क्षीण मुसकान थी। उसने कहा—"हकीम जी, तुम्हारी ये दोनों मालाएँ सचमुच में मुझे बड़ा फायदा पहुँचा रही हैं। मुझे रात-भर बड़ी अच्छी नींद आई।"

कलजन ने पूछा—"कुछ खाने को भी जी कर रहा है?"

"हाँ, चाय पी लूँगी।"

रिंबूची ने उसकी ओर चाय का प्याला बढ़ाया, कलजन ने सहारा देकर उसे उठाया। वह धीरे-धीरे चाय पीने लगी।

कलजन बोला—"इसमें कोई सन्देह नहीं, ये मालाएँ तुम्हें बड़ी सुन्दर बना रही हैं।"

बहुत खुश होकर वह बोली—"और भी तो कुछ जेवर थे?"

"हाँ, कुछ अँगूठियाँ।"

"उन्हें भी मुझे पहना दो न। तुम्हारे मित्र ने मुझे सुन्दर बनाने की कभी परवा ही नहीं की। मैं अपनी जवानी में बड़ी सुन्दर थी। जवानी अपना रूप आप ही है, उस समय किसी आभूषण की ज़रूरत ही नहीं है, लेकिन उसके बाद आभूषण आवश्यक थे। तुम्हारे ये मित्र कभी धन नहीं कमा सके, इसीलिये सदा वैराग्य और संपत्ति की क्षण-भंगुरता का उपदेश देते रहे मुझे।"

कलजन बोला—"चाय पी लो, बोलते-बोलते तुम्हारा गला सूख चला है और चाय भी ठंडी होती जा रही है।"

बीमार ने फिर चाय की एक-दो घूँट पीकर कहा—"तुमने अवश्य ही अपनी स्त्री की लालसा को समझा और उसके लिये इतने आभूषण जोड़कर रख दिये।"

रिंबूची ने फिर उसके होंठों पर चाय का प्याला लगा दिया। फिर चाय पीकर वह बोली—"अँगूठी कहाँ हैं वे ?"

"मेरे पास हैं।"—कलजन ने जवाब दिया।

"मेरी अँगुलियों में पहना दो न।"

"लेकिन तुम्हारी अँगुलियों में खून की कमी है। वे कितनी पतली हो गई हैं। अँगूठियाँ गिर-गिर पड़ेंगी।"

"उनमें खून बढ़ा दो न।"

"हाँ उसी के लिये आया हूँ मैं।"

"कैसे बढ़ाओगे ?"

"जिन मालाओं ने तुम्हें बाहर से पहनने पर ऐसा रूप दिया है, उन्हें अगर तुम भीतर से पहन लोगी तो तुम्हारी तन्दुरुस्ती ही नहीं तुम्हारी जवानी भी लौट आएगी।"

"मैं नहीं समझी, माला भीतर से कैसे पहनी जाएगी ?"

"यह मूँगे का रंग और मोती की आभा तुम्हारे रक्त में मिला दी जायगी।"

'कैसे ?"

"इन्हें घोटकर तुम्हें पिला दिया जायगा।"

"अब मैं इन्हें अपने गले में पहन चुकी हूँ, तुम इन्हें मेरे गले से निकाल ले जाओगे तो सारा गला सूना न हो जायगा ?"

"नहीं, हम ऐसा न होने देंगे।" कलजन ने अपने छुपा के भीतर से फिर वह जेवरों की पोटली निकाली और उसे खोलकर उसके भीतर से एक खऊँ बाहर निकालकर बीमार को दिखाते हुए कहा—"लो, इसे तुम्हें पहना दिया जायगा।"

"यह किसका खऊँ है ? इसमें किसकी मूर्ति बनी है ?"

"यह डोल्मा की मूर्ति है। यह तुम्हारे गले में दोहरा मतलब हल करेगी। तुम्हारे गले का सूनापन दूर कर उसकी सुन्दरता बढ़ाएगी, इसके सिवा इसमें से दिन-रात शक्ति की लहरें निकलती रहेंगी और कवच

की तरह तुम्हारी रक्षा करेंगी।"

इसी समय वहाँ उस चरवाहे ने प्रवेश कर कहा—"ज्योतिषी जी, कंडे कहाँ पर रखूँ ?"

रिंबूची ने कलजन की ओर देखा। कलजन बोला—"आँगन में ही तो ठीक है।"

रिंबूची ने चरवाहे से कहा—"वहीं आँगन में डाल दो, एक कोने में।"

"कितने बोझ ?"—चरवाहे ने पूछा।

कलजन बोला—"एक बोझ देख लेने पर बता देंगे अभी। तुम जाकर दूसरा ले आओ।"

चरवाहा चला गया।

बीमार बोली—"कंडों का क्या होगा ? इतने कंडे ?"

"तुम्हारे लिये दवा बनाई जायगी।"

मुख में बड़ी विरूपता पैदा कर बीमार कहने लगी—"छीः ! बड़ी अजीब बातें कर रहे हो तुम ? हकीम जी मैं समझती थी तुम एक ही रंग के होगे। कभी कहते हो मूंगे और मोती की दवा बनाई जायगी और कभी कहते हो चँवर गाय के गोबर की ?"

"दवा तो मूँगे और मोती की ही बनाई जायगी, कंडों से उनको दवा में बदलने में सहायता ली जायगी।"—कलजन ने सौम्यता के साथ कहा।

"क्या सहायता लोगे ?"

"उनको जलाकर मूँगा और मोती का भस्म तैयार किया जायगा।"

"कंडों को जलाकर फिर मूंगा और मोती की राख बनाओगे। ऐसे घूम के रास्ते से जाना क्यों पसंद है तुम्हें ? बिना सबब ही मेरी छाती नंगी कर दे रहे हो तुम।"

कलजन बोला—"तुम ऐसा कहकर मेरी ज़िंदगी भर की विद्या का उपहास करती हो।"

बीमार हँसती हुई बोली—"हड्डियाँ सब एक ही सी हैं राजा की हों चाहे प्रजा की। ऐसे ही राख भी तो वह कड़ों की राख हो चाहे मूँगा-मोती की। फिर तुम चूल्हे की राख पुड़ियों में बाँधकर क्यों नहीं मुझे खिला देते? अगर मेरा जीवन बाकी होगा तो मैं उसी से चंगी हो जाऊँगी। ये ज्योतिषी जी क्या कहते हैं, मुझे अभी कुछ दिन जीना है या नहीं?"

रिंबूची बोला—"हाँ, तुम्हें जीना है।"

बीमार बोली—'तब अगर तुम्हारी विद्या झूठी नहीं है तो मेरे जीने की क्यों तुम एक कीमती चीज़ की मिट्टी करने को तैयार हो?"

रिंबूची बोला—"लेख ऐसा ही है और हम में से किसी को इसके खिलाफ बोलने का कोई अधिकार नहीं। लाओ मालाएँ दे दो।"

रिंबूची ने कुछ दृढ़ता और कुछ रोष-भरी वाणी से अपना हाथ उन मालाओं की तरफ बढ़ाया, उसकी स्त्री फिर कोई विरोध न कर सकी। उसने दोनों मालाएँ निकाल लीं।

कलजन ने उस निराश बीमार को सहारा देते हुए कहा—"लो तुम्हें यह खऊँ पहना देता हूँ। यह तारण करने वाली डोल्मा है—हर अमावस और पूर्णिमा को इसकी पूजा करना। अभी तुम कमज़ोर हो, जब कुछ ताकत आ जायगी तो व्रत भी करना पड़ेगा।" कलजन ने वह मूर्ति उसको दिखाई और फिर उसके गले में पहना दी।

रिंबूची दोनों मालाओं को लेकर उस कमरे से चला गया। उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था, मानो बड़ी दुर्लभ वस्तु उसके हाथ लग गई।

६

मोती-भस्म

चरवाहे ने आँगन में कंडों का ढेर जमा कर दिया। जब उसने आखिरी खेप डाल दी तो वह चुपचाप खड़ा हो गया रिंबूची के पास। रिंबूची कलजन से कुछ बातचीत कर रहा था। चरवाहे को आता देख कर रिंबूची के मन में कुछ कठिनाई-सी पैदा हो गई। कलजन बोला—"कोई बात नहीं, घबराओ मत।"

चरवाहा पूछने लगा—"लेकिन इतने कंडों से क्या करोगे तुम ?"

रिंबूची ने कुछ रूखेपन से जवाब दिया—"बता तो दिया तुम्हें कि दवा बनाई जायगी।"

"कैसी दवा बनाई जायगी ? दवा बनाने वाले तो यहाँ और भी हैं। मैंने तो उन्हें इतने कंडे जमा करते नहीं देखा।"

कलजन कहने लगा—"बड़ी कीमती दवा बनाई जा रही है। न देखा हो तो आज देख लो।"

"कीमती कैसी ?" चरवाहे ने कौतूहलपूर्वक पूछा—"ये जो मेरे बाल सफेद हो गए हैं, उनको काला कर सकेगी यह दवा ?"

रिंबूची ने जवाब दिया—"कर क्यों नहीं सकेगी ? दाम दे भी सकोगे दवा के ?"

"ऐसे क्या हीरा-मोती थोड़े पड़े होंगे इसमें।"

"हीरा-मोती ही पड़े हैं चरवाहा जी !" कलजन ने जवाब दिया।

रिंबूची अपने मन में सोचने लगा—"कलजन बड़ा सीधा आदमी है। शायद जल्दी में बिना सोचे-समझे इसके मुँह से यह शब्द निकल गया।" उसने चरवाहे को बहका देने के लिए कहा—"हीरा-मोती कुछ

नहीं हैं, तुमसे ऐसे ही हँसी में कह दिया।"

"इतने कंडों का पहाड़ जो यहाँ पर लाकर रख दिया है मैंने। मेरे छः महीने की कमाई है यह। इसका नगद पैसा न लूंगा। दवा ही खरीद लूंगा, लेकिन कुछ कहो भी तो।"—चरवाहा बोला।

कलजन ने कहा—"क्या कहें ?"

"यही कि सफेद बाल काले हो जायेंगे ये सब ? और जो दो ये दाँत टूट गए हैं, तीन टूटने को तैयार हैं इनका भी कुछ जिम्मा लोगे या नहीं ?"

"क्या जिम्मा लेने को कहते हो ? जो दाँत टूट गए हैं उनमें फिर तीसरी बार दाँत निकल आएँ ? ऐसा भी कहीं होता है ? मरे हुए भी क्या कहीं बोलने लगते हैं ? सूखे हुए पेड़ में भी कहीं फल लगते हैं ?"

चरवाहा ठहाका मारकर हँसा—"वाह ! हमारे गाँव में एक बुढ़िया थी, अभी चार-पाँच ही साल तो उसे मरे हुए हैं। उसके दाँत दो बार टूटकर तीसरी बार निकल आए। तमाम गाँववालों को मालूम है। और उसने बिना किसी की दवा खाए ही यह सब पाया।"

रिंबूची ने जवाब दिया—"सब विश्वास की बात है। अगर तुम्हारे भी विश्वास है तो तुम भी जो चाहो कर सकते हो।"

"फिर तुम्हारी दवा के दाम देने को क्या मुझे पागल कुत्ते ने काट खाया है ?"

"भाई, विश्वास को जमाने के लिए भी तो कोई चीज चाहिए ? वह हवा में थोड़े ठहर सकता है ?"—कलजन ने कहा।

कलजन के हाथों में एक डमरू के आकार की कोई चीज़ थी। उस पर वह गीली मिट्टी और कपड़ा लपेट रहा था।

चरवाहे ने पूछा—"यह क्या है ?"

रिंबूची उसे डाँटकर बोला—"जाओ तुम्हें कोई मतलब नहीं, अपना काम करो !"

"क्या काम करूँ अब ? एक गोठ खाली कर सब कण्डे यहाँ जमाकर

दिए हैं दिन भर में ! सराई और कण्डों के दाम देने का बखत आया तो तुम ऐसे डाँट रहे हो ?"—कुछ असन्तुष्ट होकर चरवाहा बोला।

बात बिगड़ती देख कलजन बोला—"नाराज मत होओ। ये दो हाँडियाँ हैं जिनके मुँह मैंने इस कपड़-मिट्टी की मदद से जोड़ दिए हैं।"

कुछ सहारा पाकर चरवाहे के मुख पर की तीखी रेखाएँ टूट पड़ीं। उसने पूछा—"इन हाँडियों के भीतर क्या है ?"

"उसमें दवा है।"—कलजन ने जवाब दिया।

"क्या दवा है ?"—उसने फिर पूछा।

"अब क्या दवा बताऊँ भाई !"—बड़ी उलझन से सिर खुजाते हुए कलजन ने उत्तर दिया।

रिंबूची कुढ़ा हुआ अभी तक चुप था, फिर आवेश में आकर कहने लगा—"तुम जितने जिद्दी हो उतने ही मूरख भी। कह दिया तुम्हारे समझने की दवा नहीं है। सौ बात की एक बात ! जाओ अपना रास्ता नापो।"

चरवाहा मन-ही-मन जल उठा। उसने निश्चय किया, जरूर कोई भेद की बात है इस हाँडी में और वह उसका भण्डाफोड़ करने के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने जवाब दिया—"मेरे दाम दो, तभी तो रास्ता नापूंगा।"

रिंबूची ने भी अपने स्वर में तेजी भरी—"दाम अभी तय कहाँ हुए हैं ?"

"तो क्या कुछ देने की मंशा नहीं है ?"

"देंगे क्यों नहीं ? चार आदमियों से पूछकर देंगे।"

"मेरे घर में खाने को कुछ नहीं है। मैं क्या खिलाऊँ बच्चों को ?"

रिंबूची ने तुरन्त ही उसे उत्तर लौटाया—"अगर हम तुम्हारे कण्डे नहीं खरीदते तो ?"

"तब की तब ही देखी जाती।"

"अच्छा जाओ, उठा ले जाओ अपने कण्डे।"—रिंबूची ने बहुत

बेगरज होकर कहा।

कलजन ने उसके हाथ पकड़कर उसे शान्त करना चाहा।

चरवाहा कहने लगा—"उठा ले जाऊँगा, लेकिन लाने और ले जाने दोनों की ढुलाई रख दो पहले।"

"जब चीज हमारे काम में ही नहीं आई तो क्यों दे ढुलाई ?"

कलजन ने चरवाहे के कन्धे पर हाथ रखा—"देखो भाई, जोश में नहीं आते। मैं दूंगा तुम्हारे दाम। हम लोगों को क्या तुम जानते-पहचानते नहीं ? क्या हम कोई उठाईगीर हैं ?"

"नहीं, नहीं, हकीम जी आप अच्छे आदमी हैं। हम मूरख तो ठहरे ही। समझाकर कह देने की बात और है, डाँट-डपट किसे अच्छी लगती है ? अच्छा कब आने को कहते हो तुम ?"

"अभी पाँच-सात दिन बाद ही आना। बात ऐसी है अभी मेरे बहुत बड़ी हानि हो गई है; जो कुछ मेरे पास था, सब चोर चुरा ले गए, एक कानी कौड़ी भी नहीं छोड़ गए। ज्योतिषी जी भी बेचारे बड़े संकट में हैं। साल-भर से ऊपर हो गया, इनकी औरत बीमार पड़ी है। बेचारों के पास जो कुछ था, सब खर्च हो गया। इसी से स्वभाव में कुछ चिड़चिड़ापन आ गया है; नहीं तो इतने बरसों से तुम इन्हें जानते हो, कभी कोई खिलाफ बात तुमने इनके बारे में नहीं सुनी होगी।"—कलजन ने उसे समझा-बुझाकर राजी कर लिया।

चरवाहा चला गया। हकीम और ज्योतिषी दोनों मकान के बाहर एक खेत में बैठे थे। कलजन दोनों हाँडियों में कपड़ा और मिट्टी चढ़ा चुका था। दोनों हांडियों के भीतर एक में उसने मूंगे भर दिए थे दूसरे में मोती। दोनों को एक-दूसरे में मिल जाने से बचाने के लिए दो दिए जमा दिए थे। अब उसने उन हांडियों को धूप में सूख जाने के लिए रख दिया।

रिंबूची बोला—"हाँडियों को धूप में सुखाना ही जरूरी है क्या ?"

कलजन ने हँसते हुए जवाब दिया—"तुम्हारी मन्शा है, यह आग

में ही सूख भी जाए और भस्म भी हो जाए।"

रिंबूची ने जवाब दिया—"हाँ।"

कलजन बोला—"तुम्हें बहुत जल्दी मच रही है। असल में दवा की सिद्धि के लिए यह बाहर की स्थूलता इतनी जरूरी नहीं है।"

रिंबूची—"जब बाहर की स्थूलता की कोई कीमत नहीं है तो फिर क्यों तुमने दोनों मालाओं को तोड़कर इन हाँडियों में भर दिया? लेकिन वह बात मेरे मन में गहरी जम गई है।"

कलजन—"कौन-सी बात?"

रिंबूची—"यही कि राजा और भिखारी इन दोनों की हड्डियों में कोई अन्तर नहीं है। ऐसे ही कण्डे और मूँगे-मोती की भस्म भी एक ही सी हैं।"

कलजन—"असल में सत्य तो ऐसा ही है। लेकिन ये तुम्हारी स्त्री के शब्द हैं।"

रिंबूची—"तो फिर तुम्हारी इस भस्म की महिमा कैसे है?"

कलजन—"मंत्र की भावना से।"

रिंबूची—"कण्डे की भस्म को अभिमन्त्रित क्यों नहीं कर सकते?"

कलजन—"उसे भी कर सकते हैं, पर चूंकि वह एक सस्ती चीज है, इसलिए हर एक की दृष्टि में उसका मान गिरा हुआ है।"

रिंबूची को कुछ याद आया। वह बोला—"लेकिन तुमने उस चरवाहे से क्यों कह दिया कि इन हाँडियों में मूँगा-मोती हैं।

कलजन—"सच्चाई को खुला छोड़ देने में कोई खटका नहीं, उसे ढक देने से ही हम अपने लिए संकट पैदा करते हैं।"

रिंबूची हँसने लगा—"फिर कण्डों के ऊपर खुले ही रखकर क्यों नहीं फूंक दिए मूँगे और मोती? क्यों हाँडियों के भीतर इस सत्य को छिपा कर रख दिया है?"

कलजन अपने मित्र के व्यंग्य का कोई जवाब नहीं दे सका। एक हँसी उसके अधरों पर उदय होते-होते फिर गम्भीरता में खो गई। वह

बोला—"अब सूर्य अस्ताचल में चले गए, भीतर चलो, बीमार बड़ी देर से अकेली ही है।"

कलजन ने होशियारी से हाँडी उठा ली और दोनों भीतर को चले, आँगन में आए। आँगन में तीन ओर ऊँची ऊँची दीवारें थीं। चौथी ओर मकान का मख्य प्रवेश था। दोमंजिला मकान, आँगन को छोड़कर मकान की तीनों दीवारों में और कोई आने जाने का द्वार नहीं था। धुएं के निष्कासन, प्रकाश और धूप के प्रवेश के लिए खिड़कियाँ थीं।

मकान के सामने आँगन की दीवार में एक दरवाजा था, रिंबूची ने आँगन में पहुँचकर उसमें साँकल चढ़ा दी। दोनों भीतर जा पहुँचे।

बीमार रो-चिल्ला रही थी। रिंबूची उस ध्वनि का आदी ही था। उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कलजन दौड़कर उसके पास जा पहुँचा। उसने पूछा—"क्यों तबीयत कैसी है?"

"जीवन के लिए कोई आसरा नहीं, मरने के लिए भी कोई सहारा नहीं मिलता।"—कराहती हुई वह बोली।

"क्या बात हो गई?"—कलजन ने पूछा।

"कब से प्यास लगी है, पानी माँग रही हूँ।"

"पानी रखा तो है।"—रिंबूची ने कुछ झिड़ककर कहा।

"सब पी चुकी हूँ।"—कहकर वह रोने लगी सिसकियाँ भरती हुई।

रिंबूची पानी भरकर ले आया और उसके सिरहाने रखते हुए बोला—"लो पानी ले आया। किसी दिन तुम पानी को छूती भी नहीं हो और किसी दिन रखते ही बर्त्तन रीता कर देती हो।"

"मैं क्या करूँ फिर? प्राण जिस दिन जैसा माँगते हैं। पानी भी नहीं दोगे क्या?"

कलजन उन हाँडियों को दिखाता हुआ बोला—"देखो, यह तुम्हारे लिए हम दवा बना रहे हैं। भगवान् चाहेंगे तो तुम शीघ्र ही रोग से मुक्त होकर घर के काम-काज में लग जाओगी। तुम्हारी तकलीफ़ के

अब अधिक दिन नहीं हैं।"

रिंबूची प्याले में पानी भरकर उसके पास ले गया, बोला—"लो, पानी पी लो।"

"नहीं!" बीमार ने अपने निश्चय में बदलकर कहा—"नहीं, पानी नही पिऊँगी। दवा पिऊँगी।"

रिंबूची ने पूछा—"कौन-सी दवा पिओगी?"

वह नाराज हो गई, मुँह फिराकर सो गई।

कलजन बोला—'अभी दवा तैयार नही हुई। कल आँच पर रखेंगे। तीन-चार दिन में भस्म बनेगी। फिर कुछ और दवाओं के साथ घोटकर इसमें मंत्र दिए जाएँगे। अगले सप्ताह तक पहली खुराक दे सकेंगे तुम्हें जरूर।"

"इस बीच में यदि मर गई तो?"

रिंबूची धीरे-धीरे बोला—'भगवान् की कृपा होगी, पाप कट जायेगा।"

कलजन ने कहा—"नहीं, कुछ नहीं होगा, घबराओ नहीं।"

बीमार ने छाती पर के उस तावीज को उठाया। उसमें बनी हुई डोल्मा की मूर्ति को सिर-माथे से लगाया और उसके पैरों का चुंबन लिया।

कलजन और रिंबूची ने बीमार के पास से कुछ दूर पर जाकर गोष्ठी की। उन दोनों के मुखों पर चिन्ता की छाया थी और वाणी में कंपन और मंद्रता।

कलजन बोला—"दवा बनाने में शीघ्रता करनी चाहिए। कैसे हो?"

"अभी कण्डे सुलगा दें। उसके बीच में हांडी रख दीजिए। सूख भी जाएगी और फुंक भी जाएगी साथ-ही-साथ।"

"ऐसा विधान तो नहीं है।"

"आवश्यकता और सुभीते के अनुसार विधान में बदलाव किया जा

सकता है। हाँडियाँ तो पक्की हैं, उनके फूटने का कोई डर नहीं है।"—रिंबूची ने सुझाव दिया।

"आज का दिन तो गया और एक दिन की देरी से कुछ न होगा। कल दिन भर की धूप में हाँडियाँ और सूख जायेंगी। मनुष्य की गहराई का आँगन में एक गड्ढा भी तो खोदा जाएगा।"

दूसरे दिन रिंबूची को फिर चरवाहे के साथ सन्धि कर लेनी पड़ी भट्टी के लिए गड्ढा खोदने के लिए। रोज सुबह वह बीमार के लिए दूध लेकर आता था।

रात में ही रिंबूची ने यह निश्चय कर लिया था। चरवाहा वैसे काम का आदमी था, कुछ झक्की जरूर था। जब वह दूध लेकर आया तो रिंबूची ने उससे कहा—"क्यों नाराज हो क्या ?"

"हम गँवारों की नाराजी से होता क्या है ?"

"कण्डे तो तुमने दे दिए, गड्ढा कौन खोदेगा ?"

"किस चीज के लिए ?"

"भट्टी के लिए।"

"मुझे वन में जाना है, जानवरों को लेकर।"

"तुम्हारी घरवाली तो है।"

"वह अंधी है, परसों से चार बकरियाँ गायब हैं।"

"घण्टे दो घण्टे का ही तो काम है। गोठ में फावड़ा है, निकालकर खोद डालो—कौन-सा ऐसा कुँआ खोदना है ?"

"कितना गहरा खोदा जायेगा ?"—चरवाहे के भीतर मन में कोई और एक विचारधारा लहरा रही थी।

"यही दो-चार हाथ गहरा और क्या ?" रिंबूची ने कलजन की ओर देखा।

कलजन ने जवाब दिया—"और क्या ? बहुत भारी काम तो कुछ है नहीं। दो-चार हाथ मारोगे, अभी हो जायगा।"

"चलो, जगह बता दो फिर अभी।"

चरवाहे को लेकर दोनों आँगन में आए। कलजन धूप में सुखाने के लिए उस हाँडी को भी ले चला। आँगन में पत्थर बिछे हुए थे। रिंबूची ने कलजन से पूछा—"कण्डे गड्ढे के बाहर भी रहेंगे क्या ?"

"एक-दो हाथ ऊँचे रहें भी तो क्या हर्ज है ? कोई ऐसी लपटें नहीं उठेंगी। तुम्हारे मकान की लकड़ी को कोई हानि नहीं पहुँचेगी।"

"फिर भी जरा मकान से हटकर ही ठीक रहेगा।"—कहते हुए रिंबूची ने चरवाहे को एक जगह दिखाई।

चरवाहे ने अपने छुपे की बाँहें खोल दीं और उन्हें कमर पर बाँध लिया। फावड़ा हाथ में लेकर वह खोदने के लिए तैयार हो गया। बेंट कुछ चिकनी हो गई थी। उसे मजबूती से जमा लेने के लिए उसने दोनों हाथों में थूका और फावड़ा पकड़ पत्थर हटाकर खोदने लगा।

कलजन-रिंबूची चरवाहे से जरा हटकर खड़े हो गए। कलजन कुछ धीमे स्वर में कहने लगा—"मेरे गुरु ने मुझे एक बड़ा विचित्र प्रयोग बताया था। लेकिन मैं आज तक उसे कभी कर नहीं सका हूँ।"

"बहुत कठिन है क्या ?"

"और कठिनाई तो कुछ नही है, बड़े धीरज की आवश्यकता है। उन्होंने बताया था अगर गड्ढे को खोदने में सिर्फ बाएँ हाथ के अँगूठे का ही उपयोग किया जाय तो मनुष्य की ऊँचाई की गहराई खोद लेने पर उसमें से एक प्रचण्ड अग्नि अपने आप उपज जाती है। उसमें तुम जिस चीज को भी भस्म कर लोगे, वह एक सिद्ध औषधि बन जायगी।"

कुछ चौंककर रिंबूची बोला—"क्या यह सच है ?"

"कैसे कहा जाय झूठ है ? कभी गड्ढा खोदकर अनुभव तो किया नहीं।"

"सिर्फ अंगूठे से मिट्टी खोदना ? मिट्टी बाहर फेंकने के लिए भी उँगलियों को काम में न लाया जाय ?"

"नहीं—" कलजन ने सावधानी से हाँडी को सूख जाने के लिए धूप में रख दिया।

"एक असम्भव बात है यह।"

"संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है।"

"कई सौ वर्षों में गड्ढा खुद सकेगा।"

"सच्ची लगन होने पर समय मनुष्य की दासता स्वीकार करने लगता है और देवता उसकी सहायता को दौड़े चले आते हैं।"

'कलजन, मित्र बड़ी देर में तुमने मुझे यह बात बताई।"

चरवाहा धीरे-धीरे आँगन खोदकर बाहर मिट्टी का ढेर लगाता जा रहा था। उसके मन में से उन हाँडियों के भीतर की दवा के बारे में किया गया त्रिद्रप अभी तक जमा ही हुआ था। उस अपमान को तब तक भूल जाने की वह कसम खा चुका था, जब तक उसके भीतर की वस्तु की उसे पूरी पूरी जानकारी न हो जाय। बीच-बीच में धूप में सूखती हुई उस हाँडी की ओर वह देखता जा रहा था।

कलजन ने रिंबूची से कहा—"हर बात संयोग से होती है, तुम ज्योतिषी हो, ग्रहों के योग को जानते हो। उसको जो टाल देने की चेष्टा है, वह किसी ग्रह को उसकी राह से हटा देने की कोशिश के समान कठिन नहीं है क्या ?"

रिंबूची कुछ घबराकर बोला—"जरूर ऐसी ही बात है। लेकिन इस समय तुम्हारा यह कहने से क्या मतलब है ?"

"मेरा मतलब है रिंबूची, तुम्हारी औरत को बचना होगा तभी तो ये मूंगा-मोती कितनी आसानी से उपलब्ध हो गए और इनको फूंककर दवा बनाने का भी योग आ गया। और अगर उसे बचना नहीं होगा तो इस दवा का अमृत बनाकर भी हम उसे जीवित नहीं रख सकते।"

"तुम न जाने क्यों बड़ी बेसुरी बातें करने लगे ?"

"वातावरण हमारे भीतर से ध्वनि बनकर आ जाता है। तुम कैसे ज्योतिषी हो ? क्या सूर्य की चाल में भी रात नहीं है और चन्द्रमा के पक्ष में भी कृष्ण पक्ष नहीं ?" कलजन से हाँडी की छाया-भरी दिशा को सूर्य के प्रकाश की ओर घुमा दिया।

रिंबूची को कलजन की यह विचारधारा सहन नहीं हुई। वह बीमार के पास चले जाने का बहाना बनाकर भीतर को दौड़ गया।

१०

चरवाहे की नजर

गड्ढा तो घण्टे-भर में ही खुदकर तैयार हो गया था। लेकिन कलजन की हाँडी शाम तक भी नहीं सूख सकी थी। वह दूसरे दिन के लिए टालने की बात सोच रहा था।

रिबूची बोला—"भाई, मैंने जंत्री देखी है। सूर्यास्त के बाद बहुत अच्छी घड़ी है। मेरी समझ में आज ही रख दो इस हाँडी को अग्नि-देवता की गोद में।"

कलजन राजी हो गया—"अच्छी बात है, जहाँ तक दवा का सम्बन्ध है, मैं जो कुछ भी कहूँ, लेकिन जब घड़ी और लगन का विषय है, तो मुझे तुम्हारी ही बात मान्य है। आज ही सही। हाँडी करीब-करीब सूख तो गई ही है। जो कुछ कसर शेष है, कंडों पर ही निकल जायेगी।"

रिबूची ने कहा—"बताओ फिर क्या करूँ?"

कलजन—"करना ही क्या है? भट्टी के नीचे कुछ कंडे बिछेंगे, बीच में हाँडी रख फिर बाकी ऊपर से रखे जाएँगे। चारवाहे को बुला लिया जाय।"

रिबूची—"रहने दो उसे। एक तो कीमती दवा है, मालूम नहीं किसके मन में कहाँ पर पाप छिपा है? बताओ, मैं खुद कर देता हूँ।"

रिबूची कंडों के ढेर में से कंडे उठा-उठाकर भट्टी में डालने लगा। कलजन उन्हें भट्टी में सँजो-सँजोकर लगाने लगा। अचानक रिबूची को कुछ याद आया और उसने आँगन का दरवाजा बन्द कर उस पर साँकल चढ़ा दी।

बीच में हाँडी रखकर उसको ऊपर तक कण्डे चिनकर ढक दिया

गया। सूर्य अस्ताचलगामी हो गए थे। दोनों सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।

रिंबूची बोला—"क्या यह जरूरी है कि हम दोनों रात-भर यहीं रहें। द्वार बन्द है ही। फिर किसे मालूम है इसमें क्या है? और कोई आग में हाथ क्यों दे?"

"चौकसी के लिए तो नहीं लेकिन रात-भर यहाँ पर मानी घुमाई जायेगी मन्त्रों के साथ कि पापात्माएँ आकर हमारी दवा को खराब न कर दें।"

"ऊपर से पाला गिरेगा। ऊपर मकान की खिड़की पर से भी तो यहाँ पर नजर पड़ती रहेगी।"

"नहीं, यहीं नीचे ही ठीक है। कनटोप से सिर और कान ढक लूँगा चौहरा कर एक थुल्मा नीचे बिछा लूँगा। सामने इतनी प्रचण्ड आग! कैसा पाला? कैसा जाड़ा?" कलजन ने आकाश की ओर देखकर पूछा—"अभी और कितनी देर है?"

"देर सूर्यदेव की ही है, हमारे तो सब कुछ तैयार है। इधर यह भट्टी खुद गई है और उधर आग सुलग रही है। जरा यह मकान की छत पर की धूप ओझल हो जाय, तब तक मैं तुम्हारी मानी और थुल्मा ला देता हूँ। अगर बीमार की उलझन न होती तो तुम्हारे साथ मैं भी यहाँ बैठा-बैठा रात-भर मन्त्र घुमाता रहता।"—कहकर रिंबूची घर के भीतर चला गया।

वह दबे पैर कमरे में गया। बहुत धीरे से जब वह एक थुल्मा उठा रहा था तभी उसकी स्त्री ने बड़ी करुणा-भरी वाणी से पुकारा—"कौन?"

"मैं हूँ रिंबूची!"—उसने उत्तर दिया।

"मेरे पास बैठो।"

"तुम्हारे पास अभी कैसे बैठूँ?"—वह कलजन की मानी उठाकर बाहर को जाने लगा।

"मेरी तबीयत बहुत घबराती है।"

"किसी तरह उस पर काबू करो। तुम्हारे ही लिए तो यह सब उपाय हो रहा है। दवा बनाई जा रही है।"

"आज रात रहने दो दवा, कल बना लेना।"

"लगन ढूंढकर आज का निकाला है। कल कैसे बनाएँ?"

"मेरा दम घुटा जा रहा है। मेरे पास आकर बैठते क्यों नहीं तुम?"—फिर उसने कहा।

"तुम तो रोज ही ऐसा कहती हो। मैं कुछ जरूरी काम करने के बाद आऊँगा।"—रिंबूची कंबल और मानी लेकर बाहर को जाने लगा।

बीमार ने फिर गिड़गिड़ाकर कहा—"हकीम जी कहाँ हैं?"

"तुम्हारे लिए ही दवा बना रहे हैं।"

"उन्हें बुला दो जरा देर के लिए।"

"वह नहीं आ सकते। मैं आता हूँ अभी।"—रिंबूची बाहर चला गया।

उसने भट्टी के पास थुल्मा ले जाकर बिछा दिया और बोला—"लो, अब तुम यहाँ पर जमकर बैठ जाओ। जो कुछ करना-धरना होगा सब दौड़-भाग मैं ही करूँगा। यह तुम्हारी मानी है।"

कलजन मानी लेकर घुमाने लगा और अपना मन्त्र जपने लगा।

रिंबूची के मुख में कुछ टूटी हुई भावना को देखकर कलजन ने पूछा—"क्यों कुछ अन्यमनस्कता कैसी हो गई अभी-अभी?"

"कुछ नहीं, यह शादी ही मेरी बरबादी का कारण हुई, कलजन। इसने कभी मुझे चैन से नहीं रहने दिया।"

"क्या बात हो गई?"

"उसी के लिए इतनी कठिनाई से यह दवा बनाने की तैयारी कर रहे हैं और वह कुलक्षणी ऐन मौके पर छींक रही है।"

"बीमारी के सबब उसका दिमाग कमजोर हो गया, भाई।"

"वह जब अच्छी थी, तब भी ऐसी ही थी।"

"सब भावना ही का खेल है।" कलजन ने कहा—"भावना मत बिगाड़ो भाई।"

"कलजन, एक बात समझ में आती है। अभी आग नहीं दी है इसमें, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

"तुम ज्यादा छङ पीकर तो नहीं आ गए आज। तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"मैं कहता हूँ हाँडियाँ निकाल लो।"

"क्यों ?"

"वह अच्छी होने वाली नहीं। मनुष्य विश्वास से अच्छा होता है। उसके पल्ले में मैंने कभी किसी प्रकार का विश्वास नहीं पाया। निकाल लो, कहता हूँ हाँडी निकालो। अकारण ही इन जवाहरों की राख कर क्या फायदा ?"

"मेरी स्त्री मर चुकी और मैं फिर किसी स्त्री से प्रेम नहीं करना चाहता, तब किसके लिए इन जवाहरों को बचाऊँ ?"

"किसी को दान कर दो। भोग से दान की बहुत बड़ी महिमा है।"

"बहुत ठीक कहा तुमने। ऐसे इस हाड़-चाम की भूख प्यास से हमारी आत्मा की लालसा बहुत बड़ी है। किसी के शरीर पर आभूषण पहनाकर हम उसके झूठे अभिमान को बढ़ाते हैं और किसी को आत्मा का भोजन देकर हम उसके भीतर प्रकाश की आँखें खोलते हैं। रोग क्या है ? यह सूक्ष्म और स्थूल की संधि पर उपजी हुई एक गाँठ है। मन और देह की एक जड़ता है। नहीं, आभूषणों के रूप में मैं किसी को न दूंगा ये मोती और मूंगे। अगर किसी को देने ही होते तो क्यों तुम्हारी स्त्री के गले से उतार लाता ? मैं उसका रोग दूर करने के लिए इनसे दवा बना रहा हूँ।"

"वह न होगी अच्छी।"

"बिना दवा का प्रयोग किए तुम ज्योतिष से बता रहे हो क्या ?"

रिंबूची भीतर की ओट कान और मन देकर वहाँ पर बैठा था,

ानक चौंककर उठा—"वही है, फिर चिल्लाने लगी।"

कलजन कहने लगा—"रिंबूची, मैं अपने तमाम कर्त्तव्य कर चुका । यह भट्टी अब सिर्फ आग की ही प्रतीक्षा में है। तुम ठीक समय पर ग दे जाना इसमें। मुझे अब इस आसन से नहीं उठना होगा।"

रिंबूची दौड़कर भीतर चला गया।

"मैं कितना चिल्लाई। तुमने मेरी कोई भी आवाज नहीं सुनी"—क्की स्त्री बोली।

रिंबूची ने देखा, उसका मुख बिलकुल पीला पड़ गया था, लेकिन वाज में वही कर्कशता और वही बर्बरता थी। उसने पूछा—"क्या त है ?"

"अभी मौत के राजा के दो सिपाही आए थे। ऐसे समय में तुम हाँ चले जाते हो ? अभी अगर वे मुझे पकड़ ले गए होते तो फिर हारी दवा खाने के लिए कौन बचा रहता ?"

रिंबूची ने निश्चय किया—यह जरूर प्रलाप में बक रही है। उसकी नों आँखें बिलकुल खुली होने पर भी रिंबूची ने उसे झकझोरते हुए हा—"उठो, उठो, क्या तुम सपना देख रही हो ?"

"जब वे मुझे घसीट ले जायेंगे, तभी करोगे तुम विश्वास। नहीं, कहीं न जाने दूंगी अब तुम्हें ;" बीमार ने रिंबूची के लबादे की ढीली ह पकड़ ली बड़ी दृढ़ता से और बोली—"आज की रात अब तुम्हें ीं मेरे सिरहाने बैठकर बितानी होगी।"

रिंबूची कठपुतली की तरह उसके सिरहाने बैठ गया। उसने उसकी कड़ से अपनी बाँह छुड़ाने की कोई कोशिश नहीं की। कुछ देर बाद ब बीमार की आँख लगने लगी तो उसका हाथ ढीला पड़ गया और बूची की बाँह स्वयं ही छूट गई।

उसकी साँस में एक अजीब स्वर पैदा होने लगा था। रिंबूची ने झराकर उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसे पुकारा—"तुम्हें नींद ा रही है क्या ?"

"हुँ : ! नींद आ रही है ? इसे नींद कहते हैं ? मैं अँधेरे की ओट में छिप रही हूँ उन सिपाहियों से। लेकिन वे अँधेरे और उजाले दोनों में एक ही आसानी से देख रहे हैं। तुम यहीं बैठे रहना, हाँ ! हकीम जी को भी बुला लो।"

"नहीं, वह नहीं आ सकते।"

"क्यों नहीं आ सकते ? उनके भीतर तुमसे ज्यादा ममता और तुमसे ज्यादा दया है।"

"वह दवा बना रहे हैं।"

"उनकी दवा से कुछ न होगा, कह दो उनसे वह फौरन ही आ जायँ।"

"वह पूजा में बैठे हैं।"

"मैं भी बैठ जाती हूँ।"—कहकर फिर उसकी आँखों की पलकें लग गईं और फिर नाक से उसकी वैसी ही आवाज होने लगी।

रिंबूची को अचानक भट्टी की आग की याद आई। उसने देखा, सूर्यदेव अस्ताचल में डूब गए थे। वह सावधानी से उठा और चूल्हे में से आग निकालकर बाहर को चला गया।

कलजन मन्त्र गुनगुनाता हुआ आधी आँखें मूंदे हुए मानी घुमा रहा था। रिंबूची ने कण्डों के ऊपर वह आग रख दी और बोला—"कलजन, यह आँच रख गया हूँ मैं। इसको सुलगा लेना। मैं फिर वहीं जा रहा हूँ। उसकी तबीयत कुछ ठीक नहीं जान पड़ती।"

"कोई विशेष बात तो नहीं है ?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं। बड़े आग्रह से वह मुझे वहीं बैठे रहने को कह रही है। मेरी यहाँ कोई आवश्यकता भी तो नहीं है। आज उसके आग्रह में मुझे एक बड़ी विवशता दिखाई दे रही है।"—रिंबूची जाने लगा।

"आग सुलगाकर कहो तो मैं भी आ जाऊँ वहाँ ?"

"नहीं, तुम यहीं रहो। नहीं तो पापात्माओं से बचाव कैसे

होगा।"—रिंबूची घर के भीतर चला गया।

उसके भीतर जाते ही उसकी स्त्री ने आँखें खोल दीं और बड़ी विरक्ति से रिंबूची को देखकर बोली—"तुम भी झूठे हो और तुम्हारी ज्योतिष-विद्या भी।"

रिंबूची के व्यक्तित्व पर यह बड़ा तीखा प्रहार था। बीमार की बड़ी दयनीय दशा को देखकर वह चुपचाप यह सब सहन कर उसके सिरहाने बैठ गया।

"क्या मैं झूठ कह रही हूँ?"—बीमार ने फिर पूछा।

रिंबूची ने अपने सारे जीवन को एक चित्र की तरह देखा। उसको स्त्री के उस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं दिखाई दी। उसने उत्तर दिया—"तुम ठीक कह रही हो।"

"तुम्हारा घमण्ड आज ही टूटता हुआ दिखाई दिया मुझे। लेकिन अब और कुछ नहीं हो सकता। तुमने खाना खा लिया या नहीं?"

"नहीं, अभी समय नहीं हुआ है। तुम्हें कुछ इच्छा हो रही है क्या? तुम्हारे लिए बना लाऊँ कुछ?"

"नहीं, मैं कुछ न खाऊँगी। तुम खा लो और उस बेचारे मेहमान को खिला दो।"

"वह नहीं खायेगा अभी, सिर्फ चाय पिएगा, वह पूजा में बैठा है।"

"सबसे अच्छा बहाना पूजा का ही होता है। मैं उस हकीम को सीधा समझती थी। वह तुमसे कम होशियार नहीं है।"

रिंबूची मन-ही-मन सोच रहा था, आज इस बीमार को क्या हो गया। उसकी आँखों से बड़ी अजीब तरह की रोशनी-सी निकल रही थी। रिंबूची साहस कर भी उसका सामना करने में असमर्थ हो गया था। उसके मुख पर से दृष्टि हटाकर वह बड़ी बेचैनी से कमरे में इधर-उधर दौड़ा रहा था। अचानक उसने बीमार के मुँह से निकलती हुई एक अजीब तरह की घुरघुराहट सुनी। तुरन्त ही उसका सारा ध्यान उसकी तरफ खिंच गया।

देखता क्या है, उसके हाथ-पैर और गर्दन ऐंठने लगे थे, मुँह से झाग निकलने लगा था। उसने तुरन्त ही उसका सिर अपनी गोद में लेकर उसे पुकारा।

उसके मुख और आंखों में एक बड़ी अव्यक्त वेदना की झाँई दिखाई पड़ी। ऐसा जान पड़ा वह कुछ कहना चाहती थी पर शब्द उसके गले और होंठों पर अटक गए थे। रिबूची घबरा गया। उसने वहीं पर बैठे-बैठे जोर से आवाज दी—"कलजन ! कलजन ! दौड़े चले आओ भाई।"

रिबूची के आग देकर ऊपर जाने के बाद कलजन फूंक मारकर उसे सुलगाने लगा। रिबूची जो-कुछ दो-चार शब्दों में बीमार का हाल उसे सुना गया था, उससे उसके मन में भी बड़ी दुविधा छा गई थी। जिस उत्साह से वह दवा फूंकने को बैठा था वह जाता रहा और एक भयानक काले-काले मेघों का जाल उसके मानस में फैलने लगा था।

बड़ी ढीली चाल से एक हाथ से मानी घुमाता हुआ, दूसरे हाथ से कभी आग में फूंक मारता हुआ कभी मन्त्र गुनगुनाता हुआ वह काल के कठोर चरणों में ताल दे रहा था। मन उसका रिबूची के साथ ही उस बीमार के निकट चला गया था।

थोड़ी देर में बाहर के द्वार पर किसी ने खटखटाया। कलजन ने पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ, तुमने शिग दे जाने को कहा था न आग सुलगाने के लिए, ले आया हूँ, द्वार खोलो"—बाहर से चरवाहे ने कहा।

"हाँ भाई, यह तो बड़ा काम किया तुमने।"—कलजन ने द्वार खोल दिया और उस चरवाहे के साथ कोई सहायक आत्मा आती जान पड़ी उसे भट्टी के पास।

चरवाहे ने लकड़ी की छीलन भट्टी के ऊपर डाल दी। इसी समय मकान के भीतर से आवाज आई—"कलजन ! कलजन ! दौड़े चले आओ भाई !"

कलजन ने चरवाहे से कहा—"भाई, दो-चार फूंक मारकर आग में लपट उठा दो। मैं अभी आता हूँ, रिंबूची की स्त्री की तबीयत आज कुछ अच्छी नहीं है।" कलजन दौड़कर भीतर चला गया।

चरवाहे को अपना वह अपमान याद आया। उसके भीतर के उस पाप को रिंबूची ने जगा दिया था। आग अभी कण्डों के ऊपरी भाग ही में थी। चरवाहे ने कण्डों के भीतर धीरे-धीरे अपना हाथ डाला और एक-दो बार इधर उधर घुमाया। घुमाते ही हाँडी उसके हाथ लग गई, उसने उसे निकाल बाहर किया और दौड़कर बाहर एक बिच्छू के पौधे की झाड़ी में छिपा आया।

वह फौरन ही फिर भट्टी के पास आ मौजूद हो गया और कुछ ही देर में उसने फूंक मार-मारकर सरई की छीलन में लपटें उठा दीं, कण्डे जलने लगे।

उधर कलजन ने भीतर जाकर देखा, रिंबूची की बुरी हालत थी, उसकी स्त्री दम तोड़ रही थी। कलजन की समझ में भी पहले तो कुछ नहीं आया, बिना दवा-पुड़िया का वैद्य था वह। उसने जाते ही बीमार की नाड़ी पर हाथ रखा। उसके हाथ-पैरों की गरमी मालूम की। उसे कुछ धीरज-सा प्रतीत हुआ। उसने रिंबूची से बड़े संयत स्वर में कहा—"रोओ मत, रोने से क्या होगा? बीमार का सिर तकिये पर रख दो। ऐसे गोद में लेकर क्या तुम किसी को मरने से बचा लोगे?"

रिंबूची स्त्री का सिर बिस्तर पर रखकर अलग हो गया। कलजन उसके पैर के तलुओं को अपनी हथेली से रगड़ने लगा। उसने रिंबूची से उसकी हथेलियों को वैसे ही रगड़-रगड़कर उनमें गरमी उपजाने के लिए कहा।

भगवान की माया! कुछ देर में बीमार होश में आने लगी, उसके हाथ-पैरों की ऐंठन दूर हुई और उनमें कुछ गरमी भी आ गई। उसने आँखें खोलीं। उसके मुंह से एक-दो शब्द निकले, लेकिन दोनों में से कोई उसे समझ नहीं सका।

कलजन ने रिबूची से पूछा—"दूध है ?"

'होगा थोड़ा-सा ।"—वह एक प्याले में ले आया ।

कलजन ने जबर्दस्ती बीमार के मना करने पर भी उसके गले में थोड़ा-सा दूध डाल दिया । उसके पी चुकने पर उसने पूछा—"क्यों कैसी है तबीयत ?"

बीमार ने कुछ कहा, लेकिन वह इतना अस्पष्ट और विकृत था कि किसी की समझ में नहीं आया । हाँ, उसके मुख की भाव-भंगी से ऐसा जान पड़ा, दौरा खतम हो गया और अब वह ठीक है ।

रिबूची ने पूछा—"इसकी ज़बान बिलकुल बन्द हो गई, कहीं इस पर लकवा तो नहीं पड़ गया ?"

"कुछ दिन बाद पता चलेगा ।"

दोनों कुछ देर चुप रहकर बीमार को देखते रहे । उसके बाद रिबूची ने पूछा—"कोई दवा तो नहीं दोगे ?"

"क्या बताऊँ ?"—कलजन सिर खुजाकर सोचने लगा ।

"बाजार से लाने की हो तो मैं ले आऊँगा ।"

"बाजार की दवा से क्या होगा ? दवा बन रही है । लेकिन इसने तो अचानक ऐसा रुख ले लिया ।"

"मैं समझता हूँ, यह खतरा इसने पार कर लिया ।"

"दूसरे झटके का डर है मुझे ।"

"अब आज रात इसे कुछ न होगा ।"

"कैसे कहते हो ?"

"बीमार की शकल और चेष्टाओं से ।"

"अगर दो-तीन दिन इसे कुछ नहीं होता है तो फिर तो हमारी दवा तैयार हो जायगी रिबूची । और हम जी-जान से एक बार फिर इसे बचाने की कोशिश करेंगे । आशा बहुत-कुछ है ।"

"तुम जाओ फिर वहीं आसन बाँधकर बैठो । आग सुलग गई होगी ?"

"जरूर," कलजन एक बार फिर बीमार की तरफ बढ़ा । उसने उसकी नाड़ी पर हाथ रखकर कहा—"नाड़ी कमजोर नहीं है ।"

बीमार ने अपना हाथ हटाकर इशारा किया कलजन से चले जाने का । रिंबूची बोला—"यह तुमसे जाओ कह रही है ।"

कलजन ने जाने से पहले बीमार को आश्वासन दिया—"मैं दवा बनाने जा रहा हूँ । अब तुम्हें कुछ न होगा ।"

बीमार ने फिर कुछ उसी अस्पष्ट उच्चारण में पूछा । कलजन ने जो कुछ समझा उसके उत्तर में कहा—"बस बन जाएगी दवा दो-तीन दिन में ।"

बीमार के मुख पर बड़ी उलझन प्रकट हुई । उसने फिर अपना मतलब जाहिर करने के लिए कुछ कहा, कुछ इशारा किया । कोई कुछ नहीं समझा ।

रिंबूची बोला—"शायद इसका मतलब यही है, तुम बाहर जाकर दवा में अपना मन लगाओ ।"

कलजन बाहर को चला गया । चरवाहा आँगन में पड़ी हुई एक सूप को पंखा बनाकर भट्टी में हवा कर रहा था । भट्टी अच्छी प्रकार सुलग उठी थी । कलजन ने यह देखकर उससे कहा—"शाबाश, भाई, तुमने तो पूरा काम कर दिया, बस अब रहने दो । तुम जा सकते हो ।"

लेकिन चरवाहा आग सेंकते हुए बोला—"कैसी है उनकी तबीयत ?"

"ठीक है । बहुत पुरानी बीमारी, हालत नाजुक ही है ।"

"मैं भी देख आऊँ ऊपर जाकर ?"

"नहीं, बीमार की बेचैनी बढ़ जाएगी । तुम घर को जाओ ।"

लेकिन चरवाहा अपनी प्रमाणिकता दिखाने के लिए वहाँ पर कुछ देर और जमा रहना चाहता था । कहने लगा—"जाड़े के दिनों में आग के पास बैठकर फिर वहाँ से उठने को किसका मन करता है ? जरा हाथ-पैर सेंक लेता हूँ ।" चरवाहा सोच रहा था, कुछ और अँधेरा

हो जाय तो उसके जाने में अधिक आसानी रहेगी।

कलजन बोला—"क्या सेंकते हो ? घर जाते-जाते फिर ठण्डे हो जाओगे।"

चरवाहे ने कहा—"ठीक कहते हो हकीम जी, खाना खाकर फिर भूख लग जाती है। सब लोग इस बात को जानकर भी तो खाना खाते ही हैं।"

"मैं तो आज खाना भी नहीं खाऊँगा। यहाँ पर आसन बाँधकर मुझे पूजा करनी है। तुम जाओ तो मैं यह दरवाजा बन्द कर लूं।"—कलजन ने कहा।

चरवाहा अपना लबादा झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने आकाश की ओर देखा, संध्या धीरे-धीरे उतर चली थी धरती पर। वह कण्डों के ढेर की तरफ देखता हुआ कलजन से बोला—"कण्डे तो तुम्हारे सब अभी खतम हो गए हैं। और दे जाऊँ ?"

"अभी काफी हैं।"

"ये तो रात-भर में सब जल जाएँगे। सुबह जरूरत पड़ेगी अभी कह दो। अगर सुबह तुम्हारा जवाब देर में आया तो मालूम नहीं मैं घर पर मिलूं या नहीं ?"

कलजन ने कुछ सोच कर जवाब दिया—"सुबह दे जाना।"

चरवाहे ने बाहर को जाते-जाते फिर लौटकर पूछा—"कितने बोझ ?"

"यही एक-दो, और कितने ?"

चरवाहा आँगन के बाहर चल दिया। कलजन ने द्वार बन्द कर उन पर साँकल चढ़ा दी।

अन्धकार बहुत घना तो हुआ नहीं था। बाहर निकल कर चरवाहा सोचने लगा—एक चक्कर घर का लगाकर आऊँगा। तब तक अँधेरा अच्छी तरह हो जाएगा। फिर उसके मन में दूसरा विचार लहराया—"कौन देख रहा है मुझे ? देखने दो, क्या मैं चोरी कर रहा हूँ ? मेरी

हँसी उड़ाई है उसने। इसी लिए मैं देखना चाहता हूँ इस हाँडी में क्या है ? फिर जब कभी दूसरी बार वह मेरी हँसी उड़ाएगा तो मैं बता दूँगा हाँडी में कौन-सी दवा थी।

जब उसके मन में चोरी की भावना के स्थान में प्रतिहिंसा का विचार जम गया तो उसके हाथ-पैर अधिक स्थिर हो गए। उसे फिर लोगों का कोई डर नहीं रहा। वह बड़ी लापरवाही के साथ उस बिच्छू की झाड़ी की तरफ बढ़ा। अत्यन्त निर्भयता से उसने छिपी हुई हाँडी को वहाँ से निकाला और अपने छुपा के भीतर डालकर घर को चला।

घर पहुँचकर उसने अपनी स्त्री से कहा—"जल्दी से एक दिया तो जलाकर ले आ।"

स्त्री दिया जलाकर ले आई। पति के हाथ में एक अजीब चीज देखकर पूछने लगी—"यह क्या है ?"

"खुल जाने पर पता लगेगा। मिल गया मुझे एक जगह।"

स्त्री उसके हाथ से उसे छीनती हुई बोली—"हैं ! है ! किसी ने कोई जादू कर फेंक रखा होगा। रख आओ इसे जहाँ से लाए हो। नहीं, नहीं, मैं इसे अपने घर के भीतर नहीं खोलने दूँगी।"

"पागल हो गई हो क्या ?" चरवाहे ने उसके हाथ से हाँडी छीन ली—"दवा है इसमें दवा।" उसने हाँडी में लिपटा हुआ कपड़ा खींच लिया। उसका एक घेरा निकल आया और भी सब। दोनों हाँडियाँ नंगी हो गईं। मिट्टी से उनका मुँह जम गया था। चरवाहे ने जरा जोर लगाकर दोनों हाँडियाँ अलग कर दीं। छक्क से मूँगे और मोती धरती पर बिखर गए। घी के दीपक के मन्द प्रकाश में वे सच्चे जवाहर प्रकाश के पुंजों को प्रतिफलित कर उस गरीब चरवाहे के घर में महालक्ष्मी के पदांकों की तरह फैल गए !

चरवाहा घबराकर उन्हें बीनता हुआ बोला—"अरे ये तो मूँगे और मोती हैं !"

"तुम तो कहते थे दवा है।"

"मुझे क्या मालूम ? अन्दाज लगाया था मैंने।"

"यह जरूर जादू है। किसी ने हमें फंसाने के लिए चाल चली है। फेंक आओ, जहाँ से लाए हो वहीं।"—उसकी स्त्री भी उन दानों को बीनने लगी।

"मूंगे अलग रखो और मोती अलग।"—चरवाहे ने अपनी स्त्री को आदेश दिया।

"ये सच्चे हैं क्या ? मुझे तो बड़े हल्के लग रहे हैं।"—स्त्री ने पूछा।

"हाँ-हाँ, सच्चे ही हैं, इनके ऊपर चमक बोल रही है, उसे नहीं देख रही है तू ? क्यों री ! तू गोबर इकट्ठा कर कण्डे पाथनेवाली, तूने कब मूंगे-मोती का भार संभाला, जो कह रही है ये हल्के लग रहे हैं ?"

"पहने तो नहीं हैं, देखे भी नहीं हैं क्या ? पिछले नए साल के मेले में गारपन की स्त्री की मोती की लड़ी टूट पड़ी थी। मैंने उसे बीन-बीन कर दिए थे। तब की याद है मुझे वे जरूर भारी थे।"

चरवाहे का माथा चकराने लगा था। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उन हाँडियों में उतना कीमती माल भरा होगा। उसने अपनी स्त्री से कहा—"मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आता है जो इतनी कीमती चीजों को आग में भूनने लगे मानो यह चांबा के लिए जौ या गेहूँ थे।"

स्त्री ने पूछा—"किनकी ?"

चरवाहे के मुख से बात निकल पड़ी थी, अब वह उसे छिपाने लगा—"कुछ नहीं, लाओ तुमने बीन लिए सब, एक दाना भी नहीं रहना चाहिए यहाँ। हाँडी को ठीक उसी तरह बन्द कर मैं दे आता हूँ अभी।"

"किसे दे आते हो ?"

"मेरा मतलब है वहीं सड़क पर फेंक आता हूँ।"

"नहीं, सड़क पर इतनी कीमती चीज क्यों फेंक आओगे ? ये जादू के होते तो हमारी नजर के पड़ते ही मिट्टी में मिल जाते। मैं तो इनकी

माला गूँथ कर पहनूंगी।"

"हैं ! हैं ! यह क्या कहती है राँड ! तू मुझे जेलखाने भिजवाएगी क्या ?"

"तब क्या तुम इन्हें कहीं से चुरा कर लाए हो ? अपनी औरत से जब बात छिपाते हो तो तुम्हारी मदद कौन करेगा ?"

चरवाहे ने बात को विचार की गहराई में तोला मन-ही-मन—"बड़े लामा और मेरी हड्डी में कोई फर्क नहीं, ऐसे ही मूंगे-मोती की राख और चमरी के गोबर की राख में भी कोई भेद नहीं। इन जवाहरों को फिर हाँडी में भरकर उस भट्टी में छोड़ देना जरूर उनके साथ पागल बन जाना है। नहीं, मुझे इन जवाहरों को इस दुर्गति से बचाना होगा।"

दोनों हाँडियों में अलग-अलग मोती और मूंगे भर दिए गए थे। चरवाहे ने अपनी स्त्री से कहा—"अच्छी बात है, मैं इन जवाहरों की रक्षा करता तो हूँ, लेकिन तुम पहन नहीं सकती हो इन्हें। इनको हिफाजत से रख लेंगे कभी काम आयेंगे। तुम एक कपड़े का टुकड़ा ले आओ।"

उसकी औरत एक कपड़ा ले आई, उसमें स्या कांबो बँधा था उसे खोलकर उसने पति के सामने रख दिया। चरवाहे ने सब मूंगे और मोती एक ही में मिलाकर उसमें बांध दिए और उन्हें सावधानी से अपने सिरहाने रख लिया।

इसके बाद उसने कुछ राख कपड़े में छानी और दोनों हाँडियों में थोड़ी-थोड़ी भरकर बीच में दोनों दियों का ढकना जमाकर उसी कपड़े से बाँध दिया गीली मिट्टी की सहायता से, फिर चूल्हे पर आग के सामने रखकर उसे सुखा लिया।

उसकी स्त्री ने पूछा—"इन हाँडियों में राख भर देने से क्या फायदा ?"

"अरी बेवकूफ, राख सब बराबर है आदमी की हड्डी की हो, चाहे सीप की हड्डी की या चमरी के गोबर की। सब मिट्टी से निकले हैं, सब

मिट्टी में मिल जानेवाले हैं।"

"अब क्या करोगे इसका ?"

"जहाँ से लाया हूँ, वहीं रख आऊँगा।"

"जवाहरों के बदले राख पाकर वह क्या कहेगा ?"

"उसका मतलब जवाहरों को राख में बदलना ही है, तो फिर कहेगा ही क्या ?"

"ऐसा अक्लमन्द कौन है यह ?"

"बस यह मत पूछो।"

दोनों सो गए। चरवाहा रात-भर यह सपना देखता रहा उन जवाहरों का क्या करूँगा और उसकी घरवाली यह कि उनको कैसे पहनेगी वह ?

११

मांस की गंध

दूसरे दिन सुबह होते ही चरवाहे को कुछ भी नहीं सूझा। उसने सबसे पहले उठकर टोकरा उठाया और उसमें हाँडी को रखा और ऊपर से भर दिए कण्डे।

उसकी स्त्री बोली—"मुँह जूठा किए बिना ही कहाँ को चल दिए तुम ?"

"फिर देर हो जायगी। तुम चाय बनाकर रखो, मैं अभी आता हूँ।"—चरवाहे ने टोकरे की तरफ इशारा कर पत्नी से कहा—"जरा हाथ लगाकर यह टोकरा मेरे सिर पर रख दो।"

अभी जुगमुग अँधेरा ही था। चरवाहा टोकरी सिर पर रखकर भागा रिंबूची के घर को, आधे घण्टे से अधिक का रास्ता नहीं था। आँगन का द्वार भड़भड़ाकर वह बोला—"दरवाजा खोलो।"

कलजन मानी घुमाता हुआ ऊँघ रहा था। चरवाहे की आवाज सुन कर जोर-जोर से मंत्र जपता हुआ उठा—"तुमने तो सुबह भी नहीं होने दी, भाई।" उसने द्वार खोल दिए।

चरवाहा आँगन में घूसते हुए बोला—"काम मुझे काँटे की तरह चुभने लगता है। जब तक उसे पूरा नहीं कर लेता मुझे चैन नहीं पड़ता।"

"मैं जरा लघुशंका के लिए बाहर हो आता हूँ।"—कहता हुआ कलजन खेतों की तरफ चला गया।

चरवाहे की और भी सुभीते से बन आई। उसने टोकरा भट्टी में उलट दिया और हाँडी को एक लकड़ी की मदद से भट्टी के बीचों-बीच जमा दिया।

कलजन आने पर बोला—"है ! तुमने तो तमाम कण्डे भट्टी में ही डाल दिए।"

"अजी, एक रात में कहीं दवा फुकती है ? अभी तो कम-से-कम आठ-दस बोझ कण्डों के और पड़ेंगे।"

कलजन मन में सोचने लगा—"बात झूठी नहीं कहता यह। जड़ी-बूटी तो है नहीं कोई कि गरम हुई और राख में टूट गई। मूंगा और मोती हैं। अभी तो मुश्किल से बाहर की उनकी खाल भी गरम नहीं हुई होगी।"

"तुमने तो सब कण्डे खतम कर दिए रात ही में।"

"दवा को भी फूकना था और मुझे भी तो सिकना था।"—कलजन फिर अपने आसन में बैठकर मानी घुमाने लगा।

चरवाहे ने बड़े आश्चर्य का नाट्य करते हुए पूछा—"रात-भर ऐसे ही बैठे रहे तुम, मंत्र जपते हुए ?"

"हाँ, ऐसे ही।"

"मैं तो तुमको एक हकीम ही समझे हुए था, तुम तो एक सिद्ध पुरुष भी जान पड़ते हो।"

"सिद्धाई तब जान पड़े जब बिचारे रिंबूची की औरत की जान बच जाय।"

"रात में कैसी रही उसकी तबीयत ?"

"रात में तो फिर और कोई दौरा आया नहीं। इस समय तो उसकी आँख लग रही है। देखो भगवान् की इच्छा।"

चरवाहा टोकरा उठाकर बोला—"घर जाकर कुछ खाऊँगा-पिऊँगा। उसके बाद फौरन ही एक टोकरा डाल जाऊँगा।"

कलजन ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छी बात है।"

"तुम्हारा दोस्त यह ज्योतिषी बड़ी शक्की आदतों का है। आज दिन-भर के टोकरों को अच्छी तरह तुम गिनते रहना। मेरे कहे की कोई परतीत न होगी उसको। एक-आध टोकरी भी भूली जाएगी, तो

यह गरीब मर जायगा।"—चरवाहा चला गया।

कलजन ने दरवाजा बन्द कर लिया और फिर मंत्र-पाठ में लग गया। अब खूब अच्छी तरह उजाला हो गया था और आस-पास के ऊँचे पर्वतों पर सूर्य की प्राभातिक सुनहरी किरणें जगमगा उठी थीं।

आँख मलते-मलते रिबूची आ पहुँचा। भट्टी के पास कुछ देर बैठकर उसने आग सेंकी और तम्बाकू पिया। कलजन तम्बाकू पीता-खाता कुछ नहीं था, वह सिर्फ सूँघता था।

कलजन ने पूछा—"कैसी हालत है इस समय ?"

"वैसी ही आँख बन्द कर घुर्र-घुर्र कर रही है। नींद तो कहा नहीं जा सकता उसे।"

"आवाज खुली या नहीं ?"

"ऊँ-हुँक !"

भट्टी के कण्डों को ठीक करता हुआ कलजन बोला—"यही एक बहुत बुरा लक्षण जान पड़ता है। हाथ-पैर या मुख की गड़त में तो कोई टेढ़ापन नहीं है ?"

"नहीं, और तो सब ठीक है।"

"देखो फिर भगवान की क्या इच्छा है।"

"दवा नहीं फुँकी होगी ? कण्डे तो सब फूंक दिए तुमने।"

"अभी एक बोझ और फेंक गया है वह। दूसरा लेने गया है।"

"मेरी समझ में तो फुँक गई होगी दवा।"

"जल्दी क्यों मचाते हो, कच्ची दवा देने से तो दवा न देना ही अच्छा है। आज रात-भर और जलने दो भट्टी को।"

"उसके बहुत दाम हो जायेंगे और वह बड़ी बुरी तरह से तकाजा करता है।"

"इतने मोती और मूंगे फूंक रहे हैं हम। तुम्हें गोबर के फुंक जाने की इतनी फिकर हो गई। अच्छा आदमी है वह चरवाहा, उसके दामों की कोई बात नहीं है। सिर्फ ठीक-ठीक गिनती याद रखना उसके आज

के बोझों की।"

"तुम जानो भाई।"—कहकर रिबूची बाहर जंगल की तरफ शौच के लिए चला गया।

शौच से लौटकर रिबूची भट्टी में से आँच ले जाते हुए बोला—"कलजन, इस समय तो थोड़ा-सा सत्तू लोगे न चाय के साथ ?"

कलजन कुछ सोचने लगा।

रिबूची बोला—"सत्तू और चाय में क्या हानि है ? मांस चाहो तो न लेना, भाई, बिना खाए-पिए भी तो मन खाने ही में लग जायगा, मन्त्र में कहाँ से टिका रहेगा ?"

कलजन ने हल्की मुसकान से अपनी सम्मति जता दी। रिबूची ने भीतर जाकर एक बार बीमार की ओर देखा और फिर चूल्हा जला चाय बनाने लगा।

चरवाहे ने घर जाते ही टोकरा भूमि पर रख अपने सिरहाने हाथ मारा लेकिन उसके होश उड़ गए जब उसके हाथों में कुछ भी नहीं लगा। उसने थुल्मे की एक तह उठाई, दूसरी—नहीं, कहीं कुछ नहीं। सिरहाने से पैताने तक उसने दो-तीन बार हाथ मारे, लेकिन वही घोर शून्यता ! उसने सारा बिस्तर उधेड़ डाला, उसका एक-एक ताना-बाना छान डाला, लेकिन नहीं—कहीं कुछ नहीं !

उसकी स्त्री भी वहीं पर आ गई थी चाय बनाना छोड़कर और बड़ी चिन्ता में भरकर खुद भी ढूँढने लगी थी।

"तुम कहती हो तुमने हाथ भी नहीं लगाया, तो फिर कहाँ गई वह पोटली ?"

"भगवान् जानता है जो मैंने उसे छुआ भी हो।"

"इतनी बड़ी सम्पति तुम्हारे घर के भीतर ! मैं कहता हूँ तुम ऐसी मोह-माया से दूर संन्यासिनी हो क्या कि तुम्हें अब तक उसकी याद ही नहीं आई ?"

"तुम्हें ही क्यों न आई सुबह से ?"

"क्यों नहीं आई ? रात-भर मैंने उसी के सपने देखे और सुबह उठकर जब मैं गया था तो उसे टटोलकर ही गया था। उजाला हो गया होता तो मैं उनको खोल सूर्य की रोशनी में उनके दर्शन कर ही जाता।"

"तुम्हें सँभालकर जाना था।"—उसकी औरत ने सारे बिस्तर को टटोलकर बड़ी निराशा के स्वर में कहा।

"सँभालता और कहाँ ? ताला और सन्दूक थोड़े हैं मेरे पास ? तकिए के ऊपर सिर रखे हुए तो पड़ी थी तू। मैंने समझा था अभी दौड़कर तेरे उठने तक मैं आ ही जाऊँगा। मुझे उस हाँडी को लौटाने की फिकर थी सबसे बड़ी, तुझे क्या था ?"

"मुझे भी वही फिकर थी, मैं समझी थी कहीं पकड़े जाओगे तो क्या हागा ? अगर किसी बड़े आदमी के घर में डाका डालकर लाए होगे तो दोनों की गर्दनों में रस्से बाँधकर ल्हासा की तमाम सड़कों पर घसीट दिया जायगा।"—उसकी औरत रोते-रोते बोली।

"तू बड़े चरित्तर जानती है, जरूर तूने कहीं छिपा दिया है उस पोटली को, इस डर से कि कहीं कोई हमारे घर की तलाशी लेने न आता हो।"

"नहीं, भगवान की सौगन्ध है।"

"फिर कहाँ गई मेरी पोटली ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

चरवाहे ने पागलों की तरह सारा कमरा छान डाला। कहीं कुछ पता नहीं चला। वह हारकर भूमि पर बैठ गया। उसकी पत्नी भी पास ही बैठी रो रही थी। वह क्या करे कुछ समझ में नहीं आई बात।

उसने स्त्री से पूछा—"कोई आया था यहाँ ?"

स्त्री ने जवाब दिया—"नहीं, कोई नहीं।"

"ऐसा हो नहीं सकता, जरूर कोई आया होगा।"

"हाड़-चाम का शरीरधारी तो कोई नहीं आया। हवा के रूप में

कोई भूत-प्रेत आया हो तो मैं नहीं कह सकती। वह ले जानेवाला अगर कोई भूत-प्रेत नहीं था तो वे मूँगे-मोती सचमुच में जादू के बने होंगे, जो हमें चोर बनाकर मिट्टी में बिला गए।"

"अरी, वे मूँगे-मोती मिट्टी में मिल गए तो वह कपड़े का टुकड़ा भी क्या जादू का था, वह कहाँ समा गया ?"—चरवाहे ने पूछा। वह उठकर फिर एक बार नए सिरे से ढूंढ मचाने लगा।

औरत की भी कुछ समझ लौटी, बोली—"हाँ, वह कपड़े का टुकड़ा तो दिखाई देता।"

इस बार चरवाहे का विचार स्त्री से मिल गया। वह फिर उन जवाहरों की याद कर रोने लगी। चरवाहे को विश्वास हो गया किसी दैवी कारण से ही मूँगे-मोती अदृश्य हो गए हैं। ज्योतिषी और हकीम की मूर्तियों में उसे भूत-साधकों की परछाईं दिखाई देने लगी।

स्त्री बोली—"मैंने तभी तुमसे कहा था, जहाँ से लाए हो, वहीं फेंक आओ उन्हें। तुमने नहीं माना, अब क्या करूँ मैं ? मुझे बड़ा भय लग रहा है।"

स्त्री के गले में किसी देवता का एक ताँबे का खऊँ था। उसने उसे निकालकर हाथ में लिया। उसको माथे से लगाया, फिर उसने एक जगह पर जमीन को धोया और वहाँ उस खऊँ को रखकर उस पर पानी चढ़ाया, फिर एक जलते हुए कण्डे पर कुछ मक्खन डालकर देवता को धूप सुंघाई, फिर हाथ जोड़ घुटने टेक उसने माथा नवाकर कहा—"हे देवता, मेरे मालिक की रक्षा करना, मैं तुम्हें बहुत बड़ी पूजा दूंगी।"

चरवाहे के जो भी संशय थे, वे सब उड़ गए। उसने अपनी स्त्री से कहा—"मैं कहता हूँ जो जादू मूँगें-मोती को उड़ा सकता है, उसका उस कपड़े के चीथड़े को गायब कर देना क्या मुश्किल बात है ?"

उसकी स्त्री की पूजा अभी खतम नहीं हुई थी। पति का यह वाक्य सुनकर उसने अपनी प्रार्थना को नहीं तोड़ा, और भी जोर-जोर से बोली—"अगर कहीं हमारे मूँगे-मोती सब-के-सब मिल गए तो मैं आधे

तुम्हारी पूजा में निछावर कर दूंगी।" उसने पूजा समाप्त की और खऊँ को गले में डालते हुए पति की तरफ देखकर पूछने लगी—"क्यों ?"

"हाँ, जरूर तुम ठीक ही कह रही हो।"

"और तुम भी तो, जो मूंगे-मोती जैसी कीमती चीजें गायब कर सकता है, उसके लिए एक चीथड़े को मिटा देना कौन बड़ी बात है ?"

"तब क्या करें फिर ?"

"होने ही से तो चीज जाती है। मैं पूछती हूँ तुम उन्हें लाए कहाँ से थे ?"

"यह पीछे बता दूंगा। पहले तुम चाय बनाकर लाओ। मुझे ज्योतिषी जी के यहाँ कण्डे लेकर जाना है।"

"ज्योतिषी जी क्या करेंगे इतने कण्डों का ? लेकिन अब कण्डे है कहाँ ?"

"दूसरे गोठ में।"

"वे तो कभी के खतम हो गए।"

"तब क्या होगा ? मैंने उनसे वादा किया है।"

"एक टोकरा झाड़-पोंछकर हो जायगा। सुनो जब तुम ज्योतिषी जी के यहाँ जा ही रहे हो तो क्यों न उन्हीं से पता लगवाओ इस भयानक भेद का ?"

चाय पी एक टोकरा कण्डों का किसी तरह पूरा कर बड़े ढीले पगों से चरवाहा फिर चला कलजन के पास को।

रिंबूची ने चाय बनाई। पहले बीमार के पास ले गया। उसने बीमार को जगाकर चाय पिलानी चाही। बीमार कुछ नहीं बोली, केवल सिर हिलाकर उसने असम्मति प्रकट की और फिर आँखें बन्द कर लीं।

रिंबूची चाय लेकर कलजन के पास पहुँचा। दोनों ने साथ-साथ चम्बा के साथ चाय पी।

कलजन ने बीमार की कुशल पूछी, रिंबूची बोला—"चाय पीने को मना कर रही है।"

"आवाज खुली ?"

"नहीं, इशारे से ही बताया। एक बार तुम देख लेते तो ठीक था।"

चाय पीकर कलजन बीमार के पास गया। उसने बीमार की परीक्षा कर पूछा—"कैसी है तबीयत ?"

बीमार ने इस बार कुछ टूटे-फूटे शब्दों में जो कहा, कलजन और रिंबूची दोनों ने इसका अर्थ लगाया—"तबीयत ठीक नहीं है।"

कलजन ने पूछा—"कहीं दर्द है क्या ?"

बीमार ने छाती पर हाथ रखा।

कलजन बोला—"दवा बना रहे हैं। उसके खाते ही जरूर फायदा होगा।"

इस पर बीमार ने बहुत-कुछ साफ शब्दों में कहा—"नहीं बनी दवा ?"

रिंबूची और कलजन के हर्ष का ठिकाना न रहा। बीमार की तोतली वाणी में शब्दों को लौटा पाकर दोनों की आशा बढ़ गई।

कलजन ने जवाब दिया—"बन गई।"

"फिर देते क्यों नहीं ?"—इस बार और भी साफ-साफ उसने कहा।

कलजन बोला—"थोड़ी-सी देर और है, कल सुबह से देंगे।"

"कल सुबह ?" बीमार के चेहरे पर बड़ी निराशा दौड़ गई। उसने ठंडी साँस लेकर फिर कहा—"कल सुबह ?"

रिंबूची ने कलजन से पूछा—"क्यों, हाँडी निकालकर दे क्यों नहीं देते ?"

"कैसे दे दूँ ?"

"देख तो लो, शायद तैयार हो गई हो।"

"तैयार होने पर भी तो दोनों को पहले अलग-अलग घोटा जायगा, फिर और भी तो कुछ मिलाया जायेगा। गुरु ने जो विधि सिखा रखी है उससे हटकर थोड़े ही कुछ किया जायगा ? कर देंगे तो फिर फायदे और नुकसान का जिम्मेवार कौन रहेगा ?"—कलजन ने बीमार की

ओर देखा। उसने उसके मुख पर जो दयनीयता देखी उससे वह विह्वल हो गया, उसकी आँखें भर आईं।

रिंबूची बोला—"कलजन, सोच लो, आज अगर कुछ न कर सके तो शायद फिर कभी कुछ न हो सकेगा।"

अचानक कलजन की आँखों में एक प्रकाश भर आया। उसने बीमार के माथे पर हाथ रखकर कहा—"आज ही देंगे दवा तुम्हें।"

बीमार ने तुरन्त ही पूछा—"आज ही कब ?"

"शाम को।"

बीमार को कुछ आश्वासन-सा प्राप्त हुआ—ऐसा जान पड़ा रिंबूची और कलजन दोनों को।

कलजन ने उससे कहा—"कुछ दूध पी लो। तुम्हारे बहुत कमजोरी बढ़ गई है।"

"नहीं," बीमार ने सिर हिलाया।

"वह दवा बड़ी तेज है। उसकी गरमी को सहन करने के लिए पेट में कुछ जाना ही चाहिए।"

बीमार ने सिर हिलाकर अपनी उदासीनता प्रकट की। रिंबूची एक प्याले में कुछ दूध ले आया। बीमार ने पी लिया।

"थोड़ी-थोड़ी देर में इतना-ही-इतना दूध तुम्हें शाम तक पी लेना होगा, तभी शाम को दवा दी जायगी।"—कलजन ने कहा।

"जैसा कहो।"—बीमार ने धीरे-धीरे कहा और उसकी आँख लग गई।

रिंबूची ने कलजन की तरफ देखा।

कलजन ने उसके अव्यक्त शब्दों को सहज ही समझ लिया और उत्तर में कहा—"अगर दवा की पहली पुड़िया असर कर गई, तो हम बीमार को बचा लेंगे।"

"नहीं तो ?" रिंबूची ने अधीर होकर पूछा।

"नहीं तो क्या ? यह संसार क्षणभंगुर है ! इसमें कहीं पर भी

स्थिरता को ढूंढना मनुष्य की मूर्खता है। मुझे देखो। मेरे हृदय में पत्नी के वियोग की पीड़ा अभी बिलकुल हरी है। मैंने उस पंच भूतों के निर्माण को अपने हाथ से टुकड़े-टुकड़े कर फिर पंच भूतों को ही सौंप दिया। ऐसे ही तो हमारी अहंकार निर्वाचित होता है।"

रिंबूची ने लड़खड़ाते हुए कलजन का कन्धा पकड़ लिया—"क्या होगा फिर ?"

"कुछ नहीं होता, केवल जानेवाला जाता है और सृष्टि उसी तरह चलती रहती है।"

"नहीं, फिर कैसे मन लगेगा संसार में ? मैं भी चल दूंगा।"

"बिना आज्ञा के कोई नहीं जा सकता। संसार में मन नहीं लगेगा तो चल देना किसी मठ में—तिब्बत में क्या मठों की कमी है ?" कलजन जाते हुए बोला—"अच्छा, मैं देखता हूँ दवा को। भगवान् से प्रार्थना करता हूँ किसी प्रकार दवा में असर पैदा कर दे।"

रिंबूची भी उसके साथ-साथ चला। दोनों जब आँगन में आए तो चरवाहा बाहर दरवाजा खटखटा रहा था।

कलजन ने द्वार खोला। कण्डों का टोकरा सिर पर लिए चरवाहे ने आँगन में प्रवेश करते हुए कहा—"गुरुजी, कण्डे तो बस खतम हो गए क्या करूँ बड़ी लाचारी है।" उसने टोकरा जमीन पर पटक दिया !

"कोई चिन्ता नहीं, भगवान् की दया हो गई होगी तो हमारी दवा बन चुकी होगी। कण्डों की कोई ज़रूरत नहीं है।"—कलजन ने कहा।

"तो इन्हें उठा ले जाऊँ ?"—चरवाहे ने पूछा।

रिंबूची बोला—"जो ला गए सो ला गए। इन्हें हम घर के काम में ले लेंगे।"

चरवाहे ने रिंबूची की ओर देखा और बड़ी दीनता से हाथ जोड़ते हुए कहा—"मेरे ऊपर दया कीजिए।"

रिंबूची ने कहा—"एक कौड़ी नहीं मारी जायेगी तुम्हारी ! हाँ हिसाब चुकाने में जरूर कुछ देर होगी ही।"

"हिसाब के लिए नहीं कह रहा हूँ।"

"फिर ?"

"मेरे घर से एक चीज गायब हो गई। जरा अपनी ज्योतिष विद्या से उसका पता लगा दीजिए उसे कौन ले गया ? वह मुझे मिलेगी या नहीं, मिलेगी तो कितने दिन में ?"

रिंबूची बोला—"देखो, मेरी स्त्री बहुत बीमार है। इस कारण मेरे मन में जरा भी चैन नहीं है। ये बातें सब मन की शान्ति से होती हैं। उसके आराम का सिलसिला लग जाय तब आना।"

चरवाहा चल गया। कलजन ने एक लकड़ी की मदद से भट्टी में पड़ी हाँडी को टटोलना शुरू किया। रिंबूची पास खड़ा हुआ देख रहा था।

कलजन बोला—"दवा घोटने के लिए है कुछ ?"

रिंबूची कहीं पड़ौस में से एक पत्थर का खरल माँग लाया। उसके आने तक कलजन ने हाँडी को भट्टी के बाहर निकाल लिया था। उसके बाहर की कपड़-मिट्टी पककर लाल हो गई थी। कुछ देर तक हाँडी में से लपटें निकलती रहीं। कलजन ने उसे अपने आसन के सामने ठण्डा होने के लिए रख दिया।

रिंबूची बोला—"अब आँगन में क्या काम है, तुम भी भीतर ही चलो। वहीं साथ-साथ बैठे रहेंगे। बीमार को भी कुछ भरोसा प्राप्त होगा।"

कलजन ने कहा—"तुम जाओ, मैं अभी आता हूँ, जरा यह हाँडी ठंडी हो जाय।"

रिंबूची के जाने पर कलजन की अधीरता बढ़ी। उसने लकड़ी की मदद से धीरे-धीरे उस हाँडी को फुटबॉल-सा सारे आँगन में घुमाना शुरू किया। कुछ देर में उसके बाहर की मिट्टी और कपड़े का बहुत-सा अंश टूट-टूटकर अलग हो गया। हाँडियाँ भी शीतल हो गईं।

बड़े यत्न से उसने अपने आसन पर ले जाकर दोनों हाँडियों को खोला। खोलने पर जो देखा उसे देखकर कुछ देर के लिए तो वह स्तंभित

सा रह गया। इतनी महीन भस्म तो पहले कभी नहीं हुई थी मूंगे और मोती की। उसने उन भस्मों को उँगलियों में लेकर मसला। वह मन-ही-मन कहने लगा—"बहुत महीन, इन्हें खरल करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। क्या इनमें गरमी काफी पहुँच गई, इस कारण ऐसा हो गया ?"

जिस दुष्टात्मा के हाथ पर उसका उत्तरदायित्व था, वहाँ तक कलजन की कल्पना पहुँच ही नहीं सकी। उसने एक कण मूंगे के भस्म का अपनी जीभ पर रखा, फिर मोती के भस्म का और अन्त में उसने कण्डे की भस्म को चखा। वह उन तीनों के बीच में कोई अन्तर स्थापित नहीं कर सका।

हठात् उसके मुंह से निकल पड़ा—"मोती, राजा की हड्डी और चँवर गाय के गोबर की भस्म इन तीनों में कोई अन्तर नहीं है!" और फिर उसके मन की आँखों में दिखाई देने लगा उस अद्‌भुत वाक्य का कहनेवाला वह चरवाहा था या रिंबूची की स्त्री ?

कलजन ने बेचैनी से इधर-उधर देखा—"जब सभी भस्म एक है तो फिर क्यों मैंने मोती-मूंगे के भस्म को विशेषता दी ? चूल्हे की राख की ही पुड़िएँ में बाँधकर क्यों नहीं बीमार को खिला दीं ?"

कलजन ने देखा बड़े प्रचण्ड वेग से भ्रम उसकी आत्मा को दबोचने लगा था। उसने चारों दिशाओं में थूक दिया—"थू! थू! थू! थू!" इसके बाद उसने मानी हाथ में लेकर घुमानी शुरू कर दी।

रिंबूची ने घर के भीतर से आवाज दी—"कलजन, आ जाओ भीतर ही।"

कलजन ने सहमकर मानी की चाल रोक दी—"अभी आता हूँ।"

"वहाँ क्या कर रहे हो ? वह यहीं कर सकते हो। भट्टी में मट्टी डाल दो।"

"बड़ी दुष्ट। पाप की एक आत्मा यहाँ चली आई है उसे भगा रहा हूँ।"—कलजन ने सँभलकर कहा।

"दवा फिर भट्टी में डाल दी क्या ?"

"नहीं तो।"

"तब उस पापात्मा को डाल दो भट्टी में। ऊपर से मिट्टी, भाई। अब वहाँ खाली समय बरबाद गत करो। यहीं आ जाओ।"

"अभी आता हूँ। बीमार की तबीयत कैसी है ?"

"ठीक है। सो रही है।"

कलजन ने भट्टी की निकली हुई मिट्टी भट्टी में डालनी शुरू की दोनों हाथों से। वह मन-ही-मन मन्त्र जपता हुआ उस पापात्मा को आग की भट्टी में गाड़ने लगा। हाथ-पैरों के हिलाने-डुलाने और मन्त्रों के उच्चारण से थोड़ी ही देर में उसके मन की वह विचारधारा बदल गई। उसने दोनों हाँडियों को दो दियों से ढक दिया। वे दोनों धीरे-धीरे ठंडी हो गई थीं।

कलजन ने कम्बल झाड़कर कन्धे पर डाल लिया, छुपा के भीतर डाल ली मानी। दोनों हाँडियों और खाल को सावधानी से दोनों हाथों में लेकर मकान के भीतर चला गया।

रिंबूची बोला—"तुमने हाँडियाँ खोलकर देख लीं, दवा ठीक-ठीक फुंक गई ?"

कलजन ने जवाब दिया—"बिलकुल ठीक, ऐसी आशा नहीं थी।"

रिंबूची ने पूछा—"कब तैयार हो जायगी ? जल्दी ही दी जाती तो ठीक था।"

"अभी दोनों को घोटकर दोनों का योग करता हूँ। तुम तब तक कुछ दूध पिलाओ इसे।"

"अभी पूछा था मैंने। दूध पीने को राजी नहीं है।"

"चाय के लिए पूछो।"—कलजन मन्त्र जपता हुआ मूंगे की भस्म को खरल में घोटने लगा।

रिंबूची ने बीमार को उठाया—"उठो।"

बीमार ने आँखें खोलीं। बड़ी विरक्ति दिखाकर फिर बन्द कर

किसी समय उस पोटली को उठा ले गई रात में।"

चरवाहे को कुछ विश्वास हुआ—उसने उसकी चोटी छोड़ दी—"तुम ठीक कहती हो। मैं जाता हूँ उसके पास।"

"लेकिन तेजी से काम न लेना। चुप्पी से अगर थोड़ा-बहुत हिस्सा भी करना पड़े तो घबराना नहीं।"

चरवाहा उसी वक्त चमार के घर पहुँचा। चमार उस समय शराब पी रहा था। चरवाहे को देखते ही बोला—"लो तुम भी पियो।"

"नहीं, इस समय नहीं पिऊँगा। मैं एक जरूरी काम से आया हूँ तुम्हारे पास। मेरी एक पोटली खो गई है, तुम्हारी बिल्ली अपने मुँह में दबाकर ले आई है। मुझे दे दो। मेरी नहीं है वह। तुम्हें कुछ इनाम दे दूंगा मैं।"

"मेरी बिल्ली को क्या तुमने कोई उठाईगीर समझ रखा है, वह ऐसे काम नहीं करती। दूध-मक्खन भले ही चाट जाय वह तुम्हारा, पोटली कभी नहीं उठा सकती। था क्या उस पोटली में ?"

धीरे-धीरे चरवाहा बोला—"उसमें थे मूंगे और मोती सच्चे, असली !"

चमार हँसते हुए कहने लगा—"तुम मजाक कर रहे हो, भला लाए कहाँ से ?"

"किसी ने सुनार को देने को मुझे दे रखे थे ?"

"गारपन की स्त्री ने ? तुम्हारे-जैसा होशियार आदमी दूसरा नहीं मिला क्या उसे ?"

"देखो ज्यादा चतुराई न खेलो। पोटली निकालो मैं बहुत अच्छा हिस्सा उसमें से तुम्हें दे दूंगा।"

"लेकिन गारपन की स्त्री की गिनती कैसे पूरी होगी ?"

चरवाहे ने चिढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया—"निकाल पोटली !"

"चोर ! चोर !"—चमार ने शोर करना शुरू किया।

चरवाहा चुपचाप उसके घर से बाहर निकलते हुए बोला—"अच्छा

मैं अभी उस पोटली के असली मालिक को बुला लाता हूँ।"—वह उसी समय सीधा रिंबूची के घर को दौड़ा।

फिर रिंबूची की स्त्री की तबीयत बराबर गिरती ही गई। कलजन को दवा घोटते हुए दस मिनट भी नहीं बीते होंगे कि बीमार को फिर वही दौरा शुरू हो गया। उसके हाथ-पैर और गर्दन ऐंठने लगे।

कलजन ने जल्दी-जल्दी दवा तैयार कर एक खुराक दी, कोई फायदा नहीं हुआ। उसकी हालत बहुत खराब देखकर रिंबूची बोला—"कलजन, और दो दवा।"

"अभी तो दी है।"

"यह चल बसती है। एक खुराक और दे दो खूब बड़ी, दवा न दे सकने का दुख तो न रहेगा।"

कलजन ने दवा दी और थोड़ी देर बाद उसके प्राण-पखेरू अनजान दिशा की तरफ उड़ गए!

रिंबूची चिल्ला उठा—"कलजन, तुम तो कहते थे, दवा अक्सीर है।"

"कोई दवा अक्सीर नहीं है, रिंबूची, दाना-पानी हो तो राख ही अक्सीर है।"

रिंबूची गाल पर हाथ रखकर बैठ गया, बोला—"कलजन भाई अब क्या हो?"

कलजन ने जवाब दिया—'सबसे जरूरी काम तो इस समय इस मिट्टी का अन्तिम-संस्कार है। बाकी फिर जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, वह अपनी पूर्ति स्वयं ही कराता जायगा।"

इसी समय नीचे आँगन में चरवाहे ने दरवाजा खटखटाया।

कलजन ने जाकर द्वार खोले। चरवाहे ने उसके पैर पकड़कर कहा—"मालिक, मेरा कसूर माफ कर दो।"

"क्या बात है? क्या कण्डों के दाम माँगने आए हो?

"पहले कह दो, तुझे माफ कर दिया।"

"माफ कर दिया, भाई। कलजन के पास जो कुछ था सब बिसर

गया, उसके क्रोध का कहीं ठिकाना ही नहीं रहा। सब माफ ही माफ है, फिर तुम्हें क्यों न माफ कर दूंगा। लेकिन कहो भी तो बात क्या हो गई ?"

"तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें उस बेईमान के घर का पता देता हूँ। मैं उसका हाथ तुम्हारे हाथ में पकड़ा देता हूँ, असली चोर वही है, चलो।"

"मैं कहीं नहीं जाता। रिबूची की स्त्री ने प्राण त्याग दिए हैं। उसकी मिट्टी घर में पड़ी है जब तक उसका इन्तजाम नहीं होता तब तक मुझे अपने मित्र का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।"

कलजन को चरवाहे के साथ बहस में पड़ा देखकर रिबूची भी वहीं पर आ गया। चरवाहा बोला—"फिर वह सब मूंगे-मोतियों को किसी जूते के भीतर सीकर गायब कर देगा।"

रिबूची ने पूछा—"कैसे मूंगे-मोती ?"

कलजन चौंक पड़ा। चरवाहा बोला—"तुम्हारी हांडी में थे जो।"

कलजन बोला—"कैसे निकाल ले गया ?"

चरवाहा कलजन का हाथ खींचकर बोला—"उसी के पास तो चलने को कह रहा हूँ।"

'वह कब ले गया ?"—कलजन ने पूछा।

"यहाँ से तो मैं ले गया।"—चरवाहे ने जवाब दिया।

कलजन ने रिबूची की तरफ देखकर कहा—"रिबूची, इसीलिए मैं कहता था दवा ने अपना असर क्यों नहीं दिखाया ? लेकिन जाने दो, भगवान् की इच्छा सबसे बड़ी है।" उसने चरवाहे को बाहर करते हुए कहा—"जाओ भाई, हमने उसे भी माफ कर दिया। तुम भी माफ कर दो जाओ। संसार में मूंगे-मोती से कीमती जो चीज है उसी का नाम माफी है।"

चरवाहा बड़बड़ाता हुआ चला गया।

१२

५ ज

उस गाड़ी में भैरव मुगलसराय तक चला आया। वहाँ एक टिकट चेकर ने उसे गाड़ी से उतार दिया। उसके जाने की कोई निश्चित दिशा तो थी नहीं, वह उतर गया। मुसाफिरखाने की एक बेंच में जाकर सो गया। कोट में उसकी तमाम पूंजी सुरक्षित थी जिसे उसने सिरहाने रख लिया। रात को न जाने पड़े-पड़े ही उसे किसी ने क्या सुंघा दिया कि वह बेहोश हो गया और कोई बदमाश उसके सिरहाने से उसका कोट निकाल कर भाग गया।

सुबह पुलिसवाले ने भैरव को बिना किसी सामान के एक अजीब स्थिति में देखकर जगाया—"उठो, कौन है सोनेवाला ?"

"सोता हूँ तो क्या, थका-मांदा हूँ इसीलिए। सोने-बैठने ही को तो···"—भैरव टूटे-फूटे शब्दों में इतना कह सका था।

पुलिसवाला झिड़क कर बोला—"नशा पीकर सोए हो क्या ?"

"नहीं तो।"

"जरूर शकल से ऐसा ही जाहिर होता है। कहाँ जाओगे ?"

"कहाँ जाऊँगा ?" भैरव मानो अपनी ही सत्ता से पूछने लगा।

"क्यों बोलते क्यों नहीं कहाँ जाओगे।"—पुलिसवाले ने फिर प्रश्न किया।

"क्या बताऊँ कहाँ जाऊँगा ? कहीं नहीं जाऊँगा।"

"घर कहाँ है तुम्हारा ?"—पुलिसवाले ने कुछ संशय की दृष्टि से भैरव को देखकर कहा।

"कहीं नहीं है।"

"सामान कहाँ है ?"

सामान के नाम पर भैरव को कुछ याद आई। उसने बैंच की ओर देखा—उसका कोट गायब था। वह चिल्लाया— 'मेरा कोट कहाँ गया ?'

"कहाँ रखा था कोट ?"

भैरव ने बम्बई की चोरी का सामान भी कोट के ही साथ जोड़ दिया। सिर्फ बासो का अस्तित्व हटा दिया उसने। वह बोला—"कोट था, कोट में मेरे नकद रुपए थे। ट्रंक था, बिस्तर था।"

"नशा कर सो गए तो फिर कौन जिम्मेवार होता तुम्हारे माल का ?"—पुलिसवाला बोला।

"नशा नहीं किया।"

"जरूर किया है। तुम्हारी शकल कह रही है। अभी तक तुम्हार नशा उतरा नहीं है। तुम्हारे बात करने का ढंग साबित कर रहा है।"

"मैं सच कह रहा हूँ, मैं एक भले घर का आदमी हूँ।"

"बुरी संगत में पड़ गए होगे। परदेस में इतना बेखबर होकर कौन सो जाता है ?"

भैरव ने कहा—"कुछ नशा-सा जरूर मालूम देता है, लेकिन मैं कोई नशा करता नहीं।"

भैरव की शक्ल-सूरत और भाव-वेश को देखकर पुलिसमैन को कुछ परतीत तो हुई। अचानक उसे कुछ याद आई। उसने पूछा—"किसी आदमी ने तुम्हें कुछ खिलाया तो नहीं ?"

"नहीं।"

"तुम चोर का कोई हुलिया बताओ तो हम कुछ करें भी। ऐसे ही हम किसे पकड़ लें ?"

"कत्थई रंग का कोट है मेरा, हल्के हरे रंग का कैनवस का होल्ड ऑल और काला ट्रंक।"—भैरव बोला।

सिपाही कहने लगा—"चलो, चौकी में लिखा दो। ऐसे जबानी कुछ न होगा।"

भैरव ने मन में सोचा—"चोर को पकड़वाने में कहीं खुद न फँस जाऊँ।" वह बहाना बनाकर खिसक गया। लेकिन अब बड़े संकट में पड़ गया। दस-बीस रुपए जो पल्ले में थे, वे भी गए !

क्या करे ? किधर जाय ? अब तो भोजन के भी उसे लाले पड़ गए मुसाफिरखाने के बाहर निकल आया वह। बड़ी जोर की उसे भूख लगने लगी। वह सड़क पर एक जगह विचार करने लगा—"तो क्या अब पराजय स्वीकार कर ली जाय ? पिताजी को एक तार भेजकर रुपए मँगा लूँ। वह फौरन ही भेज देंगे, लेकिन···?"

फिर बासो उसके सामने प्रकट हो गई और उसका सारा विचार-क्रम जहाँ-का-तहाँ रह गया, दूसरी धारा चली—"नहीं, पराजित होकर जीना भी कोई जीना है ? धन की शक्ति का विरोध करना है मुझे। इसके लिए यह अत्यंत स्वाभाविक था मेरे लिए कि कोई पाई मेरे पल्ले में न रहती। यह ठीक ही हुआ है। मैं मेहनत-मजदूरी कर अपनी जीविका के लिए पैदा कर लूंगा।"

एक कमीज, एक पतलून और एक जूता उसके पास रह गया था, कपड़े भी मैले हो गए थे। सड़क पर कुछ मजदूर खोद-खाद कर उसमें नए रोड़े बिछा रहे थे। उसकी इच्छा हुई वहाँ जाकर कुछ काम करे लेकिन उसे भूख लगी हुई थी। भूखे पेट कैसे शारीरिक श्रम होता ?

वह कुलियों के वर्कमुन्शी के पास जाकर बोला—"मैं भी काम करना चाहता हूँ। मुझे भी कुछ काम दे दीजिए।"

"कौन हो तुम ?"

भैरव ने कुछ घटा-बढ़ाकर अपनी रामकहानी उसे सुनाई। वर्क-मुंशी को दया आ गई। उसने उसे पढ़ा-लिखा जान कहा—"तुमसे सड़क नहीं खुद सकती।"

"मैं खोद लूंगा।"

"कभी ऐसा कठोर श्रम तुमने नहीं किया है।"

"आवश्यकता सब कुछ करा देती है।"

"हर एक काम को सीखना पड़ता है।"

"कुछ कम मजदूरी दे देना मुझे।"

"और कहीं हाथ-पैरों में कुदाल मार ली तो जिन्दगी ही बेकार हो जायेगी।"

"उसका जिम्मेवार मैं ही रहूँगा।"

"युवक, मुझे तुम्हारी अवस्था पर दया आती है। तुम क्यों इतनी बहुमूल्य जवानी के साथ मजाक कर रहे हो? तुम्हें मेरी अकल मान लेनी चाहिए। जाओ अपने घर लौट जाओ पिता से झगड़ा करना ठीक नहीं है। उनसे माफी माँग लेने से तुम्हारी कीमत बहुत बढ़ जायेगी।"

"यह तुम्हारी शिक्षा ठीक ही है। लेकिन उनके पास जाने को रेल का भाड़ा चाहिए ही। मैं माँगना नहीं चाहता किसी से।"

"उधार तो लिया जा सकता है।"

"उधार कौन दे देगा इस परदेश में?"

"मैं तुम्हें एक रुपया देता हूँ। तुम घर पिताजी को तार देकर तार में ही रुपए मँगा लो।"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"नहीं, मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है। मुझे तुम रुपया दोगे तो मैं जरूर उसे अपने खाने में खर्च कर दूंगा।"

"मैं तुम्हें दो रुपए उधार दे सकता हूँ।"

"नहीं, मैं नहीं लूंगा।"

"क्यों नहीं लोगे?"

"मैं घर को तार नहीं भेजूंगा।"

"क्यों नहीं भेजते? अभी तो तुमने मुझसे कहा था, तुम्हारे पिता धनवान हैं और तुम उनके इकलौते बेटे हो।"

"अच्छा लाओ दो रुपए दो।"

बर्कमुंशी ने भैरव को दो रुपए निकालकर दे दिए। रुपए लेकर

वह बोला—"किसी को मेरे साथ भेज दो।"

"नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं है। मुझे तुम्हारा विश्वास है युवक ! तुम्हें क्यों नहीं है अपना विश्वास ? बिना आत्मविश्वास के मनुष्य का कुछ भी मूल्य नहीं।"

"अच्छी बात है।" दो रुपए के उन दोनों नोटों को भैरव हाथ में लेकर बोला—"बहुत बुरी चीज है यह रुपया। इसके विरुद्ध मैं अपनी लड़ाई शुरू करना चाहता हूँ लेकिन बार-बार मुझे इसी से सन्धि कर लेनी पड़ रही है।"

"अधिक समय बेकार बिता देने से कोई लाभ नहीं है, युवक !" वर्कमुंशी ने कहा।

"तार किस पते से मँगाऊँ ? आप अपना पता तो बताइए।"—कहता हुआ भैरव अपना जूता खेलने लगा।

"मेरे पते की क्या जरूरत है ? स्टेशन मास्टर के मार्फत मँगा लो।"

"कल तक या परसों तक जवाब आयेगा। आप कहाँ मिलेंगे ?"

"यहीं न मिलूं तो कुलियों से पूछ लेना।"

भैरव ने अपना जूता वहाँ पर खोलकर रख दिया—"यह जूता यहीं पर रख जाता हूँ।"

"किसलिए ?"

"पैर में दर्द हो रहा है। अभी आकर ले जाऊँगा।"

"कोई उठा ले जायगा ?"

"कौन ले जायगा ? आपके कुली यहाँ मौजूद हैं।"—कहकर भैरव स्टेशन की तरफ चला गया।

उसके उस मैले और श्रीहीन वेश में वह नया जूता उसकी बड़ी बेतुकी मूर्त्ति बना रहा था। वह भूमि की कठोरता का अभ्यासी भी हो जाना चाहता था। धन के विरुद्ध विद्रोह का अर्थ था दीनता के साथ दोस्ती। नंगा पैर गरीबी की पहली सूचना थी। एक अपरिचित ने उसे दो रुपए दे दिए, क्यों न भैरव जमानत के तौर पर वह नया जूता वहाँ

रख जाता ?

स्टेशन के भीतर सबसे पहले उसने पेट-पूजा की। इसके बाद वह ज्यों ही तार-घर की तरफ जाना चाहता था कि एक गाड़ी के इंजन ने सीटी दी। भैरव कठिनाई में पड़ा था, उसकी मुश्किल सुलझ गई। वह गाड़ी की ओर दौड़ पड़ा और उसमें चढ़कर चल दिया। कहाँ ? किधर ? पिता की तरफ नहीं, वही उसकी सबसे निषिद्ध दिशा थी।

एक रुपया उसकी जेब में था, कुछ और खिरीज भी बाकी थी। थोड़ी देर में उसे ज्ञात हो गया, गाड़ी कलकत्ते की ओर जा रही है।

केवल दीनता भैरव के साथ जा रही था। निश्चिन्त हो गया था वह। सोचने लगा—"कौन कहता है दीनता अभिशाप है ? भय-चिन्ता सम्पत्ति के ही सगे हैं। आज मुझे पता चला सम्पत्तिवान कितने आभागे हैं ! बड़ी निस्सार उनके सुख की कल्पना है।"

उसे उसके ऊपर दया करनेवाला वह वर्कमुंशी याद आया—"आज तो नहीं कल को सोचेगा वह जरूर मुझे जब अपने दोनों रुपयों में से एक भी वापस नहीं पाएगा। लेकिन पन्द्रह रुपए का जूता और किसलिए रख आया मैं वहाँ ? उसे हरगिज मुझे बेईमान नहीं समझना चाहिए। मैंने उससे मजदूरी का पहला पाठ माँगा। उसने मुझे क्यों नहीं दिया ? क्यों वह मुझे फिर धन की शक्ति की तरफ हाँक देना चाहता था। अब मैं बड़ी आसानी से मजदूरी कर सकता हूँ। अब किसी से नहीं कहूँगा कि मेरे पिता बड़े धनी हैं और मैं उनका एकमात्र उत्तराधिकारी हूँ।"

पास बैठे हुए एक आदमी ने उससे पूछा—"दियासलाई है ?"

"नहीं है।"

"बीड़ी नहीं पीते ?"

"पीता हूँ।"—भैरव ने कहा।

"कहाँ जाओगे ?"

"कलकत्ता।"

"कोई रिश्तेदार हैं क्या ?"

"नहीं ।"

"क्या करने जा रहे हो ?"

"मजदूरी ।"

"कभी पहले भी गए हो ?"

"हाँ गया हूँ ।"

उस आदमी ने दूसरे से तीली लेकर अपनी बीड़ी सुलगा ली थी । एक बीड़ी भैरव को देते हुए बोला—"लो, बीड़ी पिओ ।"

भैरव ने आज तक कभी बीड़ी नहीं पी थी । वह पहली बीड़ी होंठों पे लगाते हुए बड़ा अजीब-सा लगा लेकिन अब उन्हीं लोगों के साथ उसे अपना भाई चारा जोड़ना था । उसकी सम्पत्ति तो उसके पास से अदृश्य हो ही गई थी, विद्या की जो दौलत थी उसे छिपाना था उसे । वह सावधानी बरतने लगा कि कहीं उसके मुँह से ऐसा कोई शब्द न निकल जाय जिससे उसकी विद्या प्रकट हो जाय और उसके भाईचारे में फर्क पड़ जाय ।

उस बीड़ी के जोड़ से भैरव ने एक मजदूर के साथ मैत्री आरम्भ की ।

मजदूर बोला—"मेरे रिश्तेदार हैं तो सही कलकत्ते में लेकिन मुझे ठीक पता नहीं मालूम है । कभी मिल ही जायेंगे । अपने असली भाई-बन्द तो अपने हाथ-पैर हैं, जिनसे मजूरी मिलेगी । तुम क्या काम करते हो ?"

"मजूरी, जो भी मिल जाय ।"

"घर कहाँ है ?"

"पूरब में," भैरव ने बड़े धीमे स्वर में उससे कहा—"लेकिन एक बात है भाई ।"

मजदूर कुछ शक में पड़ गया । उसकी बात सुनने के बदले उसने पूछा—"सामान कुछ भी नहीं है तुम्हारे पास ?"

"सब चोरी चला गया । कोट की जेब में रुपए, टिकट जो कुछ था सब चोर ले गए—कपड़े, बर्त्तन, बिस्तर सब !"

इतने ही में एक मनुष्य भैरव के पास चला आया। उसने भैरव को पहचान लिया, जब वह पुलिसवाले से सामान खो जाने पर बातचीत कर रहा था।

उसने आकर उससे अंग्रेजी में पूछा—"क्यों मिस्टर, तुम्हारा सामान मिला या नहीं ?"

भैरव ने जवाब दिया—"नहीं मिला।"

भैरव के पास जो मजूर बैठा था, उसने चकराकर भैरव की ओर देखा।

उस आनेवाले ने भैरव से पूछा—"कलकत्ते किसलिए जा रहे हो ?"

भैरव ने उस मजूर की ओर देखकर कहा—"जो भी मजूरी मिल जायेगी।"

"पढ़े-लिखे होकर मजूरी क्यों करोगे ?"

"समाज के प्रति अपनी प्रतिहिंसा पूरी करने को।"

उस व्यक्ति ने उसकी पीठ पर अपना हाथ रख दिया और वह मजूर उसकी भाषा और भावना को देखकर कुछ हटने लगा। उसके कुछ झिझक पैदा हो गई।

"समाज के प्रति तुम्हारी प्रतिहिंसा क्यों है ?"

"उसका अन्याय और उसकी विषमता का मैं शिकार हूँ।"

"युवक, तुम्हारी बातों से मैं आकर्षित हुआ हूँ। संभवतः हमारा एक ही धर्म है। कुछ और विस्तार से तुम अपना रहस्य कह सकते हो तो कहो।"—बड़ी प्रीति और प्रभाव भरी वाणी से उस व्यक्ति ने भैरव से कहा।

भैरव ने देखा, अत्यन्त साधारण वेश में था वह। कुर्त्ता, धोती और पैर में चप्पल। सिर और दाढ़ी के बाल बढ़े, रूखे और अस्त-व्यस्त। ऐसा जान पड़ता था, मानो उसे बाहरी जगत से कोई मतलब नहीं है। विचारों की दुनिया को ही वह बड़ा मान देता है।

भैरव ने उससे पूछा—"तुम कौन हो ?"

"तुम्हारा अनन्य मित्र हूँ। अपना परिचय दो।"

"अपना क्या परिचय दूं? मैं गरीब मजदूर हूँ।"—बड़ी निराशा से भैरव बोला।

"नहीं मित्र, इस तरह निराश होने की बात नहीं है। गरीबी हमारा दुर्भाग्य नहीं है, वह हम पर बलपूर्वक लाद दी गई है।"

'भाग्य द्वारा?"

'नहीं—अत्याचारियों के अन्याय, स्वार्थ के अन्धेपन द्वारा।"

भैरव ने नीरव रहकर अपना माथा हिलाया।

"इस अत्याचार के सहायक कौन हैं, तुम्हें पता है?"

"नहीं।"

"इसके सहायक दो हैं—शस्त्र और सिक्के। एक के भय और दूसरे के लोभ के कारण न्याय फैल ही नहीं पा रहा है धरती पर।"

'तुम ठीक कह रहे हो।"

"इसलिए पृथ्वी पर से इन दोनों को मिटा देने की आवश्यकता है, तभी यहाँ असली न्याय और सच्ची शान्ति फैल सकेगी।"

"तुम क्या काम करते हो?"

"धन और प्रभुता के इस अत्याचार को मिटाना ही हमारा व्रत है।"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"कोई नाम नहीं। हम जिस दिन व्रत में दीक्षित होते हैं, उस दिन हमें धर्म, जाति, कुल, गोत्र के साथ अपना नाम भी मिटा देना पड़ता है।"

"सामने तो शक्ल से पहचाने जाते होंगे? परोक्ष में?"

"संकेत की संख्या से।"

"गुरुकुल कहाँ है तुम्हारा?"

"जब तक तुम अपना विश्वास नहीं देते और अधिक कुछ नहीं बता सकता मैं तुम्हें।"

"क्या विश्वास चाहते हो तुम मेरा, मेरी समझ में नहीं आया

अभी तक !"—भैरव ने कहा ।

"तुम कौन हो ? किस उद्देश्य से कहाँ जा रहे हो ? तुम्हारा विवाह हो गया है या नहीं ? घर पर और कौन-कौन हैं, इत्यादि सब बातों का उत्तर दो ।"

"मुझे एक कुली मजदूर समझो, बिलकुल निरुद्देश्य हूँ मैं । घर से झगड़कर निकला हूँ अपने ही पैरों पर खड़ा होने के लिए ।"

"क्या व्यापार करने का विचार है ?"

"नहीं, मैं सम्पत्ति को सबसे बड़ी विपत्ति मानने लगा हूँ ।"

"तब तुम हमारे ही पक्ष के हो । तुम्हारा विवाह हो चुका या नहीं ? तुमने इस बात का उत्तर नहीं दिया ।"

"इस बात का अर्थ क्या है ?"

"हमारे मठ में भरती होने के लिए अविवाहित होना जरूरी है ।"

भैरव को बासो याद आई । वह समझने लगा, बासो उसे धोखा देकर भाग गई है । नारी के प्रति घृणा पैदा हो गई उसके उसी समय । उसने जवाब दिया—"जिस प्रकार सम्पत्ति से तुम्हें घृणा है वैसे ही क्या नारी से भी है ?"

"घृणा तो नही है लेकिन हम उसे मार्ग की बाधा समझते हैं । ऐसे ही सम्पत्ति से भी हमें कोई घृणा नहीं है । सम्पत्ति का जो अनुचित बटवारा है, हम उस प्रथा के शत्रु हैं ।"

"मैं तो नारी का भी शत्रु हूँ, नारी-जाति का भी । संसार की अशांति की जड में मैं उसे भी समझता हूँ ।"

"तो तुम अविवाहित ही हो ?"

"हाँ ।"

"तुम हमारे मठ में भरती हो सकते हो तब ।"

"वहाँ मेरे खाने-पीने और रहने की बेफिक्री हो जायगी क्या ?"—भैरव ने पूछा ।

वहाँ तो एक त्याग और तपस्या का जीवन है । खाने-पीने और रहने

की जो बेफिक्री है युवक, वह तो तुम्हारे ही मन की एक अवस्था का नाम है। तुम बेफिक्र हो जाओगे तो फिर सभी कुछ अपने आप जुट जायगा। मनुष्य का भोजन, वस्त्र और निवास यह तो स्वयं ही उसे प्राप्त हो जाता है। वे महती आकांक्षाएँ हैं जो उसे खा जाती हैं।"

"यह बढ़िया बात है। तुम्हारे मठ में औरतें कोई भी नहीं हैं ?"

"सिर्फ एक है।"

"एक क्यों है फिर ?"

"चुप रहो ! उसके खिलाफ भावना मत बिगाड़ो, वह माता है। सबकी माता है।"

"नहीं, मैं तो ऐसी जगह जाना चाहता हूँ जहाँ नारी की कोई परछाई भी देखने को न मिले।"

"वह नारी नहीं माता है। चलो, हमारा ही मठ तुम्हारे योग्य है। तुम कहाँ जा रहे हो ?"

भैरव ने बड़ी कठिनता से उत्तर दिया—"कहीं नहीं।"

"टिकट कहाँ का लिया है ?"

"कही का नहीं। रुपए कोट में थे, कोट चुरा लिया किसी ने, तुम्हें मालूम तो है।"

"पकड़ लिए गए तो ?"

"तुम बचा सकते हो ?"

"हाँ, हमारे मठ में भरती होने को तैयार हो तो जरूर बचा सकता हूँ।"

"तैयार हूँ।"

"वचन दो।"

"वचन दे दिया। कहाँ है तुम्हारा मठ ?"

"निर्जन एकान्त में। नगरों की भीड़ और कोलाहल से दूर प्रकृति के शान्त वातावरण में। नगरों में क्या है ? एक-दूसरे को धोखा देने की वृत्ति, दीन-दुर्बलों को खा जाने का धर्म। हर तरफ कृत्रिमता, ठगी,

गन्दगी और दिखावा। प्रकृति में पवित्रता है, सादगी है, वहाँ आवश्यकताओं का ध्यान नहीं है। हमारा मठ हिमालय की उपत्यका में है।"

"कलकत्ते के आस-पास नहीं ?"—ताज्जुब से भैरव ने पूछा।

"नहीं, दार्जिलिंग से भी ऊपर ? सिकम और भारत की सीमा पर।"

"बहुत दूर !"

"जब तुम्हें सम्पत्ति और नारी से घृणा है तो फिर क्यों शहरों की शरण पसन्द कर रहे हो ?"

"नहीं, शहर पसन्द नहीं है। शहरों ने मुझे लूटा है। शहरों ने मेरी " कहते-कहते भैरव रुक गया।

वह व्यक्ति कुछ ताज्जुब से भैरव को देखने लगा।

"हाँ, शहरों ने मेरी सारी सम्पत्ति लूट ली।"

उसका संशय गया।

भैरव ने पूछा—"कोई धार्मिक सम्प्रदाय है तुम्हारा ?"

"धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। हम कल्पना को कोई श्रेय नहीं देते। हम वास्तविकता को ही मान देते हैं। वह वास्तविकता है—मनुष्य मात्र की समता और भाईचारे की।"

"क्या नाम है तुम्हारे मठ का ?"

"भयंकरवादियों का मठ।"

भैरव के मन में एक गुदगुदी-सी उठने लगी। वह अपने मन में सोचने लगा— 'बम्बई धर्मशाला में जब मैंने उस मैनेजर के ऊपर कूड़े का टीन फेंका क्या उसी समय भयंकरवादी नहीं बन गया मैं और उसके बाद जब मैंने लोहे की छड़ से उस धर्मशाला के ठेकेदार की नाक तोड़ दी, क्या तभी मेरी दीक्षा नहीं हो गई भयंकरवाद के भीतर ? मैं बराबर ठीक ही मार्ग से जा रहा हूँ। इस स्थिति में इस मठ के सिवा और दूसरी कोई मंजिल ही नहीं है मेरी।"

उस व्यक्ति ने कहा—"क्योंकि अब तुम हमारे हो चुके हो तुमने प्रतिज्ञा कर ली है, इसलिए अब तुम्हारे लिए छिपाने को मेरे पास कुछ नहीं है, तुम जो पूछोगे मैं बताऊँगा।"

रेल तीव्र गति से पटना का स्टेशन पीछे छोड़कर रात के सन्नाटे में चली जा रही थी। तीसरे दर्जे के उस बेंच में अधिकतर कुली मजदूर ही थे जो सबके सब सो रहे थे। केवल वे दोनों ही वहाँ पर जागकर बातें कर रहे थे।

भैरव न कहा—'तुम्हारा कुछ नाम तो होगा ही।"

"केवल एक संकेत है।"

"कैसा ?"

"एक संख्या है—५ ज, इसी से मैं व्यक्त हो जाता हूँ।"

"अच्छा मित्र ५ ज, संख्या ही नहीं, एक अक्षर भी है तुम्हारे नाम में।"

"अक्षर भी तो बीजगणित की संख्या होती है।"

"कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त ! अच्छी बात है। मठ है, होता क्या है वहाँ ?"

"मठ में साधना होती है।"

"तुमने तो अभी कहा था मठ धर्म और साम्प्रदायिकता से दूर है।"

"सामाजिक साधना होती है।"—५ ज ने उत्तर दिया।

"वह कैसी ?"

"जब कहीं कोई अत्याचार होने लगता है तो हम उसका प्रतिकार करते हैं।"

"प्रतिकार कैसे करते हो, उसके विरुद्ध आवाजें उठाकर ?"

"नहीं, यह तो दुर्बलों की साधना है। हम भयकरवादी हैं। हम ध्वनि में नहीं, कर्म में विश्वास रखते हैं। हम अत्याचारी को तीन बार सावधान करते हैं जब वह नहीं सँभलता तो फिर हम उसे गोली से उड़ा देते हैं।"

भैरव चौंक पड़ा—"गोली से कौन उड़ाता है ?"

"जिससे नाम का टिकट खुल जाता है। टिकट माता जी खोलती हैं। कोई पक्षपात नहीं होता। क्या तुम्हें भय लगता है ?"

"हाँ।"

"पहले सभी को लगता है लेकिन जैसे मनुष्य अफीम और गाँजा-जैसी निकृष्ट चीजों का आदी हो जाता है और धीरे-धीरे 'बिना उनके वह जी भी नहीं सकता, ऐसी ही कुछ दिन बाद जब तुम उस भयावने वातावरण में रहने लगोगे तो फिर वह जीवन की बड़ी प्रिय और आवश्यक वस्तु हो जायगी।"

"अच्छी बात है। जो भी होगा।"

"डरो मत। अभी नहीं आयगी तुम्हारी बारी। कभी-कभी हम लोग एक-दूसरे के बदले भी चले जाते हैं।"

"मुझे भी अपना नाम विसर्जित कर देना पड़ेगा ?"

"हाँ, क्या नाम है तुम्हारा ?"

"भैरव।"

"हाँ भैरव, दीक्षा की रात को तुम्हें तुम्हारा नंबर दिया जायगा।"

"तुम्हें कोई सरकार पकड़ती नहीं ?"

"हमारा बड़ा पक्का संगठन है। हमारे सदस्य मौत पर खेलते हैं। वे प्राणों की बाजी लगाकर भी अपना भेद नहीं देते।"

"तुम इधर कहाँ से आ रहे हो ?"

"बनारस से।"

"वहाँ क्यों गए थे ?"

"हमारा एक सदस्य वहाँ बहुत दिन हुए एक कर्त्तव्य को लेकर गया था, वह नहीं लौटा अब तक। मैं उसी का पता लेने गया था।"

"कुछ पता चला ?"

"नहीं।"

"फिर क्या होगा ?"

"मुझे प्रसन्नता है। मेरी यात्रा व्यर्थ नहीं गई। हमारे एक सदस्य का सिर गया तो एक दूसरे सदस्य का सिर मिल गया।"—५ ज ने उत्तर दिया।

भैरव उस भयंकरवादी को देख-देखकर कभी उत्साह में भर जाता था और कभी डरने लगता था।

५ ज ने टिफन कैरियर खोलते हुए कहा—"भोजन करो।"

"मैं तो खा चुका हूँ।"

"कुछ चख लो थोड़ा-सा।"

खा-पीकर दोनों बैठे ही बैठे सो गए। कुछ दूर जाने के बाद ५ ज ने भैरव को उठाकर कहा—"मित्र, तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम भैरव है। क्यों पूछते हो फिर दूसरी बार?"

"ख्याल नही रहा।"

"बन्धु, और भी जो चाहो तुम मुझसे पूछ सकते हो। मैं कुछ भी नहीं तुमसे छिपाऊँगा।"

"मैं और कुछ भी नहीं पूछूँगा। कहाँ तक कोई किसी के सम्बन्ध में पूछ सकता है? हम लोग अनेक जन्म-जन्मांतरों में विश्वास रखते हैं। तुम कहाँ तक बताओगे! तुम्हें केवल एक इसी जन्म के माता-पिता की बात मालूम है। इसके अतिरिक्त रह गया धन-सम्पत्ति का लेखा, हम पार्थिव सम्पत्ति को कोई सम्पत्ति नहीं मानते।"

'फिर सम्पत्ति क्या है?"

"विचार, भावना, कर्म।"

भैरव पूछने लगा—"अभी कलकत्ता कितनी दूर है?"

"अभी बहुत दूर है। लेकिन हम वहाँ नहीं जायेंगे।"

"फिर?"

"उससे पहले ही कूद जायेंगे।"

"कहाँ?" भैरव अच्छी तरह जागकर बोला—"कूद जायेंगे, क्यों, कूदेंगे क्यों?"

"तुम्हारे पास टिकट जो नही है।"

"कूदने से हड्डी टूट गई तो ?"

५ ज ने भैरव का हाथ पकड़ लिया—"बन्धु, यही तुम्हारे विचार की कमी है। तुम्हारा विचार बीमार है। विचार की इस दुर्बलता को ठीक करना पड़ेगा, होनेवाली बात पहले विचार में ही प्रत्यक्ष हो जाती है। रेल से कदने पर तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी—इस विचार की कोई क्षीण रेखा भी तुम्हारे मन में रह गई तो जरूर हड्डी टूट जायेगी।"

"कैसे यह विचार की दुर्बलता जायेगी ?"

"केवल निश्चय से, विश्वास से, माता के आशीर्वाद से।"

"मैंने माता को नहीं देखा है।"

"मेरे ध्यान से देखो।"

"कैसी है माता ?"

"उसके एक हाथ में रक्त में सना हुआ खड्ग है और उसके दूसरे हाथ में नीले कमल का फूल। उसके गले में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला है। उसकी कमर में बाघ की खाल बँधी है। उसकी जटाओं में साँप लिपटा रहता है।"—५ ज बोला।

भैरव ने कहा—"बड़ी उग्र माता है यह तो।"

५ ज ने प्रत्युत्तर में कहा—'केवल बाहर से देखने में। भीतर से बड़ी सौम्य और बड़ी करुणामयी है। जब देख लोगे, तब पता चलेगा।"

भैरव बोला—"जब देख लूंगा ? भाई, यह जिस माता का तुमने वर्णन किया वह तो कोई पौराणिक देवी जान पड़ती है। उसे देख कैसे लूंगा—उसकी मूर्ति को पूजते हो क्या तुम लोग ? लेकिन मैं तो बुद्धिवादी हूँ, मैं मूर्तिपूजा को बच्चों का खेल समझता हूँ।"

"हम बुद्धिवादी हैं, लेकिन साथ ही मूर्तिपूजक हैं। सारा विश्व मूर्तिपूजक है। मूर्तिपूजा बुद्धिवाद की चरम सीमा है।"—५ ज ने कहा।

"मित्र, मैं नहीं समझा तुम्हारी बात। जब तक तुम इसे मुझे समझा न दोगे तब तक हाँ-में-हाँ मिलाना कोई अच्छी बात नहीं है।"—भैरव

ने कहा ।

'ठीक है, बिना बात को समझे हाँ कह देनेवाला कोइ चरित्र नहीं रखता । ऐसा व्यक्ति न अपना बल है न किसी संस्था के गौरव को ही बढ़ा सकता है ।"

"मित्र, मैं समझता हूँ, मेरी वचनबद्धता अभी प्रमाणित नहीं है ।"

५ ज ने कुछ आवेश के साथ कहा—"तुम हमारे मठ में प्रविष्ठ हो जाने के लिए वचन दे चुके हो ।"

"दीक्षा कहाँ ली अभी ? जोश में आकर कुछ कह गया था ।"

"जीवन में सफल होनेवाला व्यक्ति इस तरह आगे को बढ़ाए हुए पैर पीछे की तरफ नहीं ले जाता ।"

"मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि मैं तुम्हारे मठ में दीक्षा न लूंगा ।"

"फिर क्या है ?"

"तुम कहते हो सारा विश्व मूर्ति-पूजक है, कैसे है मुझ समझाओ भी तो ।"

"जिनको तुम मूर्त्तिपूजक नहीं समझ रहे हो, वे सिक्के की पूजा नहीं कर रहे हैं क्या ? सिक्कों पर क्या किसी न किसी की मूर्त्ति बनी हुई नहीं है ? ये सब मूर्त्तिपूजक हैं । इनके देवता असली सोने-चाँदी के होते तो भी एक बात थी, वे कोरे कागज के हैं । पानी की एक बूंद में जो गल जाय, साँस की एक फूंक में जो उड़ जाय और आग की एक चिनगारी में जो भस्मीभूत हो जाय ।"—५ ज ने कहा ।

भैरव ने विचारकर उत्तर दिया—"हाँ बन्धु, तुम ठीक कह रहे हो ।"

५ ज फिर बोला—"लेकिन हमारी वह माता जिसके बारे में अभी मैंने तुमसे कहा, वह न तो कागज पर की कोई लेख है न मिट्टी, पत्थर या किसी धातु की निर्माण ! वह हमारे-तुम्हारे ही समान हाड़-चाम की एक हस्ती है जो हमारे प्रत्येक सुख-दुख में हमारा साथ देती है, जिसकी वरद छाया हमारे समस्त कर्म की प्रेरणा है और हमारी अखिल

भावना की वर-विभूति !"

भैरव की शंका मिट गई, वह बोला—"मैं मठ में भरती होने के लिए बिलकुल तैयार हूँ, मित्र।"

"वह तो जानता ही हूँ। क्योंकि हम लोग बिना शब्दों के देन-लेन के ही इस बात का पता पा जाते हैं कि यह व्यक्ति हमारे मठ के उपयुक्त है या नहीं।"

"कैसे मित्र ?"—भैरव ने पूछा।

"जान लेते हैं। माता के आशीर्वाद से और कैसे ? भाव की बड़ी विचित्र गति है। जब तक सारी सृष्टि में भावना का विस्तार नहीं समझ पड़ेगा, तब तक इसका बोध नहीं होगा।"

फिर दोनों चुप हो गए और अपनी-अपनी जगहों पर बैठे-बैठे ऊँघने लगे। गाड़ी एक के बाद दूसरे स्टेशनों को पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ती गई। अब वह भागलपुर के जिले से होकर जा रही थी।

५ ज बड़ी सतर्कता से यात्रा कर रहा था और भैरव अब उसके व्यक्तित्व में एक सहायक पाकर अपनी सारी चिन्ता खो चुका था और बेधड़क सो रहा था।

५ ज बीच-बीच में खिड़की से बाहर मुँह निकालकर देखता जा रहा था। कृष्णपक्ष की प्रभात-व्यापिनी चाँदनी अमावस्या के निकट की तिथियों में थी। उस क्षीण प्रकाश में ५ ज रह-रहकर रेल के आस-पास के ग्रामों, खेतों और जंगलों को पहचानने की कोशिश कर रहा था। कभी दूर क्षितिज की रेखाओं में कुछ परिचय ढूँढता।

कुछ देर बाद उसने पहचान लिया। उसने भैरव को उठाते हुए कहा—"उठो भैरव, उठो, हमारा स्टेशन आ गया।"

"नाम क्या है ?"

"हमारे स्टेशन का क्या नाम होता है ? कुछ नहीं, कोई जंगल समझ लो। जल्दी करो, तैयार हो जाओ।"

"रेल को तो ठहरने दो।"

"रेल टिकटवाले यात्रियों के लिए ठहरती है। खिड़की से कूद पड़ो। मठ-प्रवेश की यही तुम्हारी पहली परीक्षा है।"

"मैं कायर हूँ क्या ?"

"तो मेरे पीछे कूद पड़ो। कोई भय नहीं, कोई चिन्ता नहीं, वसुन्धरा की गोद माता की गोद के समान निरापद है। बाहर से कुछ नहीं बिगड़ेगा तुम्हारा, अगर कुछ बिगड़ा भी तो भीतर भावना के ही विद्रोह से। माता की जय पुकारकर कूद पड़ो। लो, मैं कूद गया जिस प्रकार।"—५ ज कूद पड़ा चलती रेल की खिड़की से !

भैरव को भी साहस हो गया। उसने मन-ही-मन माता की जय पुकारी और कूद गया उसी खिड़की से !

१३

आत्मा की खोज में

पत्नी की अंत्येष्ठि कर रिबूची कलजन के साथ अपने घर आया। उस घोर निराशा में उसका एकमात्र साथी कलजन ही था। उसके मन में वैराग्य की भावना बड़ी पुरानी थी। उसने अपने साथी रिबूची के ताजे घाव में उस वैराग्य का बिरवा बड़ी आसानी से रोप दिया।

कलजन बोला—"रिबूची, जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य 'मैं' नहीं है, मैं को घटाकर जो बाकी बचता है वह है। इसलिए असली सुखी वही है, जो निरन्तर दूसरे के सुख को साधता है।"

"कलजन, कहाँ से है वह सुखी ? कहाँ मिला तुम्हें वह सुख ? तुमने दूसरे की स्त्री को सुखी करने के लिए अपनी स्त्री के जवाहर फूंक देने चाहे थे। बीच ही में कोई क्यों उन्हें चुरा ले गया ? और वह कहता है उन्हें उसके पास से भी कोई चुरा ले गया ?"

"मैं सुखी हूँ रिबूची, क्योंकि मुझे सुख की अपेक्षा नहीं है। वह चरवाहा मेरा हाथ खींचकर ले जा रहा था, अगर मैं उसके पीछे चला जाता तो अवश्य ही सुख की खोज में जाता और वह कभी न मिलता मुझे।"

"तुम्हारी बातों में प्रतीति उपजती तो है, कलजन। मुझे न दोगे तुम इस सुख की चाबी ? कैसे तुम्हारे हाथ लगी यह ?"

"बात फिर वहीं पर आती है। जितना हमारा अपनापन नष्ट होता जायगा, उतने हम सुखी होते जायेंगे। मेरा गृहस्थ नष्ट हो जाने पर मैं आधा सुखी हो गया और घर के लुट जाने पर तो बिलकुल !"

"नहीं, यह तुम गलत बात कह रहे हो। संसार में अधिकांश तो घर गृहस्थियों ही का है। तिब्बत में ये जो इतने मठ और गृहत्यागी हैं, क्या ये सब-के-सब सुखी हैं। या इनके लिए—भोजन, वस्त्र और तरह-तरह की सुख-सुविधाओं के उपजाने वाले ये तमाम गृहस्थी सब दुखी हैं?"

"गृहस्थ में रहकर भी अपनापन नष्ट किया जा सकता है। ऐसा करनेवाले वे सब सुखी हैं। कोई-कोई मठ-वासियों से भी अधिक चैन में हैं।"

"फिर कलजन, तुम क्यों निर्जन और शून्य दिशा की ओर संकेत कर रहे हो?"

"मेरे लिए तो भगवान् ने वही दिशा खोल दी है। तुम्हारे भी इस स्त्री के मरने का कारण"

"मैं फिर और एक स्त्री से विवाह कर सकता हूँ। मेरे हाथ में यह रेखा पड़ी है, देखो कलजन।"—कहते हुए रिंबूची ने अपने दाहिने हाथ की हथेली उसकी तरफ बढ़ाई।

"खरचकर मिटा दो इस रेखा को।"

"यह कहीं मिट सकती है क्या?"

"हाथ काटकर फेंक दो। नियति के हाथों में इतने सस्ते बिक जाने से अच्छा है तुम लूले होकर जीवन धारण करो।"

"कलजन, मैं तुम्हें बड़ा उदार और अहिंसावादी समझता था। तुम यह आत्महिंसा का कैसा उपदेश दे रहे हो?"

"यह तो अपनी कामनाओं की बात है, बोधिसत्व के धर्म में इसका निषेध नहीं है। मन की इच्छाओं पर आरूढ़ होकर ही प्राणी जन्म के लक्ष्य को प्राप्त करता है।"

"तुमने बोधिसत्व का नाम लेकर फिर मेरा विश्वास उपजा दिया। कुछ साफ-साफ कहो, मैं तुमसे तत्व सीखना चाहता हूँ अपना अहंकार मिटाकर।"

"मैं स्वयं ही उसकी खोज में हूँ रिंबूची, चलो कहीं चलें, अगर हमारे

भीतर कुछ सीखने की शुद्ध लालसा पैदा हो गई है तो हमें स्वयं ही गुरु खींच लेंगे ।"

"जब ऐसा है तो कहीं क्यों कलजन, यहीं क्यों नहीं ?"

"कुछ ऊपर चलें वहाँ चाङथङ प्रदेश में, वहाँ हिम की शुभ्रता में काले विचार नहीं जमते ।"

"क्यों नहीं जमते ?"

"शीत में दाना नहीं पनपता और दाने के न होने पर वहाँ कोई जीव नहीं है । बड़ा अद्भुत एकान्त मिलेगा ।"

"मन तो साथ ही जायगा, मन के साथ जायेंगी अनन्त कामनाएँ, फिर एकान्त कैसा ?"

"उस ऊँचाई पर जिस तरह धरती पर की हरियाली अदृश्य हो जाती है ऐसे ही हमारे मन के रंग भी ।"

"तुम्हारा बड़ा विचित्र तर्क है ।"

"रिंबूची, हम तर्क से तत्व को नहीं पा सकते । व्यवसाय पाया जा सकता है । इसलिए तत्व को चाहते हो तो हृदय में बालकों की सी पवित्रता और सरलता उपजानी पड़ेगी ।"

"अच्छा मैं तर्क नही करूँगा, कोई सारतत्व बताओ ।"

कलजन ने खाँसकर गला साफ किया । कुछ विचार किया और कहने लगा—"हम जिस नारी को बहुत बड़ा सत्य समझते हैं, वह सिर्फ एक माया है । एक कल्पित रेखाओं का जाल !"

"एक सिरे पर नारी है तो दूसरे सिरे पर पुरुष क्यों नहीं ? तुम दोनों का नाम क्यों नहीं गिनते ?"

"यह पुरुषों के बीच की बात है, नारियाँ ऐसा कह सकती हैं ।"

"अच्छा और आगे कहो ।"

"इसीलिए मैंने उस माया में चीनी भाई को हिस्सा दे दिया और बहुत शीघ्र उस रहस्य से ऊपर उठ गया । साधना के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है यह नारी, रिंबूची बिना इस बाधा का अतिक्रमण किए

कुछ न होगा।"

"और फिर मेरे मन में अविश्वास पैदा हो गया। तुम ऐसा कहकर क्यों आधी सृष्टि का बहिष्कार कर रहे हो ?"

"कदाचित् तुम मेरे शब्द का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझे। नारी से मेरा अर्थ है, वह जिसे तुम अपने सुख और विलास की सामग्री समझे हो। मैं तुमसे उस नारी से ऊँचा उठने को कहता हूँ उसके मातृत्व में।"

"कहाँ ? किधर ? वह कहाँ है, कभी की मर गई।"

"नहीं, वह न जन्मती है न कभी मरती है।"

"कौन है वह ?"

"वह है डोल्मा, वह तारिणी !"

"वह श्यामा ! वह संहारिणी ! वह रक्तनयना ?"

"हाँ-हाँ ! वही, वही—वही तो उसकी प्रियदर्शिता है।"

"वह शान्त-स्थिर बोधिसत्व ?"

"बोधिसत्व को उसी की कोख ने उपजाया है और उसी में उसका लय हो जाता है।"

"कलजन, तुमने यह क्या सब सच ही कहा है ?"

'नहीं, केवल एक विचार की स्फुरणा है। तुम्हारा मन अगर इसमें मेल खाता है तो चलो हम आगे बढ़कर देखें कदाचित् यह सत्य है।"

"मेरा मन मेल खाता है। पर इस घर और सामान का क्या करूँ ? लेकिन एक बात बड़े आश्चर्य की है " रिंबूची रुक गया।

कलजन बोला—"इस सृष्टि में आश्चर्य ही तो सार वस्तु है। बिना आश्चर्य का जीवन भी क्या कोई सत्ता है ? कहो तुम कहाँ पर अटक गए ?"

"मैं कहता हूँ, तुम्हारे विचार पहले कुछ और तरह के थे।"

"विचार सदा एक ही से रहते हैं केवल दृष्टिकोण बदलता है।"

"महायान से उतरकर तुम वज्रयान में चढ़ गए !"

"विशेषता यान की है रिंबूची, महा या वज्र इन विशेषणों से कोई

विषमता नहीं पैदा होती।"

"कलजन, जब ऐसी बात है तो फिर तुम मुझे कहाँ को ले जाते हो ? यह जो मेरा घर है, यह एक यान ही तो है—फिर क्यों तुम मुझे इससे छुड़ा रहे हो ? तुम्हारे यान-द्रोह का कारण मैं जानता हूँ । मुझे क्यों विद्रोही बनाते हो ?"

"नहीं, कोई बल-प्रयोग नहीं है । क्या है मेरे विद्रोह का कारण ?"

"एक ही रात में कलजन, तुमने अपने वर्षों की पूजा शून्य में मिला दी !"

"क्या करता फिर ? मेरी पूजा की वह प्रतिमा क्यों रूठ गई मुझसे ?"

"प्रतिमा को जो उठा ले जायगा—उसके साथ जायगी क्यों नहीं ?"

"यहीं पर तर्क पराजित हुआ और मेरी भावना को स्फूर्त्ति मिली । मैं मूर्त्तिपूजा छोड़कर चल दिया । जिस प्रतिमा में मैंने वर्षों से प्राण-प्रतिष्ठा की थी, उसे उठाने को जब चोर ने हाथ बढ़ाया तो क्यों नहीं उस चोर पर लकवा गिर पड़ा ? लेकिन नहीं रिंबूची, मैं मूर्खता के वश होकर तुम्हारे साथ यह तर्क कर रहा हूँ। ऐसी कोई बात नहीं है।"

"क्या है फिर ?"

"वह प्रतिमा मुझसे छिन गई, इसी कारण मेरा मानसिक आदर्श बदल गया और मुझे दूसरे दृष्टिकोण पर आँख गड़ानी पड़ गई।"

"अच्छा मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ । इस यान का क्या करूँ ?"

"इसको ऐसे ही छोड़ जाओ।"

"किसी को दे क्यों न दूँ ? इसकी कुछ आवश्यक चीजें तो ले चलें।"

"किसी को देने से मोह बढ़ेगा । कुछ इसमें से ले जाने से बन्धन बढ़ेगा । मरने पर हम जैसे अकेले जाते हैं, रिंबूची ऐसे ही जाना पड़ेगा।"

रिंबूजी ने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या इसीलिए इसका नाम वज्रयान है ?"

"और नहीं तो क्या ?"

"मैं तो समझता था, मकार इसके साथी हैं।"

"नहीं रिंबूची, अहंकार ही वज्रयानी का मद, उसका वह अहंकार बाहर नहीं प्रकट होता वह उसे निरन्तर पीता रहता है और चौबीसों घण्टे उसे उसी का नशा रहता है, उसका मांस उसका अपना ही स्थूल शरीर है—वह उसी को खाता रहता है।"

"लेकिन कलजन, वज्रयान के सम्बन्ध में जो ऐसी बातें फैली हैं, वे क्या हैं?"

"मैं नहीं जानता, जो जानता हूँ तुम्हें बता दीं।"

"मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।"

"कहाँ चलोगे?"

"जहाँ कहोगे।"

"कब चलोगे?"

"जब कहोगे।"

"हाँ रिंबूची, बिना ऐसे पूर्ण आत्मसमर्पण के आत्मा नहीं मिलती। चलो, हम चलेंगे, अभी चलेंगे। हमें कोई प्रबन्ध नहीं करने हैं। सब बंधनों से हम मुक्त हैं। कोई उत्तरदायित्व नहीं, किसी से कुछ लेना-देना नहीं। चलो, चाङ्थङ् प्रदेश में खंपो लामा का मठ है। तुमने सुना है उसका नाम?"

"नहीं सुना।"

"बहुत कम लोग उसे जानते है। वह बहुत दूर ओट में रहना पसन्द करता है उस मठ में। बहुत थोड़े लोग उसकी शक्ति से परिचित हैं। वह बहुत छिपकर रहता है। प्रकृति की ऊँचाई और शीत को उसने अपना कवच बना रखा है।"

"वह क्या खाता है वहाँ?"

'वह एक सिद्ध है। वह जो कल्पना करता है, वही उसके पास पहुँच जाता है। लेकिन तुम समझते हो उसकी कोई आवश्यकता है?

कुछ नहीं, चलो वहाँ उसका शिष्यत्व ग्रहण करें। अगर उसने हमें स्वीकार कर लिया तो निश्चय हमारा जन्म सफल हो जायगा।"

रिंबूची बोला—"अच्छी बात है कलजन, चलो अभी चलें, पैदल ही चलेंगे न ?"

"हाँ भाई, सवारी में जाने के लिए न तो हम सूबे के शासक हैं न देश के धनी व्यापारी।"

"मैं यह अपना पुराना शोंबा बदल लेता हूँ और मेरे पास एक बिलकुल नया छुपा रखा है, तुम्हारे ठीक आयेगा। तुम उसे पहन लो। हमें बहुत जंगली और पहाड़ी मार्ग से जाना होगा, कलजन।"

"हाँ-हाँ, वह मृत्यु का मार्ग है, इस विचार को क्षणभर के लिए भी मत तोड़ो और मृत्यु के मार्ग में तुम्हारे क्या कवच काम आयेंगे ?"

"मृत्यु के मार्ग में कोई कवच काम न आयेंगे, वहाँ तमाम दूरदर्शिता मूर्खों का प्रलाप है—तुमने यह सच ही कहा, कलजन।"

"हमें कोई डर न रहेगी तो हम भगवान् के अधिक निकट रहेंगे। रिंबूची, यह भय की ही भावना है जो हमारी आत्मा को विस्तार नहीं देती।"

"हम वीर हैं ! हम निर्भय हैं !"

"अवश्य ! मृत्यु की घृणा ही हमारा भय है, हमने उससे प्रीति कर अपने मार्ग को चौड़ा और फूलों से बिछा हुआ बना लिया है। तारिणी डोल्मा की जय ! रिंबूची, उसके एक हाथ में मनुष्य के कपाल का खप्पर है, एक हाथ में रक्त-रंजित खड्ग है ! तुम्हें डर लग रही है ?"

"नहीं।"

"तो चलो।"

"एक क्षण ठहर जाओ। मैं दो थुल्मे उठा ले आता हूँ। चाङ्थङ् में बड़ा शीत है।"

"रिंबूची, तुम्हें जरूर डर लग रही है। मैं कहता हूँ जब तक तुम ये शरीर के कपड़े भी खोलकर न रख दोगे, तब तक तुम उसके रहस्य

के भीतर प्रविष्ट न हो सकोगे।"

"कलजन, चलो।"

"खंपो लामा के निकट जाने की इच्छा के और कुछ साथ न लो, भाई।"

रिंबूची ने तमाम आकर्षणों के बंधन काट दिए। बड़ी सहज गति से वह मकान के बाहर को चला—"चलो भाई।"

दोनों मकान के बाहर चल दिए। कुछ पड़ौसी रिंबूची के दुख में समवेदना प्रकट करने आ रहे थे। वे बोले—"हम तुम्हारे यहाँ आ रहे हैं, तुम कहाँ चल दिए?"

"तुम जाओ वहाँ, चूल्हे में आग है, केतली में पानी, चमड़े के थैले में मक्खन है, चांवा है, मटके में छङ् है। जिसे जो रुचे खा-पी लेना।"

"तुम कितनी देर में आओगे?" एक ने पूछा।

"कलजन मुझे ले जा रहे हैं, जब छोड़ दें।"

दूसरे ने कहा—"मकान तो खुला ही है तुम्हारा?"

"कलजन बन्द कर गए थे, इन्होंने मुझे एक अनुभव दिया। मुझे ताला लगाकर किसी का कौतूहल बढ़ाना नहीं है।"

पड़ौसी समझे शायद उन दोनों ने अपना दुख भुलाने के लिए खूब शराब पी रखी है। उन्होंने रिंबूची के घर जाकर बहुत देर तक प्रतीक्षा की। वे नहीं लौटे। रात हो गई, तब भी उन दोनों में से किसी का पता न था। पड़ौसियों ने समझा जरूर उनका दिमाग खराब हो गया। उन्होंने रिंबूची का मकान बन्द कर उसमें ताला लगा दिया और अपने-अपने घर चले गए।

जब उनका दूसरे दिन भी कोई पता न चला और भी कई दिन बीत गए, तब तो उनके विश्वास का अनुमोदन हो गया।

रिंबची और कलजन—जरूर उन दोनों को कुछ हो गया था। वे बराबर चाङ्थङ् के उस शीत प्रदेश के एक ऐसे मठ की ओर जा रहे थे जहाँ का नाम लेने ही से साधारण मनुष्य भय से काँप उठता था।

आठ-दस दिन उन्हें यात्रा करते हुए हो गए। दिन भर चलते। रात को किसी गाँव में चले जाते। लोग उनका अतिथि-सत्कार करने में कोई कसर नहीं करते थे। कलजन और रिंबूची दोनों की ही दूर-दूर तक अच्छी प्रसिद्धि थी।

दसवें दिन रिंबूची चलते-चलते थक गया था। संध्या बीत चुकी थी और रात का अन्धकार विषम तीव्रता से बढ़ चला था। उसने घबराकर कहा—"कलजन, क्या ऐसा नहीं हो सकता ?" कलजन की चढ़ी भौंहों को देखकर उसने अपना प्रश्न पूरा नहीं किया।

कलजन ने हँसकर कहा—"क्या कहते हो ?"

रिंबूची—"मैं पूछता हूँ, कभी ऐसा भी तो हो सकता है, हमें रात के विश्राम के लिए कोई गाँव न मिले।"

कलजन—"उस रात को हम चलते ही रहेंगे, वह कब तक न मिलेगा ?"

रिंबूची थककर बैठ गया—"कलजन, तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"मैं कहता हूँ खंपो लामा साधारण मनुष्य नहीं हैं।"

"उनका नाम लेने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?"

"वह अवतारी पुरुष हैं। हम उनकी ही इच्छा से उनके मठ को जा रहे हैं।"

रिंबूजी ने चौंककर कलजन को देखा।

"हाँ, इसमें जरा भी संशय नहीं। मैंने खंपो लामा को उस रात तुम्हारे आँगन में देखा जिस रात मैं भट्टी में दवा फूंक रहा था।"

"खंपो लामा वहाँ कैसे आ गए ?"

"तुम्हें नहीं मालूम है उनका भेद। देश और काल उनकी दृष्टि में कोई भी बाधा नहीं है। वे चाहे जहाँ क्षणों में जा सकते हैं। जिस प्रकार हम विचार और स्मृति की सहायता से भूत और भविष्य में जा सकते हैं—उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम में प्रवेश कर सकते हैं, वह वैसे ही अपने प्रत्यक्ष शरीर को लेकर जा सकते हैं मन की सहायता से। हमारा

केवल मन ही देश-काल को पार कर सकता है, वह अपनी दसों इंद्रियों को साथ लेकर चले जाते हैं कहीं भी।"

"उन्होंने क्या कहा तब तुमसे ?"

"उन्होंने मुझसे कहा—रिंबूची की स्त्री दूसरे दिन मर जायगी।"

"हैं ! तुमने मुझे क्यों नहीं बताया ?"

'उनकी आज्ञा नहीं थी।"

'और क्या कहा उन्होंने ?"

'यही कि रिंबूची को लेकर शीघ्र ही चाङ्थङ् में स्थित मेरी गुंपा में आ जाना।"

"उन्होंने क्यों बुलाया है हमें ?"

"इस प्रश्न पर तो हमें विचार करना ही नहीं है। यह अवश्य ही हमारे कल्याण के लिए है, रिंबूची।"

"मुझसे तो अब चला ही नहीं जाता।"

"तुम चलोगे रिंबूची, अवश्य ही चलोगे।"

"किसके सहारे से ?"

"लक्ष्य के सहारे से।"

"गुम्पा अभी कितनी दूर है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"फिर कैसे लक्ष्य प्राप्त होगा ?"

"पूछते-पूछते ही तो चले जा रहे हैं।"

"यह घोर निशा, पैर श्रम से थके हैं, पेट में क्षुधा और आकाश से पाला गिर रहा है।"

"यह सब एक कल्पना है, रिंबूची, मैं तुमसे सच कह रहा हूँ। मन को इन सब बाधाओं से हटाकर कहीं दूसरी जगह रख लो।"

"कहाँ रख लूं ?"

"अवश्यंभावी मृत्यु की गोद में।"

"कलजन, तुम्हें न जाने उस रात से क्या हो गया ?"

"यह सच ही है, रिंबूची, चलो उठो।"

इतने ही में दूर पर एक उजाला दिखाई दिया। रिंबूची उठ गया। बड़े उत्साह से वह बोला—"वह देखो, वह प्रकाश है।"

"हाँ, अवश्य ही वह हमें ढूंढने आया है।"

"हमें क्यों ढूंढेगा ?"

दोनों उस प्रकाश को लक्ष्य कर आगे बढ़ने लगे। वह एक गाँव का युवक था।

कलजन ने उससे पूछा—"तुम किसे ढूंढ रहे हो ?"

"हमारी दो चमरियाँ आज नहीं आईं। उन्हीं की खोज में हूँ।"

"गाँव कितनी दूर है ?"

युवक को हठात् थोड़ी दूर पर चरती हुई चमरियाँ दिखाई दीं। वह बोला—"वे मिल गईं मुझे। चलो, मेरे साथ ही चलो। मैं अभी उन्हें हाँक लाता हूँ।"

रिंबूची और कलजन वहीं खड़े रहे। युवक दोनों चमरियों को हाँक लाया और वे गाँव की ओर चले।

मार्ग में कलजन ने पूछा—"कितना बड़ा गाँव है ?"

युवक ने जवाब दिया—"अगर चमरियों, भेड़ों और बकरियों के खोड़ों को मकान नहीं गिना जाय तो सिर्फ एक ही मकान का गाँव है।"

रिंबूची ने कहा—"बहुत छोटा !"

कलजन ने उत्तर दिया—"और क्या ? मनुष्य को खाने के लिए दाना चाहिए। हम ल्हासा से बहुत ऊपर आ गए हैं। यहाँ तो शायद साल-भर में जौ की भी कोई फसल न होती होगी।"

युवक ने कलजन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"जौ क्यों नहीं होता ? हमारे खेतों में लहलहा रहे हैं, बालें आने ही वाली हैं।"

कलजन ने पूछा—"बरफ कितनी गिरती है ?"

युवक ने उत्तर दिया—"खूब।"

"कितने व्यक्ति रहते हो ?"—रिंबूची ने पूछा।

"मैं और मेरी माता, केवल दो ही मूर्तियाँ।"—उसने प्रत्युत्तर में कहा।

रिंबूची ने पूछा—"खंपो लामा का मठ अभी और कितनी दूर है ?"

"सीधे पहाड़ के रास्ते दो दिन की राह और घूमकर पाँच दिन की।" उस युवक ने कहा—"और कभी-कभी तो यात्री चलता ही रह जाता है, मठ का पता ही नहीं लगता।"

रिंबूची ने पूछा—"पता कैसे नहीं लगता ? मनुष्य कहीं छिप सकता है, मठ कहाँ जा सकता है ?"

"यही तो उनकी सिद्धि है," कलजन ने कहा—"मेरे मन में उनके दर्शन का इतना उत्साह हो गया, रिंबूची, चलो, अभी क्यों न चलते ही रहें। रात हमारे मार्ग की बाधा है और नींद हमें वास्तव जगत से बहकाकर स्वप्न की सृष्टि में फँसा देती है।"

"मेरी तो सारी देह चूर-चूर हो गई, भाई। खाने को नहीं चाहिए मुझे, नींद तो चलते-चलते ही आने लगी है।"

१४

हाथ टूटा

फूल की पंखुरी की भाँति भूमि पर कूद पड़ा तीव्र गति से दौड़ती हुई रेल से। उसके मन में कोई भय और आशंका नहीं थी। लेकिन उसका साथी भैरव—वह बुद्धिवादी, उसके मन में पहले ही से डर का समावेश था। यह पहला ही दिन था उसका। कभी ऐसे खेल खेले नहीं थे उसने।

मन-ही-मन माता की जय पुकारकर ज्योंही वह खिड़की से कूदा था कि नीचे भूमि पर उसे एक घनी छाया में किसी खाई का धोखा हो गया। रक्षा की जिम्मेवारी जो उसने किसी दूसरे पर रख दी थी, झट से छीनकर अपने ही हाथों में ले ली।

वह भूमि पर पैरों के बल गिरने के बदले दाहिनी करवट से गिर पड़ा! उसका दाहिना हाथ दब गया, नीचे दो-तीन ईंटें पड़ी थीं। भैरव चिल्ला उठा—"हे भगवान्!"

ज दौड़कर उसके पास आ गया। उसने पूछा—"भैरव! क्या हो गया?"

"गिर पड़ा हूँ ईंटों में। बड़ी जोर की चोट लग गई।"—रोते हुए भैरव ने कहा।

"कहाँ लगी?"—कहते हुए ज उसे उठाने लगा।

"ओ ऽ ऽ इधर हाथ न लगाओ। बड़ा दर्द है। नहीं जानता हाथ कट गया या टूट गया!"

ज ने अच्छी तरह देखकर कहा—"कटा होता तो खून निकलता।" उसने धीरे-धीरे उसको सहारा देकर उठाना चाहा।

"नहीं, नहीं, उठाओ मत, मर जाऊँगा।"

"अपने आप उठो, भैरव। कुछ चोट तुम्हारे लग गई इसमें कोई शक नहीं लेकिन तुम बहुत बहादुर हो।"

"नहीं, कुछ नहीं हूँ। मेरी ही गलती से यह चोट लगी।"

"मैं तुम्हारे साहस को देखकर प्रसन्न हूँ। इस अँधेरे में चलती रेल से कूद पड़ना आसान बात नहीं है। बहुत थोड़े से लोगों में ऐसा साहस होता है। यह तुम्हारी पहली परीक्षा थी और तुम इसमें बहुत अच्छी तरह सफल हो गए। शाबाश!"

"लेकिन यह दाहिना हाथ, ऐसा जान पड़ता है यह मेरा नहीं रहा। अब क्या करूँ, बन्धु इस भयानक जंगल में हमारा कौन है?"

"ऐसे दिल नहीं तोड़ा जाता। मैं हूँ तुम्हारा सब-कुछ और वह भगवान् है। कोई चिन्ता न करो। उठो, उठने की कोशिश करो।"

बड़ी मुश्किल से ५ ज ने भैरव को उठाया और हाथ की उँगलियों की मुट्ठी बाँधने को कहा। नहीं बँधी उससे। ५ ज ने अपनी धोती में से एक धज्जी फाड़ी और उसके हाथ को बाँध दिया। इसके अनन्तर दूसरा भाग फाड़कर हाथ स्लिंग में रख दिया।

ठंडी साँस लेकर भैरव ने कहा—"अब क्या होगा?"

"साहस रखो। घोर कठिनाई के बीच में जो हँसते ही रहता है, वही सच्चा वीर है। बिलकुल न घबराओ, यह मेरा परिचित प्रान्त है। इसके जंगल और गाँवों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"जाऊँगा कैसे?"

"मेरी पीठ पर चलो।"

"नहीं, हाथ में चोट है, पैर तो ठीक ही हैं। मैं चलूंगा, मित्र! तुम आगे-आगे चलो। मैं तुम्हारी पीठ पर हाथ रख लूंगा। मुझे इतने ही सहारे की जरूरत है।"

दोनों चलने लगे। ५ ज के पास एक झोला था, उसमें एक लोटा, एक धोती-अँगोछा था। भैरव के पास कुछ भी न था।

कुछ दूर चलकर भैरव बोला—"हम कहाँ जा रहे हैं ?"

"मठ को जा रहे हैं। जंगल की राह से जल्दी पहुँचेंगे।"

"पैदल जल्दी पहुँचेंगे ?"

"वहाँ रेल नहीं जाती।"

"पैदल कितने दिन में पहुँचेंगे ?"

"पाँच-छ: दिन लग जायेंगे। लेकिन क्योंकि तुम्हारे चोट लग गई है इस कारण कुछ और अधिक समय लग जायेगा।"

"जहाँ तक रेल थी, वहाँ तक रेल से ही जाते।"

"इस प्रकार एक मार्ग ले लेने पर अन्यथा नहीं सोचा जाता। भैरव, मत घबराओ। अभी हमारा लक्ष्य किसी गाँव में पहुँच जाना है। वहाँ तुम्हारे हाथ की चोट का पता लगेगा। एक-आध दिन विश्राम कर लेंगे। भगवान् चाहेगा तो अधिक विलम्ब न होगा हमें मठ में पहुँचते। रेल में जाकर क्या होता ? ऐसे ग्रामों से होते हुए हमें मानव जीवन के दर्शन होते हैं। ये नगरों के लिए भोजन की सामग्री उपजाने वाले किस प्रकार की कठिनाइयों के बीच में काम करते हैं, भैरव, यह भी तो हमें जानना चाहिए।"

सूर्योदय के समय दोनों एक गाँव में पहुँच गए। दूर से ही उनको देखकर गाँव के कई लड़के दौड़कर ५ ज के पास पहुँच गए और बड़े खुश होकर बोले—"मास्टर जी ! बड़े दिनों में आए। एक महीने में लौट आने को कह गए थे !"

"हाँ बनारस में बहुत समय लग गया।"—५ ज ने उत्तर दिया।

५ ज का वहाँ नया नाम सुनकर भैरव ने उनसे कहा—"मास्टर जी, यह कैसा संबोधन है आपका ?"

"मैंने यहाँ एक बार एक पाठशाला खोली थी। ये सब मेरे विद्यार्थी हैं।"—५ ज ने उत्तर दिया।

लड़कों ने पूछा—"ये आपके साथ कौन हैं, मास्टर जी ?"

"मेरे भाई हैं।"

"इनके हाथ में क्या हो गया ?"

"चोट लग गई। रेल से गिर पड़े।"

"हमारे गाँव में माधो पहलवान अभी ठीक कर देगा। चलिए, हम अभी उसे बुला लाते हैं।"

भैरव पहलवान का नाम सुनते ही घबरा उठा। दोनों को आते देखकर गाँव के मुखिया जी आ पहुँचे और ५ ज को भैरव सहित बड़ी आवभगत के साथ अपने यहाँ बुला ले गए।

मुँह-हाथ धोने के अनन्तर दोनों ने कुछ नाश्ता किया। माधो पहलवान आ गया था। भैरव ने जब उसका सुगठित शरीर देखा तो उसके होश उड़ गए। वह बल-टूल करने लगा।

मुखियाजी बोले—"माधो बहुत होशियार आदमी है। जोड़ों की बड़ी अच्छी पहचान है इसे। अगर किसी बड़े शहर में होता तो हड्डी का डाक्टर के नाम से मशहूर हो जाता और अब तक एक कोठी खड़ी कर ली होती। यहाँ गाँव में कौन इसके गुण को पहचानता है ?"

भैरव की उसके प्रति कुछ श्रद्धा बढ़ी।

माधो ने भैरव के हाथ की उँगलियों को बड़े हलके-हलके अपने हाथ में सँभाला और धीरे-धीरे उसकी भावना को अपने कब्जे में किया।

मुखिया जी बोले—"लेकिन पैसा नहीं मिलता है माधो को, पास-पड़ौस के बीसियों कोस के घेरे से इसके दरवाजे पर कोई-न-कोई इसे बुलाने को आता ही रहता है।"

माधो ने उसकी उँगलियों को अपनी उँगलियों से कुछ देर हिलाया-डुलाया और भैरव के मुख पर पड़ी वेदना की रेखाओं में, उसकी दर्द की चीत्कारों में कुछ देखा और समझा। अन्त में उसने कहा—"हड्डी टूटी नहीं, खिसक गई है। कुर्त्ते की बाँह निकाल दो बाबू।" वह बाँह निकालने लगा।

"हूँ ! हूँ ! हूँ ! नहीं जरा भी नहीं।"—भैरव चिल्लाया।

माधो ने कैंची मँगाकर कुर्त्ते की बाँह काटकर हाथ नंगा कर दिया।

मुखिया जी का सेवक एक कटोरी में कड़वा तेल ले आया। माधो ने उसमें कुछ नमक पीसकर मिला दिया। उसने भैरव से कहा—"कुछ भी दर्द नहीं होगा। आप दर्द का बिलकुल ख्याल ही छोड़ दें।"

लेकिन भैरव ने माधो को हाथ नहीं लगाने दिया। मुखिया ने कहा—"चेहरे से तो आप हमें बड़े साहसी जान पड़ते हैं। एक ही क्षण की बात है। एक ही खटके में हड्डी जगह पर आ जायेगी।"

माधो ने मिश्री का टुकड़ा मँगाया। कुछ उसे पीसकर पानी में घोला और एक टुकड़ा भैरव को देकर कहा—"इसे आप मुँह में लेकर दोनों जबड़ों के बीच में दबाकर तोड़िए। मैं कहता हूँ आपसे जरा भी दर्द नहीं होगा।" उसने धीरे-धीरे तेल के हाथ से फिर भैरव के हाथ को गुदगुदाया—"देखिए, एक बात पक्की है। हड्डी को अपनी जगह में आना है, जरूर आना है। जितनी देर होती जायगी, उतनी पीड़ा से यह काम होगा। तब अभी क्यों न हो?"

५ज बोला—"भैरव सुख-दुख केवल मन की कल्पना है। नहीं, पीड़ा नाम की कोई वस्तु नहीं है और चैन नाम की भी कोई स्थिति नहीं। तुम इन दोनों से ऊपर के जीव हो।"

माधो ने कहा—"यह मिश्री का टुकड़ा मुँह में लीजिए। जब मैं कहूँ तब इसे दोनों जबड़ों के बीच दबाकर तोड़िए। जितनी देर में यह टूटेगा सिर्फ उतनी ही देर के लिए आपको एक टीस-सी जान पड़ेगी—फिर बिलकुल ठीक हो जायगा।"

भैरव ने माधो की बात का विश्वास किया। उसने मिश्री का टुकड़ा मुँह में रखा।

माधो ने अपनी आँखें भैरव के मुँह पर रख कर उँगलियों से उसकी हड्डी टटोली। उसने कहा—"हाँ, जोर से दोनों जबड़े मिला दीजिए।"

भैरव ने ज्योंही जबड़े मिलाये इसी समय माधो ने बड़े कौशल से खिसकी हुई हड्डी ठीक जगह पर लगा दी। भैरव को अधिक पीड़ा नहीं जान पड़ी। उसका ध्यान कुछ मुँह के मीठे पर रम गया था कुछ मिश्री

को तोड़ने में।

भैरव की हल्की-सी चीख पर माधो ने कहा—"अब कैसा दर्द? अब तो आपकी हड्डी जगह पर जम गई।"

भैरव के मुख पर मुसकान छा गई—"हाँ, अब तो कहीं नहीं जान पड़ती पीड़ा।"

माधो बोला—"उँगलियाँ हिलाइए।"

भैरव ने सभी उँगलियाँ सभी सम्भव कोणों पर घुमा दीं।

"बिलकुल ठीक हो गया हाथ। लेकिन कुछ सतर्कता लेनी ही पड़ेगी दो-चार दिन।"—उसने हाथ में पट्टी बाँध दी और हाथ फिर स्लिंग में ही लटका दिया।

मुखिया जी हँसे—"माधो पहलवान की शकल देखकर शायद पहले आप लोगों को यह अन्दाज नहीं हुआ था कि यह इतनी जल्दी आपकी पीड़ा हर लेगा।"

भैरव की पीड़ा बिलकुल चली गई थी, उसने कहा—"इन्होंने तो यह एक जादू-सा कर दिया।"

माधो ने कहा—"जादू-वादू कुछ नहीं गुरु महाराज की कृपा है। मेरे मन में कोई स्वार्थ नहीं है, इससे अच्छा कर लेता हूँ।"

"कुछ नहीं लेते किसी से?"—ज ने पूछा।

"नहीं, कुछ नहीं। गुरु महाराज की आज्ञा ऐसी ही है।"

"मैं तुम्हें एक कसरती जवान ही समझता था, जो केवल अपने बाहरी मांस-पुट्ठे के बनाव में ही दिन बिताता होगा। तुम्हें तो मनोविज्ञान का ज्ञान है।"—भैरव बोला।

"क्या मनोविज्ञान? कुछ नहीं, पढ़ा-लिखा थोड़े हूँ मैं? ऐसे ही टटोल-टटोलकर अपना काम चलाता हूँ।"—माधो ने बड़ी विनम्रता से कहा।

ज कहने लगा—"हम किताबी विद्या को कोई चीज नहीं गिनते। असली विद्या की लहरें वायुमण्डल में ही व्याप्त रहती हैं। वे लेख या

शब्द के माध्यम से प्राप्त नहीं होतीं। वे प्राप्त होती हैं सदाचार द्वारा। परोपकार की वृत्ति ही सबसे बड़ा सदाचार है। जीव-मात्र पर प्रेम करने वाले को अनेक शक्तियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।"

सभी ने इस बात को माना। मुखिया जी ने सबके लिए भोजन का प्रबन्ध किया लेकिन माधो बोला—"मुखिया जी मुझे तो आज्ञा दीजिए।"

भैरव ने भी आग्रह किया लेकिन माधो नहीं माना, किसी गाँव में दंगल था, उसके संयोजन के लिए जाना था। वह चला गया। खा-पीकर मुखिया जी की कृतज्ञता स्वीकार कर भैरव और मास्टर जी भी जाने को तैयार हो गए।

मुखिया जी ने एक रात आराम कर लेने को कहा। लेकिन भैरव को माता जी के दर्शन की लालसा हो रही थी। वह बोला— "मेरी पीड़ा बिलकुल ठीक है। मैं यात्रा के सर्वथा योग्य हो गया हूँ, फिर कुछ साथ में बोझ तो है नहीं।"

मुखिया जी हँस पड़े, जब उसी समय उनका एक चाकर भीतर से डलिया में कुछ लेकर वहाँ पर उपस्थित हो गया और भैरव की ओर उस डलिया को बढ़ाने लगा।

भैरव भी हँस पड़ा—"मैं तो सोच रहा था, साथ में कुछ बोझ है नहीं। यह क्या है ?"

मुखिया जी ने कहा—"कुछ फल और थोड़ा-सा पकवान श्रीमती ने भेजा है आप लोगों के रास्ते के लिए। पाँच छः दिन की यात्रा है।"

५ ज बोला—"लेकिन हमें एक लोटा और धोती के सिवा और कुछ रखने की आज्ञा नहीं है।"

मुखिया जी ने कहा—"आपके साथी भैरव जी तो अभी आपके मठ में भरती नहीं हुए हैं।"

५ ज ने कहा—"लेकिन इनके हाथ में चोट है और कुछ दिन आराम जरूरी है।"

मुखिया जी ने फिर अनुरोध किया—"दूसरा हाथ तो ठीक ही है।"

भैरव ने वह हाथ बढ़ाकर डलिया लेते हुए कहा—"मुखिया जी, आपका यह स्नेह हमें स्वीकार करना ही होगा इतनी प्रीति और प्रतीति से दिया गया आपका यह उपहार कदापि हमारे कष्ट का कारण न होगा।"

मुखिया जी बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाकर लौट गए। ५ ज ने भैरव से कहा—"टोकरी भारी लगती है तो मुझे दे दो।"

भैरव हँसा—"तुम्हारा नियम टूट जायगा।"

"नहीं, दूसरे की सहायता करना हमारा प्रथम धर्म है। इस टोकरी के भीतर की किसी चीज पर मैं ममत्व न रखूंगा।"—५ ज ने हठपूर्वक भैरव के हाथ से वह टोकरी ले ली।

पाँचवे दिन वे लोग बिलकुल पहाड़ों के निकट पहुँच गए। पर्वत की ऊँची-नीची भूमि, वनों की भाँति-भाँति के जड़ी-बूटी और फल-फूलों से भैरव के उद्विग्न मन को बड़ी शांति मिली। नाना प्रकार के नई-नई जाति के वृक्षों में अनोखे पक्षी अपने तरह-तरह के रंगों और मीठे स्वरों से उस एकान्त में रस की वर्षा कर रहे थे।

मैदान की यात्रा से अब पर्वत का आरोहण कठिन श्रम माँगने लगा था लेकिन सुवासित पवन की शीतलता ने उतना ही उस श्रम को सहज कर दिया था। हर ऊँचाई पर एक क्षितिज की सम्भावना और प्रत्येक मोड़ पर एक अनोखे दृश्य के कौतूहल में मन विभक्त हो गया था।

कभी उनका मार्ग पर्वतों की चोटी पर चला जाता था कभी नीचे उतरकर किसी नदी की मनोहर घाटी मिल जाती थी। पर्वतों की कठिनाई को काटकर सोपान-श्रेणी-जैसे खेत। उनके बीच में छोटे-छोटे गाँव, कहीं भारी-भारी शिलाखण्डों के मध्य में होकर बहती हुई, रोष-गर्जन भरी पहाड़ी नदी। कहीं-कहीं हवा के झोंकों में हिलते हुए पेड़ों से निकलती हुई आवाज।

जब वे और भी ऊपर चढ़ गए, ठण्डक बढ़ गई। एक नए ही वातावरण के बीच में अपने को पाकर भैरव प्रसन्न हो उठा। दूर पर

नीची छायाओं से संयुक्त हिमालय की रजतशुभ्र कांति देखकर वह मुग्ध हो गया। प्रकृति की उस विलक्षणता से उसकी भावना में बड़ा अन्तर पड़ गया।

उसने बड़े शहरों की उस भीड़, कोलाहल और जीवन के संघर्ष को याद किया, उसे पार्श्व में रखकर फिर उसने हिम से उद्भासित एकान्त पर विचार किया। मानवी आकांक्षा के पद वहाँ पर नहीं जमे थे। अपना स्वार्थ वहाँ उसे भूला गया। केवल उस रहस्य से भरी प्रकृति के स्रष्टा को ढूंढने के और उसके कोई कामना ही नहीं रह गई थी।

भैरव ने मन्त्र-मुग्ध होकर कहा—"५ ज, तुमने मठ के लिए इतना शून्य एकान्त क्यों चुना ?"

"विचार की शुद्धि के लिए।"

"ऊँचाई पर क्या विचार शुद्ध रहता है ?"

"हाँ, इन पर्वतों को देखो।"

"हाँ, ये नि:सन्देह मनोमुग्धकारी हैं।"

"और भी तो एक बात है। ज्यों-ज्यों ये ऊँचे होते गए हैं त्यों-त्यों जीवन की जटिलता घटती गई है इन पर। अन्त में एक ऊँचाई पर ये बिलकुल ही निर्लेप हो गए हैं। सारी अनेकता खोकर ये एक कैवल्य की प्रतिमा बन गए !"

"मैं नहीं समझा।"

"समझा तो मैं भी कुछ नहीं हूँ।"

"फिर किस आधार पर तुमने यह सब कहा ?"

"एक बाहरी वर्णन है, मित्र। मेरा मतलब महाकाल शिव की इस विहार भूमि से है। इसके सनातन हिम में कोई भी बीज अंकुरित नहीं हो पाता। इसलिए पक्षियों को खाने को दाने नहीं मिलते, न घोंसले बनाने को तिनके ही प्राप्त होते हैं। केवल एक रंग की शुभ्रता जो समय-समय दूरी के भेद से सूर्य की सातों किरणों को प्रतिफलित कर देती है। केवल

एक श्वेत शीत की प्रधानता जो अपने सिवा किसी दूसरे को वहाँ रहने नहीं देती।"—५ ज ने जवाब दिया।

भैरव ने कुछ समझने का-सा नाट्य किया। उसने पूछा—"मठ से हिमालय कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर।"

"मठ में कितनी सरदी पड़ती है ?"

"अधिक नहीं।"

"हिम गिरता है ?"

"गिरता है जाड़ों में, पर ठहरता नहीं।"

"मठ कितना बड़ा है ?"

"पूरा गाँव हैं एक।"

"कितने लोग हैं मठ में ?"

"साधकों की संख्या तो सैंकड़ों है, परन्तु सभी वहाँ नहीं रहते। अपने-अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए देश-देशान्तरों में फैले रहते हैं। सौ-पचास वहाँ भी रहते हैं।"

भैरव ने पूछा—"उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध कहाँ से होता है ?"

"वे सब अपने-आप उपजाते हैं। वहाँ खेती होती है। सब खेती करते हैं। गायें पाली जाती हैं।"

"जो जरूरी चीजें वहाँ नहीं होतीं, उनके लिए क्या दूसरे देशों से व्यापार करते हैं ?"

"व्यापार तो नहीं करते, पर वे चीजें कहीं-न-कहीं से प्राप्त हो ही जाती हैं। कुछ भिक्षा में, कुछ माता जी के भक्तों द्वारा भेंट में मिल जाती हैं। जो चीजें नहीं मिल सकतीं, हम उनकी जरूरत ही नहीं रखते।"

"मुझे कहाँ नियुक्त किया जायेगा ? मठ ही में रहूँगा या कहीं अन्यत्र ?"

"प्रत्येक नए साधक को कुछ समय तक वहीं मठ में रहकर अध्ययन

और अभ्यास करना पड़ता है, उसके बाद ही उसे कोई काम सौंपा जाता है। तभी वह बाहर जाता है।"—५ज ने जवाब दिया।

भैरव का हाथ अब बिलकुल ठीक हो गया था। जब वे लोग मठ के निकट आ पहुँचे तो उसने पूछा—"आज शाम तक पहुँच जायेंगे हम मठ में ?"

"हाँ।"

"तो मैं अब इस हाथ की पट्टी को खोल देता हूँ।"

"अभी रहने दो।"

'नहीं, यह मेरा एक कलंक है। हाथ तो अब बिलकुल ठीक हो गया। फिर क्यों मैं इतना दुर्बल बनकर मठ को जाऊँ ? माता जी इसे देखकर कोई अच्छे विचार न बनायेंगी मेरे लिए अपने मन में।"

५ज ने हँसकर कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो।"

भैरव ने पट्टी खोल दी। उसने हाथ को चारों ओर घुमा-फिराकर देख लिया। अब उसमें कोई कसर नहीं रह गई थी। ५ज ने भी उसकी बात का अनुमोदन किया।

मुखिया जी की दी हुई टोकरी के फल-फूल उन दोनों ने मिलकर उसके दूसरे दिन ही समाप्त कर दिए थे। उसके बाद वे लोग जहाँ भी ठहरते उनका अच्छा अतिथि-सत्कार होता। फिर भैरव ने कहीं से खाने-पीने की चीजें साथ बाँधने की कामना नहीं रखी।

५ज ने कहा—"खाने-पीने की चीजों का संग्रह हमारी दूरदर्शिता समझा जाता है। देखा जाय तो वह हमारा अंधत्व है ?"

भैरव की समझ में वह तर्क गड़ा नहीं। उसने दुविधा में पड़कर गरदन हिला दी।

५ज बोला—"एक छोटी-सी चींटी से लेकर बड़े-से-बड़े हाथी के पेट भरने का जिम्मा भगवान् का है। हम भोजन का संग्रह कर उसकी सत्ता को अस्वीकृत करते हैं।"

संध्या से कुछ पहले ही वे दोनों मित्र मठ में पहुँच गए। दूर से

भैरव ने देखा, वह एक साधारण-सा गाँव था।

"यही है क्या मठ ?"

"हाँ।"

"माता जी किस मकान में रहती हैं ?"

"धीरे-धीरे मालूम हो जायगा।"

दोनों जाकर मठ में पहुँच गए। भैरव को गाँव के बाहर के एक मकान में ठहरने को कहा गया। भैरव ने कहा—"माता जी के दर्शन ?"

५ज ने जवाब दिया—"उनकी इच्छा पर ही उनके दर्शन होते हैं।"

"यह तो बड़ी विचित्र बात है !"

"उनका नियम ही ऐसा है। वह बिलकुल बाहर नहीं निकलतीं। एकान्त में साधना करती रहती हैं।"

"भक्त कहाँ उनके दर्शन करते हैं ?"

"जब वह आज्ञा देती हैं, तब वहीं जाना पड़ता है।"

"वह कब आज्ञा देंगी ?"

"पहले तुम्हारी परीक्षा होगी, उसके अनन्तर।"

भैरव ने कहा—"मित्र, इस समय तो तुम बड़े रूखेपन से उत्तर दे रहे हो। मार्ग में जब तुमने आरम्भ में बातें की थीं तो तुम बड़े सहृदय जान पड़े थे।"

५ज कहने लगा—"ऐसा न समझो बन्धु, मैं तुम्हारे लिए वही हूँ। अब हम मठ के वातावरण में आ गए हैं। यहाँ का बड़ा कड़ा अनुशासन है। हर समय बहुत जागरूक होकर रहना पड़ता है। मुझे अभी माता जी के सामने जाकर अपनी यात्रा का सारा कार्यक्रम रखना है, मैं उसी के ध्यान में पड़ा हूँ।"

"अब तुम कब आओगे ?"

"जब समय मिलेगा। मैं माता जी के पास जाते ही अभी तुम्हारे समाचार दूँगा।"

"मुझे नहीं ले जा सकते उनके पास ?"

"बिना उनकी आज्ञा के नहीं।"

"तब तक मैं यहाँ क्या करूँ ?"

"बहुत सावधान और सतर्क होकर रहना कि कहीं तुम अयोग्य समझकर यहाँ से निकाल न दिए जाओ।"

"सावधानी कैसी ?"

"यहाँ भावना के बिगड़ जाने पर भी मानव-पतन माना जाता है। इसलिए कर्म की तो बात ही जाने दो, तुम्हें भावना में भी पवित्र रहना है।"

"कैसे है तुम्हारी भावना की पवित्रता ?"

"सारा संसार केवल भाई के रूप में है, उसके साथ और हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

"अच्छी बात है।"

"भूतकाल और यहाँ के अतिरिक्त दूसरे देशों की स्मृति को बिलकुल अपने अन्तर पटल में से खुरचकर मिटा दो। केवल वर्त्तमान में निवास करो। भविष्य के लालच और उसकी आशा के साथ भी क्रीड़ा न करना।"

"क्यों, भविष्य क्या बुरा है ?"

"भविष्य हमारे हाथ में नहीं है। यदि भविष्य को तुम अपने मनसूबों से रँगना शुरू करोगे तो धोखा खा जाओगे।"—५ज जाने लगा।

भैरव ने आकुल होकर कहा—"ठहरो मित्र, अभी जाओ नहीं। कुछ और पूछना है मुझे।"

"जल्दी करो, मुझे देर हो रही है।"

भैरव बड़ा अधीर हो उठा। रोने के स्वर में पूछने लगा—"बन्धु, भूतकाल में गहरे पड़े हुए मानस के चित्रों और अक्षरों को कैसे खोदकर मिटा दूँगा ?"

"कर्म से, वाणी से और दृढ़ इच्छा से।"

"वह कैसे ?"

"माता के नाम की दुहाई ! जब संकट में पड़ो जोर-जोर से माता की जय पुकारो।"

"और भविष्य के बनते हुए चित्रों को कैसे मिटा दूंगा !"

"माता का नाम ही मन्त्र है। आरम्भ में धीरे-धीरे नहीं जोर-जोर से करना पड़ेगा, बाद को जब उसमें बल पकड़ लोगे तो स्वयं ही धीरे-धीरे हो जायगा फिर तो वह तुम्हारी साँस में चलने लगेगा। माता की जय हो !" ५ ज जाने लगा—"माता की जय हो, यही हमारे मठ में सिद्धि की चाबी है। इसी जय-नाद पर हम एक-दूसरे से मिलते-बिछुड़ते हैं और इसी पर निरन्तर हम सोते और जगते हैं—माता की जय हो !"

भैरव ने भी हाथ जोड़कर कहा—"माता की जय हो !"

५ ज वहाँ से न जाने कहाँ को चला गया। भैरव उस एकान्त कुटीर में अकेला ही रह गया। उस कमरे में कोई साज-सामान नहीं था। भूमि पर एक कोने में एक चटाई के ऊपर कबल बिछे हुए थे। कुछ वहीं पर लपेट कर रखे हुए थे। एक कोने में एक सुराही और लोटा था, दूसरे में एक आग की सिगडी।

धरती पर सन्ध्या के रंग फैलकर कालिमा में सिमटने लगे थे। भैरव कुटीर के बाहर चला गया। रमणीक नदी की घाटी थी। उसका कुटीर खेतों के बीच में अकेला ही था। नदी भी समीप ही थी। बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी थी। उसके ऊपर बहुत से मकान थे। एक बहुत ऊँचा मन्दिर-सा ज्ञात होता था, उसके ऊपर का कलश अब भी चमक रहा था। नदी उस पहाड़ी के आधार को ही जाती ज्ञात हो रही थी। और भी इधर-उधर कई मकान थे। पहाड़ी पर जाने के लिए सोपान-पंक्ति बनी हुई थी। भैरव को ऐसा जान पड़ा अवश्य ही माता का निवास उसी पहाड़ी पर है।

उस पहाड़ी के पीछे और विशाल पर्वत खड़े थे। कुछ घने जंगलों से भरे थे, कुछ हरियाली से विहीन थे। उनके पीछे और भी धूसर रंगों

में खोए हुए पर्वतों के विशाल आकार थे। सबसे पीछे और ऊँचाई पर हिमालय पर्वत की श्रेणियाँ जान पड़ती थीं। सूर्य की सुनहरी किरणों का आभास अब भी उन पर दिखाई दे रहा था।

उसका कुटीर एकमंजिला ही था, लेकिन उसके साथ और भी कई कमरे सम्बद्ध जान पड़ते थे। कुछ में से धुंआ आ रहा था और कुछ में गायें और बछियें रम्भा रही थीं। सभी कुटीर चारों ओर दीवारों से घिरे हुए थे।

भैरव ने देखा चारों ओर खेतों में कई प्रकार के वृक्ष थे—कुछ पत्तों से परिपूर्ण थे, कुछ में निरावरण जाड़े बिता देने के बाद अंकुर फूटने शुरू हुए थे, कुछ के वृन्तो में श्वेत और कुछ के रक्ताभ-नीलिमा मिश्रित फूल खिल रहे थे। भैरव ने अनुमान लगाया वे पहाड़ी फल-फूलों के पेड़ होंगे। उनके फलो को खाया होगा उसने पर पेड़ और फूलों से कोई पहचान न थी उसे।

खेतों में जौ और गेहूँ लहलहा रहे थे। कही सरसों की क्यारियों में पीतिमा फैलने लगी थी। धरती पर से धूप जा चुकी थी लेकिन आकाश में कुछ रेशमी और मखमली बादलों के रंग नाना प्रकार के चित्र बना-बनाकर मिटते जा रहे थे और वृक्षों में पक्षी समवेत स्वर से गा रहे थे और कही आकाश में उड़ते हुए बड़े मनोरम प्रतीत हो रहे थे।

बडे धीर और सिजित चरणों से नए रंगों के और नए स्वरों को लिए हुए ऋतु आ रही थी। भैरव ने अनुमान लगाया ऐसे मोहक वेश में वह मैदान पर नही आती। वह कुछ देर तक आत्म-विस्मृत होकर प्रकृति के उस माया-जाल में फँसता ही रह गया। अँधेरा अब बढ़ चला था। उसने देखा सामने से कोई त्रिशूलधारी एक हाथ में दीपक और दूसरे में आग की अँगीठी लटकाए उसके कुटीर की दिशा में आ रहा है। भैरव उसके आने से पूर्व अपने कुटीर के भीतर चला गया।

१५

त्रिशूलिनी

भैरव के भीतर जाते ही वह व्यक्ति भी वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने कहा—"माता की जय !"

भैरव ने भी हाथ जोड़कर उसके अभिवादन को लौटाया—"माता की जय !"

उसने आकर हाथ के दीपक से उस कुटीर के दीपक को प्रज्वलित कर दिया और उस कोने में रखी हुई सिगड़ी में अपनी सिगड़ी से जले हुए कोयले रख दिए उसके कोयले सुलगाने भर को। उसके हाथ में जो त्रिशूल था, उसे उसने भूमि पर नहीं रखा, हाथ ही में लिए-लिए उसने अपने दोनों कर्त्तव्यों को पूर्त्ति दी।

भैरव उस सौम्य मूर्त्ति को देखता ही रह गया। नंगे सिर, कमर तक लटकती हुई उसकी केशराशि थी, रूखी और भस्म-चर्चित। उसके माथे पर भी भस्म की रेखाएँ थीं। बिलकुल पैरों तक लटकता हुआ एक चौड़ी बाँह का कुरता उसने पहन रखा था। उसके मुख में एक अद्भुत तेज प्रकाशमान था, उसके सारे शरीर में एक सौन्दर्य फूटा पड़ रहा था, उसे ढककर जितना छिपा देने की कोशिश की गई, वह उतना ही हृदयवेधी हो उठा था। भैरव उसके पीन वक्षस्थल को देखकर बड़े विस्मय में पड़ गया।

उसने पूछा—"तुम कौन हो ?"

"मैं इस मठ का एक स्वयंसेवक हूँ। मेरा नाम भैरव है।"

"भैरव मेरा भी नाम है। बड़ा विचित्र यह नामों का सामंजस्य है। लेकिन तुम्हें देखकर मेरी शंकाएँ जाग उठी हैं। ऐसा जान पड़ता

है तुमने झूठे वेश में अपने को ढका है। वेश ही नहीं तुमने गलत भाषा का भी प्रयोग किया है।"

"नहीं, कोई झूठा प्रयोग नहीं है, जो कुछ है सब स्पष्ट ही है।"

"स्पष्ट कहां है सुन्दरी ! तुम नारी हो और पुरुष की भूमिका में क्या ठग नहीं रही हो ?"

"नहीं, ठग रहा हूँ।"

"कैसी भाषा है यह ?"

"आश्रम की नीति को रखने के लिए, उसके नियम की प्रतिष्ठा के लिए, भोले युवक, तुम्हें सब ज्ञात हो जाएगा। शीघ्र ही।"

"झूठ के प्रसार का यह कैसा आश्रम का नियम है ?"—भैरव ने पूछा।

"आश्रम का नियम है यहाँ माता जी के सिवा दूसरी कोई नारी नहीं रहती, इसी की प्रतिष्ठा के लिए मैंने यह वेश बनाया है, और मैं ऐसी भाषा बोलता हूँ।"

'तुम यह जो पुरुष का अभिनय कर रही हो·· "

"सावधान !" बीच ही में उस त्रिशूलिनी ने भैरव की जीभ पकड़ ली, "मेरे इस अभिनय को सत्य का रूप देने के लिए तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।"

"क्यों ?"

"सारा विश्व एक अभिनय ही है। हमें अभिनय करते-करते ही वही सत्य में प्राप्त हो जाता है। मुझे नारी संबोधन दोगे, मुझे नारी समझोगे तो तुम मेरा शायद इतना बिगाड़ न कर सकोगे जितना अपना पतन।"

"देखता हूँ इस आश्रम में दिखावे पर अधिक जोर दिया जा रहा है।"

"युवक, अगर तुम अपनी भावना में अडिग हो तो यह दिखावा तुम्हें कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकेगा।"—त्रिशूली भैरव बोला।

भैरव ने उसकी बात को तोला और वह समझ गया। उसने उत्तर दिया—"तुम्हारा कहना ठीक है। यही उपदेश मुझे ५ज ने भी दिया था। तुम ठीक कह रहे हो भैरव, यह मेरा भैरव है जो धोखा खा रहा था।"

"भावना को वश में रखो, कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा तुम्हारा।"—त्रिशूली भैरव जाने लगा।

"ठहरो भैरव!"

"क्यों? किसलिए? मुझे कई जगह जाना है।"

"भैरव! तुम मेरे नाम की ही प्रतिध्वनि नहीं हो। तुम मेरी कामना की भी छाया हो। कुछ देर ऐसे ही खड़े रहो।"

"हमें व्यर्थ समय नष्ट करना नहीं आता। तुम्हें भी यही तत्त्व सीखना चाहिए।"

"केवल एक बात का उत्तर दो।"

दूसरा भैरव मुसकराकर बोला—"कहो भी तो। ऐसा जान पड़ता है, मानो कहीं तुम्हें देखा भी है।"

"यही मुझे भी भासता है। तुम्हारा विवाह हो गया?"

भैरव की भौंहों में बल पड़े।

पहला भैरव कहने लगा—"नाराज क्यों होते हो?"

"विवाह नाम का इस मठ में कोई शब्द नहीं है।"

"अब तुम कब आओगे यहाँ?"

"जब काम पड़ जाएगा।"—कहते हुए वह त्रिशूलिनी, पुरुष-वेशधारिणी नारी वहाँ से चली गई।

भैरव अपने मन में सोचने लगा—"पुरुष के वेश में छिपी हुई यह नारी, राख में दबी हुई आग की तरह से बड़ी भयानक जान पड़ती है मुझे। कैसे यहाँ के साधकों का मन अन्यथा भावनाओं में न टूट जाता होगा?"

"इसके मुख में कुछ सानुरूपता क्या बासो की नहीं है? बासो अपने विश्वासघात के कारण मेरे हृदय से उतर गई, उसकी जगह यह क्यों ले

रही है ?"

अचानक भैरव को याद आया उसका मन अतीत में चला गया था। उसे ५ ज का उपदेश याद आया। उसने अपना मन वहाँ से खींचकर वर्त्तमान में रखा। वह जोर-जोर से चिल्ला उठा—"माता की जय ! माता की जय !!"

फिर उसके सामने उसकी भावना में वह त्रिशूलिनी आकर खड़ी हो गई। मन-ही-मन उसने उससे प्रश्न किया—"हे सुन्दरी, इस शून्यता में ऐसे रूखे वातावरण में तुमने क्यों भस्म मलकर अपने यौवन की हँसी उड़ा दी ?"

मानो उसने उत्तर दिया—"हे भोले युवक, क्या तुम प्रकृति के ऐसे अटल सत्य को नहीं जानते ? यौवन एक क्षणिकता है, एक धोखा है, जो आने से पहले ही चला जाता है। कोई उसे बन्दी नहीं कर सकता, वह कहाँ को चला जाता है, यह भी कोई नहीं जानता।"

"बाल्यकाल और वृद्धावस्था भी तो ऐसे ही समय है। वे भी तो यौवन के समान ही चंचल हैं। जब बाल्यकाल में हम क्रीड़ाशील रहे और वृद्धावस्था में असहाय और जर्जर रह जाएँगे तो क्यों यौवन का गुण छोड़ दें ? यौवन क्षणिक है इसीलिए तो हे सुन्दरी ! क्षण भर यहाँ बैठ जाओ—हम इसकी क्षणभंगुरता का ही एक गीत क्यों न गा लें ?"

उस कल्पना की सुन्दरी ने उत्तर दिया—"बाल्यकाल एक विस्मृति की आयु थी, वृद्धावस्था जरा-जीर्णता की। इन दोनों विवशताओं के बीच में यौवन ही एक ऐसा समय है जब तुम उस जन्म देने वाले प्रभु को पहचानने की कोशिश कर सकते हो। अगर ऐसी सुविधा में भी तुम हाड़-चाम की ही ओर आकृष्ट रह गए तो फिर यह नर-जन्म का सुयोग यों ही चला जाएगा।"

हठात् भैरव को कुछ याद पड़ा। वह मन-ही-मन बोला—"अब क्या हुआ ? उधर भूतकाल में बहक गया था तो अब भविष्य के जाल बुनने लगा। नहीं, मैं वर्त्तमान में लौट आता हूँ।" उसके मुख से फिर

जोर-जोर से निकल पड़ा—"माता की जय ! माता की जय !!"

उसी समय—"माता की जय !" की पुकार के साथ ही वह त्रिशूली भैरव फिर आ पहुँचा उस कुटीर में। उसके हाथ में कपड़े से ढकी हुई एक थाली थी।

उसने आते ही कहा—"भैरव, तुम इस कोने में चुपचाप क्यों बैठ गए हो ? आग की सिगड़ी क्यों उतनी दूर रहने दी है ?"

"उसका क्या करूँ ?"

"क्या तुम्हें यहाँ जाड़ा नहीं ज्ञात होता ? सुबह-शाम तो होता ही है। वह तुम्हारे तापने के लिए ही यहाँ रखी गई है।"

"और यह क्या लाए हो ?"

"तुम्हारे लिए भोजन। हाथ-पैर धो लो। तुम्हें भूख लग गई होगी !"

"तुम बड़े कृपालु हो।"—भैरव ने कहा।

"माता के सिवा यहाँ और किसी की कृपा नहीं मानी जाती। उठो, भोजन कर लो।"—त्रिशूली भैरव ने कहा। अब भी त्रिशूल उसके हाथ में था। उसने भोजन की थाली को एक चौकी पर रख दिया।

भैरव ने उठकर सुराही में से पानी लिया और हाथ धोने के लिए बाहर चला गया। उसके मन के भीतर नाना प्रकार की विरोधी भावनाओं का तुमुल युद्ध हो रहा था। जब वह हाथ धोकर आया तो उसने त्रिशूली को मुसकराते हुए पाया।

भैरव कुछ हतप्रभ-सा प्रतीत हुआ। वह उससे कोई बात करना चाहता था, कुछ भी नहीं कर सका। त्रिशूली चुप ही रहा। भैरव को एक विचार सूझ गया। उसने पूछा—"तुम इस त्रिशूल को हर समय अपने साथ क्यों रखते हो ?"

"क्योंकि यह मेरा रक्षक है।"

"तुम्हें कैसी रक्षा चाहिए ? मूल्यवान आभूषण तो कोई भी तुम्हारे

अंग में नहीं है।"

"मेरा स्वरूप उससे कहीं बहुत मूल्यवान है। फिर यह मुझे—इसके तीखे शूल जरूरी हैं। कभी इनकी आवश्यकता पड़ सकती है।"

'किसलिए ?"

"कभी कोई मेरा या अपना स्वरूप भूल सकता है। इसकी सहायता से याद दिला दूंगा।"

"तुम इसे कभी भूमि पर नहीं टेकते क्यों ?"

"यह इसका अपमान है। हाथ में लेने से यह हर समय मेरी चेतना में सजीव रहता है।"

"माता जी की जटाओं में मैंने सुना है एक भयंकर काला नाग रहता है। क्या यह सच है ?"

"क्यों नहीं, मेरी जटाओं में भी तो है।"

"दिखाओ तो।"—भैरव उसके पीछे जाने लगा।

त्रिशूली ने तुरन्त ही अपना त्रिशूल आगे बढ़ाया और उसकी ओर घूमकर कहने लगा—"सावधान, क्यों उनके नाग होने में संशय करते हो ? अरे नए साधक, इसका दंश प्राणघातक है। बच न सकोगे फिर कभी।"

"जीवन को मृत्यु के ग्रास के लिए ही रचना हुई है। मौत से डरना कायरता है। मैं नहीं डरूँगा। तुम्हारा गुण आकर्षण है, मैं अपनी दुर्बलता से नहीं, तुम्हारी प्रबलता से तुम्हारी ओर खिंच रहा हूँ। यह केवल एक प्राकृतिकता है। इसके लिए हम में से कौन दोषी है ?"—भैरव उस भैरवी की ओर आकृष्ट हुआ।

भैरवी उस कमरे में दौड़ती हुई कहने लगी—"देखो, तुम अभी हमारे आश्रम में केवल अतिथि के रूप में हो। अगर तुम्हारी भयंकर-वादियों में दीक्षा हो चुकी होती तो इतने ही पाप के लिए तुम्हें पेड़ से बाँध गोली से उड़ा दिया जाता।"

"पाप ? कैसा पाप ?"

"पाप ही जैसा और कैसा ?"

"ये दोनों केवल परिभाषाएँ हैं।"

"ठीक है, सबकी परिभाषाएँ अलग-अलग हैं। सब अलग रीति से उन्हें मानते हैं। तुम्हें यहाँ रहने के लिए हमारी परिभाषा को मानना पड़ेगा।"

"क्या है तुम्हारे पाप की परिभाषा ?"

"तुम मुझे नहीं छू सकते हो। कोई भी मुझे छू नहीं सकता भयंकर-वादियों के इस मठ में।"

"क्यों, तुम अछूत क्यों हो ?"

"पाप और पुण्य की परिभाषाओं का तर्क साथ नहीं दे सकता। मुझे कोई नहीं छू सकता—यह एक अटल विधान है। इसका अपवादी गोली से उड़ा दिया जाएगा—यह दूसरा सत्य है।"

"और जो मानसिक जगत में तुमको छू लूँ ? तुमको पकड़कर अपने मन में बिठा लूँ ?—तो क्या होगा ?"

भैरवी ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"तो भी वही दण्ड !"

"असम्भव है !" भैरव खिलखिलाकर हँस पड़ा—"असम्भव है ! मन की थाह पा कौन सकता है ?"

"इस घमण्ड में न रहो ! अभी तुम इस भयंकरवाद की केवल बाहरी परिधि के बाहर खड़े हो। अभी तुम्हें इसके एक रहस्य का भी पता नहीं है।"

"कुछ बताओ भी तो।"

"माता के निकट जाने पर माता तुम्हारे मन को पुस्तक के पृष्ठ की भाँति पढ़ सकती हैं। तुम अपने मन के किसी भेद को मन की किसी तह में छिपा नहीं सकते, इसलिए मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूँ।"

"मेरी भावना को माता पढ़ सकती है ? कैसे मित्र, बताओगे नहीं ?"

"अज्ञ लोग ही भावना की निस्सारता समझते हैं। वास्तव में

भावना ही कर्म का बीज है। जो-कुछ यह सारा भौतिक प्रपंच हमारी इन्द्रियों के सामने है वह भावना का ही प्रसार है। विचार की सूक्ष्मता से ही इस सारी स्थूलता का जन्म हुआ है। खाना खा लो।"

"खा लूँगा, तुम चली जाओ।"

भैरवी चौंककर बोली—"यह क्या कहते हो? भाषा ठीक करो अपनी तभी भावना भी ठीक रहेगी।"

"विचित्र सत्य है तुम्हारा। और सामने जो तुम इस आकर्षण-भरे रूप को लेकर खड़ी हो वह क्या पुरुष के परिच्छेद में ढक गया? सुन्दरी! ऐसे कौन-कौन ठगे जा रहे हैं इस भयंकरवादियों के क्लब में मुझे भी तो बताओ।"—भैरव ने पूछा।

"तुम फिर अपनी हठ पर अड़ गए हो। तुम हमारे आश्रम में भरती होने के लिए आए-ही-आए हो, अभी से उसके प्रति तुम्हारा यह विद्रोह?"—भैरवी ने रोष-मिश्रित स्वर से कहा।

"तुम कितना ही क्रोध क्यों न करो मेरे ऊपर। मैं एक बात कहूँगा—तुम मेरी दृष्टि में समझदार हो। नर और नारी—ये सृष्टि के दो भेद हैं, एक भेद को बिलकुल मिटा देने से कम भारी अन्याय न हो जाएगा? लेकिन प्रकृति में कोई अन्याय अधिक दिन नहीं चल सकता। जो प्रतिक्रिया उपजेगी उसमें तुम्हारा यह आश्रम नहीं ठहर सकेगा। शायद इसीलिए तुमने इसका नाम भयंकरवाद रखा है।"

भैरवी हँसकर बोली—"बड़ा कड़ा विधान है हमारा, और हम दण्ड देने में बड़ी उग्रता का व्यवहार करते हैं, इसीलिए भयंकरवादी हैं।"

"दीख जायगा फिर, मृत्यु का एक ही दिन तो है।"

"युवक, मुझे तुम्हारी विचारणा पर दया आती है और तुम्हारी अवस्था पर भी तो, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम अपने घर को लौट सकते हो अभी सकुशल।"

"मैं ५ज के साथ प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ और इसके सिवा मैंने तुम्हारे दर्शन कर लिए हैं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा अब।"

"क्या तुम्हें अपने माता-पिता का मोह है ?"

"वे शायद तुम भयंकरवादियों से भी अधिक भयंकर हैं।"

भैरवी अपनी हंसी को ग्रास बनाकर बोली—"ऐसा अजीब जीव मैंने कोई नहीं देखा अब तक। क्यों तुम्हें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं ?"

"तुम्हारे प्रेम के लिए इतनी बड़ी कीमत चुका देने को तैयार हूँ और तुम्हारे फिर भी कोई प्रतीति नहीं उपजती !"

"तुम फिर बकने लगे।"

"ये मेरे प्रेम के गीत हैं, भले ही इनमें कोई ताल और तुक न हो, हे रूपसि !"

भैरवी की भौंहें तन गईं—"सावधान ! मैं सीधी माता के पास जाकर तुम्हारे विरुद्ध अभियोग रख दूंगा अगर तुम भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा न करो तो।"

"अगर तुम सदय हो जाओ तो मेरे प्राणों के ये स्पन्दन कविता और गीत में निकल पड़ेंगे—हे रूपसि !"

"तुम्हें कोई भय नहीं ?"

"प्रेम निर्भयता ही तो है। भयंकरवादियों के बीच में मुझे कोई भय नहीं है।"

"मैं अब तुम्हें कोई अवसर न दूंगा। सीधा माता के पास जा रहा हूँ।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूं ?"

"तुम नहीं आ सकते।"—भैरवी अपना त्रिशूल हवा में चमकाती हुई द्रुत पगों से चली गई।

भैरव भोजन पर टूट पड़ा—"भोजन तो सुस्वादु है। इसमें किसी रस का अभाव नहीं जान पड़ता। फिर यह भयंकरवादिता केवल नारी के ही बहिष्कार पर क्यों टूट पड़ी है !···देखूं तो सही वह माता से जाकर क्या कहती है ? जो भी कहे, कहने दो। मैं कुछ न छिपाऊँगा। प्रकृति के इस रहस्य को छिपा भी कौन सकता है ? पुरुषों के कपड़े

पहना देने से ही वह कौन-सी छिप गई ?"

भैरव मन-ही-मन हँसने लगा—"अगर वह पुरुषों की दाढ़ी मूंछ भी लगाए रहती तो अंगों की कमनीयता और कण्ठ की कोमलता को कहाँ छिपाती ?"

भैरवी आकर भैरव के सारे ध्यान को तोड़ गई। ५ ज उसे जो मन्त्र दे गया था केवल वर्त्तमान में निवास करने का, वह भी टूट गया। माता की जय अब माता के भय में बदल गई थी। भैरव रह-रहकर यही सोच रहा था, भैरवी ने माता से जाकर मेरी शिकायत कर दी होगी, अब जरूर कोई-न-कोई मुझे बुलाने आता ही होगा।

उसी डर में भैरव ने भोजन किया बहुत धीरे-धीरे कि कोई बुलाने आयेगा तो कुछ समय और ले लूंगा अपने बचाव के उपाय सोचने के लिए। लेकिन कोई नहीं आया। भोजन के बाद भैरव को जल्दी ही नीद आ गई और वह सो गया द्वार ढककर।

सोते-सोते उसके मन में विचार आया—'माता विचारों को जान लेती हैं दूसरों के ? बड़े अचरज की बात है ! इन लोगों ने मिलकर यह कोई पाखण्ड फैला रखा है, कौन किसी के मन की बात जान सकता है ? देखा जायगा, माता और मेरी यह दोनों की परीक्षा है। कौन विजयी होगा—यह संदिग्ध है।' उसे शीघ्र ही नींद आ गई।

दूसरे दिन सुबह वह उठकर नदी-किनारे शौच जाकर मुंह-हाथ धो आया। फिर वही त्रिशूलधारिणी भैरवी आ पहुँची, उसका नाश्ता और चाय लेकर। उसने आते ही जय-नाद किया—"माता की जय !"

"देवी की जय !"—भैरव ने प्रत्युत्तर में कहा।

ताज्जुब से वह उसे देखने लगी—"यह कौन देवी है ?"

"कोई भी हो सकती है।"

"तुम मुझे बड़े निर्भीक जान पड़ते हो !"—कहते हुए उसने भैरव का नाश्ता और चाय उसके सामने रख दिया।

"क्यों, तुमने माता को मेरे अभियोग की सूचना नहीं दी ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं दी ?"

"मैं सोचता हूँ, मुझे तुम्हारा बिगाड़ कर क्या लाभ होगा ?"

"तब तो तुम्हारे लिए मेरी और भी अधिक भक्ति हो गई। तुम्हें धन्य है। एक ही बात खराबी की है। मुझे तुम्हारा यह आधा खुला वेश पसन्द नहीं है। अगर तुम मेरी बात मानो तो···"

"क्या बात है तुम्हारी ?"

"चलो, हम दोनों साथ-साथ स्वर्गारोहण को चले जायँ, यह धरती बड़ी कठोर है।"

"कैसा स्वर्गारोहण ?"

"हिमालय पर चढ़कर वह मार्ग मिल जाता है। जिधर से होकर पाण्डव गए थे। कितना सुन्दर यह हिमालय है, आज तक मैंने इसे नहीं देखा था इसलिए मेरे दूसरे विचार थे।"

"तुम बड़ी अजीब बातें करते हो, मैं चला।"

"अब तो तुम कुछ न कहोगे किसी से मेरे विरुद्ध ?"

"आज तुमने अपनी वाणी और भावना को संयत ही रखा है।"

"वाणी को रखा है, भावना की बात तुम्हें कैसे ज्ञात हो गई ? क्या तुम भी भावना को पढ़ सकते हो ?"

भैरवी बोली—"तुम शायद अब सीमा तोड़ दोगे। मैं चला जाता हूँ।" भैरवी चली गई।

भैरव के नाश्ता कर चुकने के थोड़ी देर बाद ५ ज आ पहुँचा, उसे देखते ही भैरव ने कहा—"जय देवी की !"

५ ज ने कुछ आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा—"जय माता की, मित्र ! तुम यह किस देवी की जय पुकारते हो ?"

"जो देवी मैंने यहाँ देखी है।"

"तुम एक ही रात में यह कहाँ बहक गए, मित्र ?"— ५ ज ने पूछा।

"जिसे देखा है मैं उसी की जय पुकार रहा हूँ। मैं प्रकृतिवादी हूँ, कल्पना को नहीं मानता।"

"किसे देखा है तुमने ? कौन देवी है यहाँ हमारे आश्रम में माता को छोड़कर ?"

"तुम क्यों नहीं जानोगे उसे ? वह त्रिशूलिनी ? उसे छद्मवेश में तुम लोगों ने जितना ढका है, वह उतनी ही खुल पड़ी !"

"मित्र, अगर तुम इस प्रकार बहक जाओगे तो कैसे वर्त्तमान को सँभाल सकोगे ? और कैसे मैं तुम्हें दीक्षा के लिए तैयार कर सकूँगा ?"

"तुम्हारे इस वर्त्तमान की सँभाल में क्या रखा है ?"

"तुम अपने को प्रकृतिवादी कहते थे। असलियत वर्त्तमान ही में है। भूत और भविष्य ये दोनों एक कल्पना है।"

"तुम्हारा दर्शन समझ नहीं पड़ता। कभी तुम भावना को ही सब कुछ बताते हो, कभी कल्पना से घृणा करना सिखाते हो।"

"भावना वह विचारणा है जो कर्म में बदलती जाती है और कल्पना केवल हवाई उड़ान है जिसका भौतिक जगत से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

"भाई, मेरा दर्शन शास्त्र में इतना प्रम नहीं है। मैं तुमसे पूछता हूँ वह त्रिशूलिनी कौन है ?"

"तुम्हारी दुर्बलता है, मित्र। उसकी कल्पना में न खो जाओ। तुम्हें पछताना पड़ेगा।"

"मुझे तो वह मेरी शक्ति जान पड़ती है। मैंने उसे कहीं और देखा है।"

"असम्भव !"

"तुम जन्मजन्मान्तरों की बात मानते हो। किसी जन्म में जरूर मैंने उसे देखा है, मित्र।"

"तुम्हें अपने मन के सूत्र अपनी बुद्धि के हाथ में देने उचित हैं। ऐसा नहीं कि बाहर की कोई चीज तुम्हें घसीटती फिरे।"

"फिर वह त्रिशूलधारिणी कौन है ?"

"त्रिशूलधारी कहो ।"

"त्रिशूलधारी ही सही । वह कौन है ?"

"वह एक स्वयंसेवक है ।"

"मैं उससे प्रेम करता हूँ ।"

"तुम उससे प्रेम नहीं कर सकते । तुम दैहिक प्रेम की बात कर रहे हो—तुच्छ स्वार्थ का प्रेम !"

"नहीं, मैं बिशुद्ध प्रेम की बात कहता हूँ ।"

"उसके कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती । वह एक में जाकर ऐसी लालसा से केन्द्रित भी नहीं होता । सृष्टि पर सर्वत्र ही तुम प्रेम करने के लिए हो । वह एक मानी हुई बात है, उसे कहा नहीं जायगा—कहते ही वह अशुद्ध हो जाता है । कहने ही से उसमें लालसा समा जाती है ।"

"अच्छा बन्धु ।"

"उसका त्रिशूल बड़ा तीखा है, वह तुम्हारी लालसा को छेदकर पार हो जायगा । केवल वर्त्तमान में रहो । तुम्हारे सुख का यही एक मन्त्र है ।"

"भूतकाल को तो मैंने मिटा दिया है, मित्र । उसके वे जो स्मृति में खुदे हुए बहुत गहरे अंक हैं उनमें मैं वर्त्तमान को ही पीस-पीसकर भर दे रहा हूँ । और यह भविष्य, मेरे निकट आकर यही तो वर्त्तमान बनता जा रहा है । बहुत सुन्दर, जो कहोगे तुम, तुम्हारी आज्ञा मानने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ ।"

"मैंने माता जी से तुम्हारे लिए बातें की हैं । वह अभी कार्य-व्यस्त हैं । शीघ्र ही जब उन्हें फुरसत मिल जायगी तो मैं तुम्हें बुला ले जाऊँगा ।"

"तब तक मैं यहाँ क्या करूँ ?"

"जो तुम्हारे मन हो ।"

"जहाँ मैं चाहूँ जा सकता हूँ ?"

"नहीं, सब जगह चौकी-पहरा है। बिना प्रवेश-चिह्न या प्रवेश-शब्द के तुम कहीं न जा सकोगे।"

"वन-पर्वतों में तो कोई निषेध न होगा ?"

"वहाँ क्यों होगा ? लेकिन तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता क्या है ?"

"यहाँ बैठे-बैठे अकेले मन घबरा उठेगा।"

"मन के भीतर घुस पड़ो, बन्धु ! वहाँ क्या बाहर से कुछ कम विस्तार है ? सारा बाहरी जगत उसमें समाया हुआ है। मन के अन्धकार में दीपक जलाओ भावना का, फिर सब-कुछ घर बैठे ही मिल जायगा।"

"लेकिन तुमने भूत और भविष्य के चित्रों का निषेध किया है।"

"भूत चिन्ता का दूसरा नाम है और भविष्य आशा का, ये दोनों मन के मैल हैं। शुद्ध सात्विकता वर्त्तमान की है—वही तो असली बन्धन-मुक्त भावना है, कोई उलझन ही नहीं। बिना प्रयास ही सब-कुछ होने लगता है।"

"मैं कुछ नहीं समझता तुम्हारी बातें।"

"प्रयास करो, प्रीति रखो, प्रतीति उपजाओ तो सब कुछ हो जायगा। सब कुछ समझ में आने लगेगा, अपने-आप। सच्चे जिज्ञासु पर रहस्य स्वतः ही खुल जाता है।"—यह कह चला गया।

भैरव कुछ देर बैठा रहा। बाहर धूप आ गई थी। वह वहाँ चला गया। गायें वनों को जा रही थीं। कोई भी उसे उसकी तरह अवकाश में नहीं दिखाई दिया। उसे धूप में तेजी मालूम देने लगी, वह फिर उठकर भीतर चला गया।

१६

खंपोलामा

अंत में शीत, श्रम, ऊँचाई और भूख-प्यास के कष्टों को सहन करते हुए वे दोनों आत्मा के अन्वेषक खंपोलामा के मठ में पहुँच ही तो गए।

उसकी स्थिति अपने-आप बोल उठी थी। कलजन दूर ही से चिल्लाया—"रिंबूची, मैं तो समझता हूँ मठ यही है। लेकिन इसके पास के मैदान में पंख फैलाए यह जो विशालकाय चिड़िया पड़ी है, हमारी परीक्षा के लिए महाराज ने कोई लीला तो नहीं रची है ?"

रिंबूची बोला—"मुझे तो यह कोई मशीन जान पड़ती है। मैंने ल्हासा में जरूर इसका चित्र देखा है।"

"मशीन ? इतनी बड़ी मशीन ? एक हजार कुली भी तो इसे इन पहाड़ों पर नहीं चढ़ा सकते, फिर आई किस रास्ते ?"

रिंबूची ने कहा—"चलो, उसके नजदीक जाकर अपना भ्रम दूर कर लें।"

कलजन सम्मत नहीं हुआ—"अपने इष्ट से बहको नहीं, भाई। सीधे मठ को ही चलो।"

दोनों उधर ही बढ़े। छोटा, पर निर्माण में बड़ा ठोस वह मठ था। उसके निकट ही हिम-सिंचित, शुद्ध स्फटिक के रंग में एक जल की धारा लहराती थी। पेड़-पौधों का कहीं नाम नहीं।

वह इमारत तीन तल की थी। एक तल धरती के नीचे था, उसका नाम था पेट-पाताल। दूसरा, बीच का कहलाता था दिल-दुनिया और सबसे ऊँचा जो नीलाकाश में मस्तक ऊँचा किए हुए था, उसकी संज्ञा

थी—सिर-सरग।

बाहर से केवल दो ही तल उन्हें दिखाई दिए। वे दोनों मठ के द्वार पर जा पहुँचे। द्वार बन्द था। उनके जाते ही वहाँ एक नंगा मनुष्य उन्हें दिखाई दिया। उसके सिर पर लम्बे-सूखे बाल थे। दाढ़ी-मूंछ का पता नहीं था। कमर में भेड़ की खाल लपेट रखी थी।

कलजन ने केवल आँख के इशारे से रिंबूची को बता दिया कि वह गुरुदेव हैं, जिनको लक्ष्य बनाकर वे दोनों घर छोड़कर चले आए हैं। दोनों उनके चरणों में ऐसे खिच गए जैसे चुम्बक के गिरि पर दो छोटी-छोटी लोहे की कीलें खिच जाती है।

"कौन हो रे तुम ? मेरे पैरों में क्या ढूंढ रहे हो ?"—और भी कर्कश स्वर में उसने पूछा।

कई बार उनके चरणों में माथा टेककर कलजन ने जवाब दिया—"महाराज, हम आपकी ही आज्ञा-पालन के लिए यहाँ आए हैं।"

"मेरी कैसी आज्ञा ? क्या मैंने ढोर पाल रखे है, जो उन्हें चराने के लिए मुझे किसी ग्वाले की जरूरत है ? या मेरे खेती होती है, जो मुझे हल जोतने के लिए हाली चाहिए। जाओ भागो, जहाँ से आए हो।"

"कहाँ जायें महाराज, हमारा कही घर नहीं है।"—रिंबूची ने उत्तर दिया।

कलजन बोला—"महाराज, हमें तो आप ही ने बुलाया है।"

महाराज ने कहा—"तुम क्या खाओगे यहाँ ? मेरे पास कुछ नहीं है और पास-पड़ौस में भीख माँगने के लिए कोई गाँव भी नहीं।"

कलजन बोला—"महाराज, हम आपके आशीर्वाद पर जी जायेंगे।"

महाराज अट्टहास कर हँस पड़े—"शाबाश !" उन्होंने हाथ पकड़-कर कलजन को उठा लिया और फिर रिंबूची को उठाते हुए बोले—"और तू अपनी तो कह।"

रिंबूची बोला—"महाराज, मैं भी आपका दास हूँ।"

"लेकिन तुम मेरा आशीर्वाद किस चीज के साथ खाओगे ?"

दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गए चुपचाप।

महाराज ने पूछा—"छङ कितनी पीते हो ?"

कलजन ने कहा—"नहीं महाराज, बिलकुल नहीं।"

महाराज ने फिर पूछा—"क्यों नहीं पीते ? धर्मसम्मत नहीं है क्या ?"

दोनों चुपचाप खड़े रहे।

महाराज ने फिर पूछा—"माँस खाते हो या नहीं ?"

कलजन ने कहा—"खाते हैं, महाराज।"

"अहिंसा के धर्म में उसका खाना कैसा है ?"

कलजन ने इधर-उधर देखकर कहा—"महाराज, इन ऊँचाइयों पर खेती तो बढ़ नहीं सकती। जीवन धारण को मांस खाना ही पड़ता है। स्वाद के लिए नहीं खाते।"

"फिर छङ क्यों नहीं पीते, क्या उससे कुछ गरमी नहीं मिलती इस ठंडक में ?"

कलजन समझा महाराज शायद उसकी परीक्षा ले रहे हैं, वह चुपचाप रह गया।

चार कुत्ते आकर महाराज की कमर पर बँधी उस खाल पर बार-बार मुँह मारकर उसे खींचने लगे थे। महाराज का मन कलजन और उसके साथी के साथ बातों में अधिक लगा था। उन्होंने फिर कहा—"पास-पड़ौस के गाँवों से अगर जौ की भीख माँगकर ला सको तो रहो यहाँ। मेरे पास बहुत पुराने बड़े-बड़े मटके हैं यहाँ जौ सड़ाने के लिए। क्यों हो राजी ?"

रिंबूची मुसकराते हुए सामने हाथ जोड़कर खड़ा था, पर कलजन बड़े संकोच के साथ रिंबूची की ओट में छिप गया था। इतने ही में एक कुत्ता उनकी कमर पर अटकी हुई भेड़ की खाल को लेकर भागा और तीनों कुत्ते उस एक के पीछे दौड़े।

"तुम भूखे हो तो क्या मुझे जाड़ा नहीं लगता ?"—कहते हुए

महाराज भी उस कुत्ते के पीछे दौड़े।

कलजन और रिंबूची ने उधर पीठ कर ली। उन्होंने अपनी हँसी को दाँतों में पीस लिया। वे दोनों अपने-अपने मन में विचारने लगे अगर जरा भी महाराज का अपमान मन में सोचेंगे तो बड़ा भारी अनिष्ट हो जाएगा।

कलजन ने धीरे-धीरे रिंबूची से कहा—"देखो तो कहीं महाराज इसी बहाने से चले न गए हों।"

रिंबूची ने पूछा—"क्या यही गुरुदेव खंपोलामा हैं ?"

"और नहीं तो कौन ?"

"ऐसे नंगे ?"

इसी समय कमर में वही खाल बाँधे वह फिर आते दिखाई दिए। कलजन और रिंबूची बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गए।

उन्होंने आते ही मुख अन्यत्र करते हुए कहा—'तो क्या हीरा-मोती सोने-चाँदी, रेशम और जरी में ढका हुआ आयेगा वह ?"

"क्षमा ! क्षमा ! महाराज क्षमा !"—कहते हुए दोनों उनके चरणों पर गिर पड़े।

"हुँ ! खंपोलामा से जान न पहचान, चले आए तुम उसके घर। तुम्हें रास्ता कहाँ से मालूम हो गया ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"सब आपकी दया से महाराज !"—कलजन ने बड़ी विनयपूर्वक कहा।

रिंबूची ने भी वही दुहराया।

"फिर क्यों नहीं पहचाना तुमने मुझे ?"—कुछ तेजी के साथ खंपोलामा बोले।

कलजन कहने लगा—"मैंने पहचान लिया था महाराज आपको।"

"तुमने कहाँ देखा मुझे ?"

"आपने मेरे घर पर ही मुझे दर्शन दिए।"

"तुम्हारे घर मैं कब आया ?"

"स्वप्न में आए महाराज, ध्यान में दिखाई दिए।"

"स्वप्न-ध्यान को तू सच्चा समझता है ? मूरख कहीं का !"

'स्वप्न और सत्य में नाम और रूप का ही अन्तर है, महाराज। आपके नाम और ध्यान में अगर कोई सच्चाई न होती तो हम कैसे यहाँ तक आ जाते ?"—कलजन ने कहा।

"तू बड़ा होशियार है। अच्छा सच बता क्या तू अपनी ताकत से ही यहाँ तक आया है ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"आपको सब मालूम है। आपकी आज्ञा-पालन करने को हमें बताना ही होगा। डोल्मा माता ने हमें राह दिखाई। क्योंकि अब हम आपकी शरण में आ ही गए हैं, हम पर दया कीजिए।"

खंपोलामा ने पूछा—"तुम किस मतलब से आए हो यहाँ ?"

"आपकी सेवा के लिए।"

"झूठी बात ! कीमिया का रहस्य जानने को ?"

"नहीं महाराज।"

"फिर छङ् पीने को ?"

"नहीं महाराज।"

"अमरत्व की बूटी मालूम करने को ?"

"वह भी नहीं।"

"फिर क्या अप्सराओं के साथ नृत्य करने को ?"

"हमारे अपराध क्षमा कीजिए, महाराज ! हम आत्मा का रहस्य जानने के लिए आए हैं।"

"यह तुम्हारा घोर स्वार्थ है। तुम्हें आत्मा का रहस्य तब तक नहीं मिल सकता जब तक तुम दूसरों के हित के लिए प्रयत्नशील न होओगे।"

"हम दूसरों के हित के लिए निरन्तर चेष्टा करेंगे।"—कलजन ने विश्वास दिलाया।

"क्या करोगे ? क्या सम्पत्ति है तुम्हारे पास ?"—खंपोलामा ने

पूछा।

"हमारे पास विचार की सम्पत्ति है।"—कलजन ने तत्क्षण उत्तर दिया।

"तुम विचार की सम्पत्ति को हर घड़ी विश्व-मंगल के लिए खर्च कर सकोगे ?"

'हाँ गुरुदेव !"—कलजन ने हाथ जोड़कर कहा।

"और तुम्हारा यह साथी ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"हाँ महाराज, यह भी।"—कलजन के उत्तर पर रिंबूची ने भी अपने हाथ जोड़ दिए।

'विश्व-मंगल के लिए तुम क्या विचार करोगे ?"

कलजन बोला—"घर-घर लोगों में सद्भावना फैले, देश-देश की जातियों का कलह दूर हो; ऊँच-नीच, बड़े-छोटे का भेद-भाव मिट जाए।"

"और तुम ?"—खंपोलामा ने रिंबूची से पूछा।

"संसार में उपज बढ़े, ठीक समय पर न ज्यादा-न कम वर्षा हुआ करे; जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध हो सके वहाँ नदियाँ खोदी जाएँ; व्यापार में ज्यादा मुनाफा न ले कोई; चीजों में मिलावट न रहे; सबके दिल में भगवान् का डर रहे; दुनिया से भयानक बीमारियाँ दूर हों।"—रिंबूची बोला।

"लेकिन तुमने तो यह बड़ी मेहनत का रास्ता लिया। कोई एक मंत्र नहीं मालूम है तुम्हें ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"मुझे मालूम है।" कलजन बोला—"ओ३म् मणि पद्मे हुँ !"

खंपोलामा हँसने लगा—"मणि क्या है और पद्म क्या है ?"

कलजन ने प्रत्युत्तर में कहा—"मणि प्रकाश है भगवान् का प्रकाश और पद्म हृदय-पद्म।"

"हृदय-पद्म किसका ?"

"व्यक्ति का।"

"तुम्हारा ?"

कुछ हिचकिचाहट के बाद कलजन ने कहा—"हाँ गुरुदेव !"

"बस तो हो गया ! प्रकाश भगवान् का, हृदय तुम्हारा; यही तो घोर स्वार्थ है। विश्व का कल्याण कहाँ पर रहा ?"

"अपराध क्षमा हो देव ! अनेक एक में ही निहित है। बाहर-भीतर का ही फैलाव है।"

"यह मूल नहीं है, व्याख्या है।"

"हम दोनों मूल की शिक्षा के निमित्त आपके चरणों में विनत हैं। आप हमारे ऊपर दया करें।"

"इन्द्रियों के भ्रम से जब तक नहीं निकल सकते, तुम्हें मूल प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक तुम्हारे अपने विषय मर नहीं जाते, तुम विश्व का कल्याण नहीं जगा सकते अपनी साँस में।"

"हमें इन्द्रियों के भ्रम से निकाल दीजिए, हमारे विषय नष्ट कर दीजिए।"

"बुद्ध की शरण जाओ।"

"बुद्ध की शरण में है।"

"बुद्ध कभी का मर चुका। नवीन बुद्ध की कामना करो। मैत्रेय की साधना करो। विश्व-मंगल की सबसे बड़ी सिद्धि वही है।"

"हम मैत्रेय की कामना करेंगे।"

"ओ३म् मणि पद्मे हुँ !" खंपोलामा बोला—"मणि ही मैत्रेय का प्रकाश है, पद्म विश्व का कमल है, उसकी पँखुरियाँ उसकी दिशाएँ हैं। मंत्र वही है, भावना के अन्तर से सब कुछ बदल जाता है। भीतर के होने से ही बाहर है तो बिना बाहर की सत्ता के भीतर भी कुछ नहीं है !"

भावों के आवेश में कलजन ने कहा—"गुरुदेव की जय हो !"

"मैत्रेय की जय कहो, वह गुरु का भी गुरु है।"

"मैत्रेय की जय !" कलजन और रिबूची एक साथ बोले—"उस होने वाले बुद्ध की जय !"

"वह होने वाला नहीं है।"—खंपोलामा ने कहा।

कलजन और रिंबूची ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"वह होनेवाला होता तो अब क्यों न हो जाता? संसार में ऐसी त्राहि-त्राहि मची है। जातियों में ऐसा कलह फैला है। मनुष्य-मनुष्य को खा जाने के लिए तैयार है। वह स्वयं पैदा नहीं हुआ, न होगा। उसे पैदा किया जाएगा।"

"उसे पैदा किया जाएगा?"

"हाँ, यह प्रजातन्त्र का युग है। सबकी बपौती समाप्त हो जाएगी। जिस तरह राजवंश समाप्त कर दिए, राजत्व प्रजा के हाथ में आ गया—ऐसे ही देवत्व क्या हमारे अधिकार में नहीं हो जाएगा? जब हम दलाई लामा में अवतार की कल्पना कर सकते हैं तो क्या हम मैत्रेय को नहीं जगा सकते? वह हमारे ही बीच में है।" बड़ी तेजस्विता से खंपोलामा ने कहा—"मैंने मिट्टी के सैकड़ों मैत्रेय बना डाले।"

कलजन बोला—"मैंने आपके बनाए मैत्रेय के दर्शन किए हैं।"

"किए होंगे। बस उसी में प्राण देने बाकी हैं। तुम करोगे इसकी साधना?"

"हाँ," दोनों ने जवाब दिया।

"तुम इसीलिए यहाँ आए हो?"

दोनों ने हाथ जोड़े।

खंपोलामा ने पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है?"

कलजन बोला—"मेरा कलजन है और मेरे साथी का रिंबूची।"

"अच्छा तुम दोनों चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चले आओ।" खंपोलामा आगे-आगे चला।

उन दोनों के हर्ष का ठिकाना न था, क्योंकि जिस लिए उन्होंने उतने कष्ट की यात्रा की थी, वह सफल होती जान पड़ी। वे खंपोलामा के पीछे जाने लगे।

अचानक खंपोलामा को कुछ याद आया। उन्होंने मुड़कर पूछा—

"एक बात ! तुम कहाँ से आये हो ?"

"ल्हासा से ।"

"वहाँ और कौन-कौन हैं तुम्हारे ?"

"नजदीकी रिश्ते के नाम पर कोई नहीं ?"—कलजन ने जवाब दिया ।

"और सम्पत्ति के नाम पर ?"

"सम्पत्ति के नाम पर भी कुछ नहीं ।"

खपोलामा फिर आगे को बढ़ा—"अच्छा, चले आओ ।" उसने जाते-जाते पूछा—"किसी मठ में दीक्षा ली थी क्या ?"

"नहीं, महाराज !"

"फिर सिर क्यों घुटा रखा है ?"—खंपोलामा फिर ठहर गया ।

दोनों चुप रह गए ।

"विवाह नहीं किया ? बाल ब्रह्मचारी हो ?"

"विवाह किया, महाराज, दोनों की स्त्रियाँ चल बसीं ।"

"हा-हा हा ! स्त्रियाँ चल बसीं !" खपोलामा बोले—"लेकिन मन में की नारी चल बसी या नहीं ?"

"चल बसी महाराज वह भी ।"—रिंबूची ने उत्तर दिया ।

"अगर तुमने खंपोलामा से झूंठ बोला तो तुम्हें मठ के भीतर के अंध कूप में डाल दिया जाएगा ।"

कलजन ने रिंबूची की बात सही की—"महाराज, नारी के उस रिक्त स्थान में हमने माता की मूर्त्ति स्थापित की है ।"

"लेकिन हमें मैत्रेय के लिए माता की क्या जरूरत है ?"

कलजन ने खंपोलामा की बात काटनी उचित नहीं समझी और कहा—"तो मैत्रेय को आप मिट्टी की मूर्त्ति से बना देंगे ?"

"वह तो बहुत-सी बना चुका हूँ ।" बड़ी उदासी से खंपोलामा ने कहा —"लेकिन कुछ काम चला नहीं ।"

कलजन ने कहा—"फिर जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा ही किया

जाय।"

"वैसा ही क्या किया जाय ? हमारी तुम्हारी हड्डियाँ बड़ी सख्त और पुरानी पड़ गई हैं उनमें हम मैत्रेय की कलम नहीं चढ़ा सकते। अगर किसी के बालक को यहाँ हम ले आयें और उसमें मैत्रेय की आत्मा का आवाहन शुरू करें तो उसके सम्बन्धी हमारी सारी क्रिया बिगाड़ देंगे और फिर इतने अवतारी लामा जो तिब्बत में फिरते रहते हैं, उनमें और हममें क्या अन्तर रहा ?"

"अगर किसी बिना माता-पिता का शिशु हमे मिल जाय तो ?"

"तो हम उसके मानव ज्ञानी होने तक उसके भीतर बुद्धत्व के संस्कार जगा देते। ज्ञान हो जाने पर वह फिर अपने भीतर संबोधितत्त्व को उठा लेता। कलजन, बुद्ध हम सबके भीतर है—लेकिन सुप्त और मूर्च्छित। अच्छा चलो। ज्यादा बातों से कुछ नहीं होता। हम अपनी इस गुफा के द्वार पर खड़े हैं। चले आओ इसके भीतर।"—खंपोलामा यह कहते हुए बड़ी तेजी से उस गुफा के भीतर चले गए। उन्होंने अपनी मंजिल का द्वार ढक लिया।

रिंबूची और कलजन भी बड़ी सावधानी से टटोलते हुए पेट-पाताल की उस अन्धकार और बदबू से भरी गुफा के भीतर घुसे।

ऊपर से खंपोलामा की आवाज आ रही थी—"यह संशय और भय की गुफा है। इसमें तुम्हें तब तक रहना पडेगा, जब तक तुम अपने भीतर के इस शत्रु के ऊपर विजय न पा लोगे।"—इसके बाद फिर खंपोलामा की आवाज नहीं सुनाई दी।

कुछ देर प्रतीक्षा करने पर कलजन ने कहा—"रिंबूची, गुरुदेव चले गए क्या ?"

"ऐसा ही जान पड़ता है। अँधेरे की कोई बात न थी, बड़ी बदबू आ रही है।"

"कुछ समय बाद इसका अभ्यास हो जाने पर फिर यह इतनी अधिक नहीं खलेगी।"

"किस चीज की बदबू है यह ?"

"सूखे मांस की जान पड़ती है और कुछ सड़े हुए अन्न का भी आभास मिलता है।"—कलजन ने समाधान किया।

"कलजन, मुझे भय लग रहा है।"—उसको टटोलकर रिंबूची ने कहा।

कलजन बोला—"ऐसा न कहो, भाई। यह अन्धा कारागार उसी भय के बदले में मिला है।"

"भूख भी लग रही है और जाड़ा भी।"

"वे भी तो सब भय के ही, परिवार में से हैं। इन सबको जीतना है।"

"धीरे-धीरे ही तो जीते जा सकेंगे। कुछ और इधर-उधर टटोल लें। शायद इस गुफा में गुफा-वासियों के लिए कहीं कुछ सोने-खाने का ठौर ठिकाना हो।"

"चलो, बाहर संध्या हो गई जान पड़ती है। दिन में शायद इस गुफा में इतना अँधेरा न होगा।"

रिंबूची बोला—"किस तरफ को जा रहे हो ?"

"जिधर भी बढ़ जायँ, कोई जानी-पहचानी दिशाएँ तो हैं नहीं।"

"जरा ठहरो, मैं तुम्हारा छुपा पकड़ लूं।" रिंबूची ने कलजन का वस्त्र पकड़ लिया।

कलजन के हाथ किसी चीज पर पड़े—"यह क्या है ? एक मटका-सा जान पड़ता है। बहुत बड़ा है। जान पड़ता है, इसमें छेद है।" कलजन किसी गहरे विचार में पड़ गया।

रिंबूची बोला—"कलजन, तुम चुप हो गए, क्या सोच रहे हो ?"

कलजन विचारों में डूबता-उतराता हुआ बोला—"कुछ नहीं।"

"मेरे हाथ सूखे मांस के संग्रह पर हैं। चलो, खाने-पीने की चिन्ता तो गई। गुफा की छत पर से लटक रहा है उनका बोझा, यह नहीं जाना जा सकता वह हमारे खाने के लिए है या उन काले कुत्तों के ?"

कलजन चुप था।

रिंबूची फिर बोला—"सोने का क्या होगा ? कलजन कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

"भाई, क्या बोलूं ? बड़े भारी संशय में पड़ गया मैं ।"

"इस छड़ के मटके के पास ही अटक गए तुम ? मेरा गला सूख रहा है । उसकी गर्दन तक अगर तुम्हारा हाथ नहीं पहुँचता तो मेरी पीठ पर चढ़कर एक प्याला भर लो तो सही उसका स्वाद चखा जाय ।"—कहते हुए रिंबूची ने अपने लबादे के भीतर से फुरू निकालकर कलजन की ओर बढ़ाया ।

"नहीं भाई, मैं इस मटके में हाथ नहीं लगाऊँगा ।"

"तुम कर क्या रहे हो ?"

कलजन घबराकर उसकी ओर आया—"अरे बाप रे ! और भी कुछ है यहाँ ?"

"क्या ? क्या ?"—रिंबूची ने पूछा ।

"दूसरी तरफ चलो बताऊंगा ।"

वे दोनों वहाँ से आगे बढ़े । कलजन खुसपुसाकर रिंबूची के कान में बोला—"कोई है ।"

"कौन है ?"—रिंबूची ने भी बड़े कौतूहल के साथ उसी स्वर में पूछा ।

"कोई औरत है ।"

"कैसे कहते हो ?"

"उसके छुपा और उसकी कमर से लटकते हुए काबो का मैंने स्पर्श किया ।"

"ऐसे ही धोखा खा गए तुम, औरत होती तो बोलती नही ?" इतने ही में रिंबूची का हाथ किसी चीज पर पड़ा—"बड़ा नरम और गरम कम्बल बिछा रखा है, शायद यहाँ पर हमारे सोने का इन्तजाम है ।"

एक कुत्ता भौंकने लगा । रिंबूची ने अपनी भूल सुधारी—"नहीं, तो वही कुत्ते हैं ।" उसने पुचकारकर कुत्ते को शान्त कर दिया ।

इतने ही में उन दोनों की दृष्टि गुफा के एक ओर से बढ़ते हुए प्रकाश पर पड़ी। देखा, एक हाथ में दीपक और दूसरे में कुछ खाने-पीने का सामान लेकर खंपोलामा चले आ रहे हैं। दोनों दौड़कर उनके निकट पहुँच गए।

खंपोलामा ने कहा—"इधर आओ, इस गुफा में ठीक रहेगा तुम्हारे लिए। वैसे इसमें कई कमरे हैं। जो तुम्हें रुचे उसमें रह सकते हो।"

"आपकी आज्ञा हमें शिरोधार्य है।"—रिंबूची ने कहा और दोनों खंपोलामा के बताए कमरे की ओर चले।

कमरे में पहुँचकर एक ऊँची जगह पर खंपोलामा ने दीपक रख दिया और कहने लगे—"इन कमरों में भाँति-भाँति के उपयोग की चीजें हैं। इन सबके मालिक तुम्हीं हो। वे चारों कुत्ते भी यहीं रहते हैं। वे तुम्हारी चौकसी करेंगे।" खंपोलामा ने अपने हाथ की चाय की केतली और चांबा की थैली भूमि पर रख दी।

एक कोने में घास के ऊपर कंबल बिछे थे। कुछ ओढ़ने के लिए ऊपर बँधा बाँस में रखा था। खंपोलामा ने उन दोनों से कहा—"इस बिस्तर में बैठ जाओ।"

लेकिन वे दोनों उनके प्रति सम्मान दिखाने के लिए खड़े ही रहे।

"चाय पी लो, ठंडी हो जायगी।"—खंपोलामा ने फिर आग्रह किया।

कलजन बोला—"हम यहाँ आपकी सेवा के लिए आए हैं, आपको इतना कष्ट करना पड़ रहा है।"

"आज पहला दिन है इसीलिए।"

रिंबूची ने कहा—"हमारे कर्त्तव्य भी तो बताइए।"

खंपोलामा ने उत्तर दिया—"बताने से कर्त्तव्य नहीं आता उसे तो तुम्हें स्वयं ही इस अंधकार में टटोलना पड़ेगा।"

रिंबूची घबराकर बोला—"यह दीपक तो है।"

"नहीं, यह मेरे साथ ही आया है, मेरे साथ ही चला भी जायगा। कर्त्तव्य क्या बताऊँ ? यह सारी गुफा तुम्हारी है, जो चाहे करो।"

उस कमरे में कुछ दानवों के चेहरे थे। वे दोनों बड़े ध्यान से उन्हें देख रहे थे।

"ये तुम्हारे नाच करने के लिए हैं। इनको पहनकर तुम यहाँ से बुरी आत्माओं को आसानी से भगा सकोगे।" खंपोलामा ने एक खूंटी से मनुष्य की खोपड़ी की खंजरी और जाँघ की हड्डी की बनी बाँसुरी निकाली। खंजरी रिंबूची को देकर कहा—"लो इसे बजाओ।"

रिंबूची उसे बजाने लगा।

खंपो ने बाँसुरी कलजन को देकर कहा—"लो तुम इसे बजाओ।"

कलजन ने उसे बजाने की कोशिश की पर वह ठीक-ठीक नहीं बजी।

खंपो ने कहा—"दोनों एक-दूसरे का साथ कर बजाओ, तभी एक-दूसरे की ताकत से दोनों को सहायता मिलेगी और बाजे ठीक-ठीक बज उठेंगे।"

दोनों ने बजाना शुरू किया, पर नहीं बजे।

खंपोलामा ने कहा—"तुम थक गए हो। चाय पी लो।"

दोनों ने चाय पीकर बाजे बजाए, फिर भी नहीं बजे। खंपोलामा ने कहा—"उस छड़ के मटके के पास जाकर बजाओ, वहाँ बज उठेंगे।"

"नहीं," कलजन ने विरोध किया—"वहाँ डर लगता है।"

"क्यों ?"

"वहाँ एक औरत खड़ी है, वह कौन है गुरुदेव ?"

खंपोलामा हँस पड़ा—"है-हैं-हैं ! औरत कहाँ है ! वह तो मिट्टी की एक मूर्त्ति है। मैंने उसे कपड़े और कुछ जेवर पहना दिए हैं। चलो, मैं उजाले में दिखा देता हूँ तुम्हें।"

तीनों उधर गए। कलजन और रिंबूची ने देखा उस मटके के पास एक बड़ी सुन्दर मूर्ति खड़ी थी। उसके जीवित होने का धोखा हो रहा

था। कलजन ने उस मटके में का लेख पढ़ा—"ओ३म् मणि पद्मे हुँ !"
उसने खंपोलामा से पूछा—"गुरुदेव, इसमें क्या है ?"

"इसमें छङ् है और क्या ? तुम उसकी गंध नहीं पहचानते ?"

"छङ् के मटके में यह मंत्र क्यों लिखा है ?"

खंपोलामा दीपक लेकर चल दिए बड़ी तेजी से।

१७

भैरवी

वह भस्म-चर्चित त्रिशूलिनी भैरव के मानस में बड़ी गहराई में समा गई थी, वह उसके तमाम अतीत पर गहरा परदा डालकर सामने खड़ी हो गई थी। उसकी ओट में उसके माता-पिता, घर-द्वार और बासो सब छिप गए थे। भूतकाल उसकी चेतना पर से धुल गया था, ५ ज ने उसे वर्त्तमान को पकड़कर उस पर स्थिर हो जाने को कहा, वह बड़ी कठिनता में पड़ गया। भैरवी उसे निरंतर भविष्य के मनोहर चित्र दिखाने लगी।

"भविष्य वर्त्तमान का ही वह भाग है जिसके ऊपर रात्रि की छाया पड़ी है। यह केवल समझने की बात है। भैरवी के प्रेम की डोर में खिंचा हुआ मैं जिस भविष्य की धूसर दूरी पर विहार कर रहा हूँ, वह वर्त्तमान का ही एक अंश है। मैं क्यों दुविधा रखूं? क्यों मन में संशय उपजाऊँ?"—भैरव भोजन की प्रतीक्षा करता हुआ सोचने लगा।

अब उसे भीतर जाड़ा लगने लगा था। वह उठकर फिर धूप में जाने को था कि किसी की आहट सुनाई दी। "शायद वह आ गई!"—विचारता हुआ भैरव सँभलकर बैठ गया।

कोई दूसरा ही था जो इस समय भोजन लाया था। बोला—"आपका भोजन है, कहाँ पर रखूं?"

"रख दो वहीं पर।" बड़ी रुखाई से भैरव बोला—"कौन हो तुम?"

"स्वयंसेवक हूँ।"

"वह कहाँ गई?"

"वह कौन?" आँखें विस्फारित कर स्वयंसेवक बोला—"यहाँ माता जी को छोड़कर और कोई नारी नहीं रहती।"

भैरव ने मन-ही-मन कहा—"ये सब बने हुए हैं। पुरुष के वेश में कभी क्या नवयुवती छिप सकती है? फिर ये सबके सब ऐसा क्यों कहते हैं?"

स्वयंसेवक बोला—"आपकी सुराही में पानी ला देता हूँ।"

"ठहरो।"

"आप स्नान करेंगे क्या?"

"हाँ, स्नान भी करूँगा। पहले एक बात का उत्तर दो। वह त्रिशूल-धारी कौन है?"

"त्रिशूलधारी?" स्वयंसेवक हँसकर बोला—"सभी नए आने वालों को यही भ्रम हो जाता है। आप उन्हीं के बारे में पूछ रहे थे?"

"हाँ, कौन हैं वे?"

"वे नारी नहीं हैं, दिखाई कुछ वैसे ही देते हैं। वे हम सब स्वयं-सेवकों के प्रधान हैं। मैं अभी आपके लिए गरम पानी ला देता हूँ, धूप में नहा लीजिये।"—स्वयंसेवक चला गया।

भैरव मन में बोला—"कैसे अंधेविश्वास से इनकी बुद्धियों में ताले लगा दिए गए हैं।"

स्वयंसेवक ने धूप में पानी रख दिया, धोती और अंगौछा भी। भैरव ने स्नान करते हुए उससे पूछा—"यहाँ आश्रम में क्या होता है?"

"हम स्वयंसेवक हैं। सेवा और चौकसी हमारा काम है। कुछ नहीं जानते।"

"कितने बरस से यहाँ रहते हो?"

"सात बरस से।"

"सात बरस में कुछ भी नहीं जान सके।"

"द्वार ढककर, आयनों में परदे लगाकर न जाने भीतर क्या करते हैं। कभी खट-खट सुनाई देती है, बस बहुत धीरे-धीरे बोलते हैं।"

"कौन लोग भीतर जाने पाते हैं?"

"जो मेंबर हैं कार्यकारिणी के।"

"अरे, सात साल हो गए। कुछ अनुमान भी नहीं लगा सके तुम लोग अभी तक।"

"हाँ, कुछ अंदाज है। एक काली और एक सफेद दो मुरदों की खोपड़ी लड़ाते हैं ये लोग।"

"काली खोपड़ी कैसी होती है ?"

"काले आदमी की।"

भैरव हँसा—"मुझे मालूम नहीं था—काले आदमी की खोपड़ी का रंग काला होता है। अच्छा और क्या करते है ?"

"और बम बनाते हैं।"

"बम किसलिये बनाते हैं ?"—भैरव नहा चुका था। उसने पाजामा वहीं छोड़ दिया।

स्वयंसेवक बोला—"जो लोग गरीब प्रजा पर अन्याय करते हैं उनके ऊपर छोड़ते हैं। वे चाहे काले हों, चाहे सफेद।"

"तुम तो कहते थे काली और सफेद खोपड़ी को लड़ाते हैं।"

"वह दूसरी बात है।"—स्वयंसेवक भैरव का पाजामा फींचने लगा।

भैरव भीतर से अपनी मैली कमीज भी निकाल लाया—"कृपा कर इसे भी धो दो जरा साबुन लगाकर। बहुत मैली हो गई है।"

स्वयंसेवक बोला—"धोकर, सुखाकर दे जाऊँगा।"

"जल्दी दे जाना। मेरे पास और कुछ नहीं है।"

स्वयंसेवक चला गया। भैरव भोजन करने लगा। भयंकरवादियों के लक्ष्य पर नहीं पहुँच सका वह। सोचने लगा—"बड़ी विचित्रता का समावेश जान पडता है यहाँ। अजीब तरह से इन्होंने राजनीति, अर्थ-शास्त्र और धर्म की खिचड़ी मिलाई है ?"

खा-पीकर उसे जाड़ा लगा और वह फिर धूप में चला गया। स्वयंसेवक कुछ देर में उसके कपड़े सुखाकर दे गया। कपड़े पहनकर उसने सोचा कुछ दूर तक पहाड़ों पर सैर कर आऊँ।

भयंकरवादियों की बस्ती से दूर एक पहाड़ की ओर को चला वह। वसंत के प्रवेश पर भाँति-भाँति के नवीन पत्ते अनेक वृक्षों ने पहन लिये थे। भूमि पर छोटे-छोटे फूलों के गलीचे बिछे थे, कुछ छोटी-छोटी झाड़ियों में रंग बिखरे हुए थे और अनेक फूलों से लदे पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो रंग-बिरंगी चूनरियाँ पहनकर नारियाँ वनदेवता की पूजा करने जंगल में चली आई हैं।

भैरव बड़ी उमंग के साथ पहाड़ पर चढ़ गया। मृदु सुवासित पवन बह रही थी। उसकी श्रांति दृश्यों की मनोहरता मे खो गई। वह बराबर एक के बाद दूसरी चढाई पर चढ़ता गया।

दूर पर हिमालय का दृश्य दिखाई दे रहा था। एक ऊँची चोटी पर चढ़ गया था वह। वहाँ विश्राम करने लगा वह। कहीं वन में कोई गा रहा था। वह उस गीत के शब्दों को तो कुछ नहीं समझा, पर उसके स्वरों में उसे एक निश्चितता और एक परिपूर्णता के दर्शन होने लगे। बड़े ध्यान से भैरव उस गीत को सुनने लगा और उसके गायक को ढूँढने लगा।

कभी उसे उस गीत में रमणी के कंठ का धोखा होने लगता। कुछ गायें पर्वत की उस चोटी पर चर रही थीं। भैरव गीत की मोहनी से मुग्ध होकर उस गायक को ढूँढने लगा। उसके मन में एक गुदगुदी-सी उठ रही थी—"क्या यह संभव नहीं है, यह गायिका वही त्रिशूलिनी भी हो सकती है। उसके हृदय की वेदना उसे पुरुष के कपड़े पहनाकर नहीं मिटा दी जा सकती। वह प्रकृति में गाकर अपनी वेदना कम करने आई होगी।"

अचानक भैरव को एक शिला-खंड पर बैठा हुआ एक बालक दिखाई दिया। वह बालक के पास गया। उसने उससे पूछा—"यहाँ अभी कोई गा रहा था।"

बालक एक अपरिचित को सामने पाकर कुछ लज्जित-सा हो गया।

"कौन गा रहा था बालक ?"

कुछ मुसकराकर उसने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानता।"

"तुम गा रहे थे ?"

बालक ने कोई जवाब नहीं दिया।

"जरूर तुम ही थे। बड़ा सुस्वर तुम्हारा कंठ है। तुम्हारी बोली न समझने पर भी मुझे वह गीत बड़ा प्यारा लगा। तुम फिर गा दो तो।"

"नहीं, उसकी क्या जरूरत है ? जब तुम उसे समझते ही नहीं तो।"—बालक बोला।

"गीत में उसके बोलों से अधिक प्रिय उसकी तर्ज होती है, बालक ! जैसे पक्षियों के मीठे गीत, कौन उनकी भाषा को समझता है !"

संयोग से इसी समय कुछ चिड़ियाँ बोल रही थीं, पास के वृक्षों में, लड़का कहने लगा—"हम तो इनकी बोली समझते हैं। तुम शायद कहीं शहर से आए हो।"

"हाँ, आया तो शहर से ही हूँ। क्या शहरवाले आँख-कान नहीं रखते तुम्हारी तरह ?"

"बताओ फिर यह चिड़िया क्या कह रही है ?"

भैरव ने ध्यान लगाकर उस चिड़िया की आवाज को सुना। वह कुछ भी स्थिर न कर सका। उसने पूछा—"क्या कह रही है ?"

"यह कह रही है," बालक ने विजय के दर्प के साथ कहा—"कहाँ हो ?"

"क्या माने हुए इसके ?"

"माने ऐसे ही निकल आते हैं क्या ? पहले इस बात को बताओ वह यही नहीं कह रही है ?"

"हाँ, ऐसे ही कह रही है।"

"कहाँ हो ? यही कह रही है। इसके साथ एक कथा है—एक राजा का लड़का था और एक प्रजा की लड़की। दोनों में बड़ी मैत्री थी। दोनों बड़े सुन्दर थे। राजा का लड़का जितना सम्पन्न था प्रजा की लड़की उतनी ही गरीब थी। दोनों के माता-पिता दोनों को मना करते

थे कि वे साथ-साथ न खेलें।"—कहते-कहते बालक चुप हो गया, उसका ध्यान फिर उस चिड़िया की ओर हो गया जो बड़े करुण स्वर से नीले आकाश में पुकार रही थी—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?"

भैरव ने बालक का ध्यान उधर से हटाकर कहा—"हाँ भाई, फिर क्या हुआ ?"

"लेकिन वे माननेवाले कब थे ! चोरी-छिपकर फिर खेलते और रोज उन दोनों को मार पड़ती। राजा कहता—'अपने से छोटे के साथ क्यों खेलता है ?' प्रजा का गरीब व्यक्ति कहता—'उतने बड़े श्रीमान् के साथ क्यों खेलती है ?' एक दिन उस गरीब ने उस लड़की को बहुत पीटा। उसी समय वह राजकुमार उसे संकेत से बुला ले गया। दोनों नदी के किनारे आँख-मिचौनी खेलने लगे। लड़की राजकुमार की आँखें बंद कर छिपने के बदले नदी की गहराई में कूद गई। राजकुमार संकेत पाकर उसे ढूँढने चला। जितनी भी संभव दिशाएँ और स्थान थे राजकुमार ने खोज लिए, पर उसकी संगिनी का कहीं पता ही नहीं चला। जब उसकी आँखें थक गईं, तो फिर वह पुकार-पुकारकर उसे तलाश करने लगा—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?'

"उसके पैर थक गए और उसका गला रुँध गया। उसकी सखी का कहीं पता नहीं चला। उसे नदी के जल का कुछ बोध तो हो गया था, ऐसी कुछ आवाज सुनी थी उसने। लौट-फिरकर वह फिर-फिर उसके जल में झाँक रहा था। लेकिन न-जाने कहाँ को बह गई वह। एक बार उसे उसके जूड़े में खोंसे हुए कुछ चंपा के फूल नदी के एक कूल से लगे हुए दिखाई दिए। वह माथा पकड़कर बैठ गया।"—कहते-कहते वह चरवाहा भी कुछ देर अपने कहानी के नायक की मुद्रा में बैठ गया मानो वही वह ढूँढनेवाला राजकुमार था।

भैरव उस बालक के भोलेपन से उस कथा में मानो इतिहास सुन रहा था, बोला—"क्या फिर राजकुमार अपने घर को लौट गया ?"

"नहीं लौटा। जब अँधेरा हो गया तो लड़की के माता-पिता लड़की

को ढूंढने लगे और राजा के नौकर-चाकर प्रकाश लेकर राजकुमार को। राजकुमार चुप रह गया, एक पेड़ पर चढ़ गया और मौका पाकर—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?'—कहता हुआ पेड़ पर से नदी में कूद गया। कई दिन तक संध्या के समय उस पेड़ के पास एक आवाज आकर पूछती—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?' और थोड़ी देर बाद एक दूसरी आवाज अपने क्षीण स्वर में उत्तर देती—'यहाँ हूँ ! यहाँ हूँ !' फिर वे दोनों आवाजें मिट गईं और वे दोनों दूसरे जन्म में चले गए। यह चिड़िया अब भी उसी संगिनी को खोज रही है—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?' तुम समझ रहे हो न कितने साफ इसके स्वर हैं। रूप बदल गया, पर स्वर वही है। यह राजकुमार उसी किसान की कन्या को खोज रहा है—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?' और वह उसे नहीं मिलता। मैदान से ढूंढते-ढूंढते यह यहाँ पहाड़ पर आई है। जब गर्मियों में यहाँ धूप और तेज हो जायगी तो यह और ठंडे हिमदेश को चली जायगी, फिर जाड़ा बढ़ने पर मैदान को।"

भैरव उस चरवाहे की करुण-कल्पना पर आत्म-विस्मृत होकर सोचने लगा—"प्रेम के गीत का वादी स्वर यही विरह की शून्यता है। 'कहाँ हो ? कहाँ हो ?' एक दिन के बाद दूसरा दिन, एक देश के बाद दूसरा देश—और एक जन्म के पश्चात् दूसरा जन्म—यह अनन्तव्यापी चक्कर ! यही है प्रेम की सार्थकता !"

वह चरवाहे का बालक भी न-जाने किस चिंतन में विलीन हो गया था। अचानक फिर वह पक्षी गा उठा—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?"

दोनों का स्वप्न टूट गया। दोनों अपनी-अपनी मानसिक स्थिति से छूटकर धरती पर गिर पड़े।

भैरव कहने लगा—"क्यों बालक, कहानी समाप्त हो गई ?'

"एक हिसाब से हो गई और एक हिसाब से नहीं।"

"क्या हुआ फिर ?"

बालक ठंडी आह लेकर उठ खड़ा हो गया—"कुछ फल न हुआ

तुम्हें यह कहानी सुनाकर, तुम नहीं समझे कुछ भी।" वह जाने लगा।

भैरव ने लघुता प्राप्त कर उसका हाथ पकड़ लिया—"तुम बहुत होशियार जान पड़ते हो बालक, बैठो, तुमसे और बहुत देर तक बातें करने को जी कर रहा है।"

लड़का एक देवदारु का पेड़ की छाया में बैठ गया एक विशाल शिलाखण्ड के ऊपर वहीं भैरव भी बैठ गया भूमि पर एक शिष्य की भाँति। बालक भैरव की विनयशीलता को देखकर प्रसन्न हो गया।

पास ही एक दूसरे देवदारु के पेड़ के नीचे कुछ टूटी दीवारें और मलबा पड़ा देखकर भैरव ने पूछा—"यह टूटा मकान किसका है?"

"भूमिया देवता का था।"

"यह टूटा क्यों है? क्या इस देवता की पूजा बन्द हो गई?"

"जब तक भूमि है तब तक भूमिया है और जब तक भूमिया है तब तक उसके पूजा करनेवाले भी।"

"तोड़ किसने दिया फिर इसे?"

चरवाहे बालक ने भयंकरवादियों की बस्ती की तरफ इशारा किया—"इन लोगों ने।"

"इन भयंकरवादियों ने?"

लड़के ने चुपचाप सिर हिलाया।

"क्यों? क्यों तोड़ दिया इन लोगों ने?"

"इन्होंने एक बम बनाया था, उसकी ताकत आजमाने को।"

"देवता के घर में ही आजमाना था क्या? ये कैसे लोग हैं?"

"मैं क्या बताऊँ? मैं तो इन्हीं का नौकर हूँ।"

भैरव ने जरा हिचकिचाकर पूछा—"ये गायें इन्हीं की हैं?"

"हाँ।"

"ये बम बनाते हैं?"

"हाँ, बम भी बनाते हैं। और ··" बालक ने बहुत धीरे से भैरव के कान में कहा—"और ये कई राज्यों के जाली सिक्के ढालते हैं और नोट

भी छापते हैं।"

"झूठी बात ! मैंने तो सुना था ये लोग यहाँ योग की क्रियाएँ साधते हैं।"

"वह तो खाली एक खोल है, एक परदा है।"

"पुलिस नहीं पकड़ ले जाती इन्हें ?"

"उसे ये परदे में ही घुमा देते हैं। बारूद बनाने, नोट छापने और सिक्के ढालने का कारबार सब जमीन के भीतर है।"

'मैंने तो सुना था ये लोग खोपड़ियाँ लड़ाते हैं।"

"खोपड़ियों की तो मैं नहीं जानता। कभी-कभी ये लोग रात को नाच करते हैं। आधे पुरुष औरतों का वेश बना लेते हैं, आधे मरदों का फिर बाजा बजाकर नाचते हैं माता जी के चारों ओर।"

"माता जी कौन हैं ?"

"क्या जाने कौन हैं वे कभी बाहर आती तो दिखाई नहीं देतीं। कहते हैं, एक माता जी हैं। भगवान जानें हैं भी या नहीं !" चरवाहा बालक बोला।

"तुम बड़े निडर बालक हो, तुम्हें क्या तनखा मिलती है ?"

"मुझे क्या तनखा मिलती है ?" बालक बड़ी लापरवाही के साथ हँसा—"तनखा मेरे पिता जी को मिलती है। तुमने इतनी बातें पूछ लीं मुझसे। कौन हो तुम ? यहाँ क्यों आए हो ?"

"मैं भी यहीं आया हूँ नौकरी करने।"

बालक उठ खड़ा हुआ, उसने इधर-उधर देखकर अपनी गायों का अनुमान किया—"सिर्फ वह लाल बछिया नहीं है। उसे सबसे अलग ही पसन्द है।"

भैरव बोला—"बैठो, यहीं होगी कहाँ जायगी ? एक गीत सुना दो। इसी लालच पर मैंने तुमसे पहचान बढ़ाई है।"

"हूँ हूँ ! जब तुम उसके माने ही नहीं समझते हो क्या फायदा ?"—बालक जाने लगा।

"ठहरो बालक, मैं तुम्हें पैसे दूंगा।"

"हुँ! पैसे का क्या करूँगा मैं इस जंगल में? तनखा ही नहीं लेता नहीं तो मैं :" वह फिर जंगल की तरफ देखने लगा।

"मैं ढूंढ़ ला दूंगा तुम्हारी गाय।"—भैरव ने कहा।

"तुम कहाँ से ढूंढ़ ला दोगे? बाघ के मुख से छुड़ा ला दोगे मेरी बछिया? नहीं मेरे मन में एक बेचैनी छा गई। मेरी बछिया! वह जरूर किसी दिन···!"

"दिन में भी बाघ?"—भैरव ने कहा।

"काल की कोई घड़ी नहीं है।"—कहते हुए वह बालक चला गया। भैरव कुछ देर तक वहीं विचारों में तल्लीन उस बालक के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। फिर देर होने के भय से उठकर चला, गिरि के पृष्ठों पर वृक्षों की छायाएँ दीर्घ होकर फैल उठी थीं। सूर्य अस्ताचल के प्रकाश में जा रहे थे। धीरे-धीरे वह उतर रहा था कुटीर के मार्ग में।

उन वन-पर्वतों में एक राजमार्ग तो कोई था नहीं। जिस तरफ भी पशु और मनुष्य के पैर पड़ते गए, अनगिनती आड़े-तिरछे मार्गों की रचना होती गई। इस बार दूसरे ही मार्ग से लौट रहा था भैरव।

उसने राह भूल जाने की कोई चिन्ता नहीं की क्योंकि उसे अपने कुटीर की दिशा स्पष्ट ज्ञात थी। उतरते-उतरते वह एक जल-प्रपात पर आया। उसके नीचे मेंड बाँधकर एक छोटे से तालाब की रचना कर दी गई थी। भैरव ने कल्पना की—'पशुओं को पानी पिलाने के लिए यह बनाया गया है।"

उस जल के विस्तार में नीले आकाश की प्रतिछवि चमक रही थी, हरित वृक्षराजि और पर्वतों की छाया ने विचित्र रेखा और रंगों का जाल उसके भीतर बुन दिया था। भैरव कुछ देर बैठ गया वहाँ पर। बीच में एक पहाड़ और उतरना था उसे। उसकी ओट में भयंकरवादियों की वह उपत्यका थी।

भैरव वहाँ पर बैठा ही था कि फिर उसे किसी का गीत सुनाई दिया उसने अपने व्यक्तित्व से पूछा—"कौन गा रहा है यह ? वही बालक चरवाहा है क्या ?···वह तो नहीं है, लेकिन इस बार यह निश्चय ही नारी-कण्ठ है। मैं धोखा नहीं खा सकता। कहाँ ? किस तरफ ?"

भैरव उठा और उस गीत की धारा को पकड़कर उस गायक की शोध में चला। वह कुछ ही नीचे उतरा था कि उसे वही त्रिशूलिनी गाती हुई आती दिख गई थी। भैरव ने मन में सोचा—"अगर यह मुझे देख लेगी तो फिर इसके गीत में यह रस न रहेगा।" उसने छिपने की चेष्टा की, पर वह छिप न सका। वह उसकी शक्ति के बाहर की बात हो गई।

त्रिशूलिनी ने उसे देख लिया। देखते ही उसके अधरों पर का गीत खो गया एक क्षीण मुसकान में। वह क्षण-भर उसे देखती रही।

भैरव ने कहा—"तुमने गीत क्यों बन्द कर दिया ? गाओ वह बड़ा मधुर है।"

"नहीं, अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं इन स्वरों के प्रकाश से तुम्हें ही ढूंढ रहा था। जब मेरा मतलब हल हो गया तो फिर उस गीत को क्यों न बन्द कर दूं ?"

"क्योंकि मैं निरन्तर तुम्हारे ही चिंतन में हूँ, इसीलिए तुम मुझे ढूंढ रही हो।"

"तुम फिर अपनी भाषा के अशुद्ध उपयोग से अपनी कलुषित भावना को प्रकट कर रहे हो।"

"लाचारी है ! लेकिन मैं उन अनेकों से बहुत अच्छा हूँ जो विचारों में कुछ और शब्दों में कुछ और हैं। मेरी वाणी और विचार का साम्य तुम्हें क्यों खटकता है ?"—भैरव ने बहुत निडर होकर पूछा।

त्रिशूलिनी कन्धे पर अपने त्रिशूल को सम्भाले चुप रह गई। वह बड़ा प्रयास करती प्रतीत हुई, पर उसके मुख से उत्तर का एक भी शब्द बाहर नहीं निकला।

"क्यों त्रिशूलिनी ! इस शून्य एकांत में तुम मुझे क्यों ढूंढ रही हो ? तुम्हें कोई भय नहीं लगता ? शायद इसलिए कि समझदारों के लिए पुरुष हो और नासमझ पशुओं के लिए तुम्हारे हाथ में यह तीखा त्रिशूल है।"—कहते हुए भैरव उसके त्रिशूल को पकड़ने लगा।

"हैं ! हैं ! तुम यह क्या करने लगे ? मुझे नहीं छू सकते तुम !"

"क्यों नहीं छू सकता ? मैंने सुना है तुम्हारे क्लब में जब नाच होता है तो आधे पुरुष नारियों के परिच्छद पहन कर बाकी आधे पुरुषों के साथ नाच करते हैं। यह तो बताओ तब तुम किस दल में शामिल होती हो ? और उस नाच में क्या कोई किसी को नहीं छूता ?"

"यह किसने कहा तुमसे ?"

"किसी ने कहा हो। क्या झूठ है ?"

"लेकिन कोई अपरिचित और हमारे आश्रम का अदीक्षित मुझे नहीं छू सकता।"

"मैं क्या अपरिचित हूँ ? तुम्हारे साथ मेरे जन्म-जन्मान्तरों की पहचान है। रह गई तुम्हारे आश्रम की दीक्षा—मैं प्रेम को सबसे बड़ी दीक्षा समझता हूँ। अगर मुझे तुम्हारा प्रेम प्राप्त हो जाय तो तुम्हारे आश्रम के समस्त द्वार मेरे लिये आपसे-आप खुल जायेंगे।"

वह त्रिशूलिनी अपनी नीची नजर कर धरती पर कुछ ढूंढ़ने लगी।

"धरती में क्या ढूंढ़ रही हो ? मेरी आँखों की गहराई में देखो। मैं पूछता हूँ क्या तुम पुरुष हो ?"

त्रिशूलिनी ने धीरे-धीरे आँखें उठाकर भैरव को देखना चाहा। उसकी आँखें फिर नीची हो गई। उसने नीची दृष्टि कर ही कहा—"तुम बड़े निर्भीक हो, तुमने मेरा साहस तोड़कर रख दिया।"

"कैसा तुम्हारा साहस ?"

"तुम्हें देखकर मेरे मन में कुछ दूसरी ही भावना हो गई।"

"कहो भी तो।"

"इस वन में ही कहीं समा जाने की इच्छा होती है।"

"अगर हमारा मन एक है तो भयंकरवादियों का मठ भी तो वन ही में है।"

"वहाँ ?"

"नहीं कोई हमारा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकेगा। सिर्फ तुम प्रतिज्ञा करो।"

"कैसी प्रतिज्ञा ?"

'कि तुम मुझे धोखा न दोगी।"

"हम दुर्बल भावना को शब्दों के आडंबर से सज्जित कर देते हैं।"—वह त्रिशूलिनी बोली।

"अच्छा प्रेम की स्वीकृति दो।"

"किस तरह ? वह भी तो एक पाखंड ही है।"

"मेरा मन नहीं मानता।"

"क्या कहूँ, पहले तुम बताओ।"

"कहो कि तुम मुझ से प्रेम करती हो।"—भैरव ने बड़े आग्रह से उससे कहा।

"मनुष्य प्रेम करने के लिये ही तो बनाया गया है। इसमें कहने की क्या आवश्यकता है ? जिसके हृदय होगा वह प्रेम करेगा ही। जिसके आँख होगी, वह देखेगा ही।"

भैरव ने हठ की—"नहीं तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

"यही कि मैं केवल तुम्हें देखता हूँ। और सारी सृष्टि के लिये तुम मुझे अंधा बना देना चाहते हो। यह कैसा प्रेम है ? यह प्रेम नहीं है, यह तो घोर स्वार्थ है—तुच्छता है।"

इसी समय पेड़ पर बैठा हुआ पक्षी कूज उठा—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?"

भैरव बोला—"इस तरह ! ऐसा प्रेम कर रहा हूँ मैं।"

"मैं नहीं समझा।"

"एक से सच्चा प्रेम करने पर ही तो सारी सत्ता से प्रेम किया जा

सकता है। यह पक्षी अपनी प्रेमिका को खोज रहा है, तुम्हें यह प्रेम-कथा मालूम नहीं है ?"

"मालूम है, इससे क्या हुआ फिर ? इससे तो मेरा ही पक्ष दृढ़ होता है। यह प्रेम की तुच्छता है कि इस प्रकार जन्म-जन्मान्तरों में यह अपनी प्रेमिका को ढूंढ़ता ही रह गया। अगर इसके प्रेम का विस्तार हुआ होता तो पग-पग में इसे इसकी प्रेमिका मिल गई होती। क्या इसी तरह तुम भी मुझे ढूंढ़ते ही रह जाना चाहते हो ?"

"नहीं, तुम निरन्तर मेरे साथ रहोगी।"

"निरन्तर कोई किसी के साथ नहीं रह सकता।"

"अच्छा तो तुम चली जाओ। मैं इस पक्षी की भाँति तुम्हें जगत में खोजता ही रह जाना चाहता हूँ।"

"तुम्हें आज रात्रि को माता जी के समक्ष उपस्थित किया जायगा। यही संदेश कहने आया हूँ, चला जाऊँगा।"

"ठहरो ! तुम जा नहीं सकतीं !" बड़े तीव्र शासन के स्वर मे भैरव ने कहा—"तुम एक पग आगे नहीं बढ़ सकतीं।"

"क्यों नहीं बढ़ सकता ?"

"मैं दौड़कर तुम्हें छू लूंगा और जो यह दूसरे की छूत से अपवित्र हो जाने का अभिमान तुमने जमा किया है, मैं उसे अभी चूर-चूर कर दूंगा।"

भैरवी सहमकर खड़ी हो गई।

"इस एकांत में तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता और तुम्हारे इस लौह त्रिशूल की मुझे जरा भी परवा नहीं है।"

"तुम बड़े भयानक जान पड़ते हो। लो मैं ठहर गया। लेकिन तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ मेरा व्रत न तोड़ना।"

"वह एक कोरा अंधविश्वास है।"

इसी समय फिर वह पक्षी आकाश मार्ग में बोला—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?"

भैरवी बोली—"यह तुच्छ काया के प्रेम की कामना बोल रही है। तुम्हारी भी यही वासना है। इसी को तुमने प्रेम का पवित्र नाम दिया है। क्या तुम ऐसे ही उसे तुच्छता को ढूंढ़ते रह जाना पसंद करते हो? या अपने प्रेम को कण-कण में बिखराकर उसकी परिपूर्णता प्राप्त करना चाहते हो?"

"मैं काया हूँ, हाड़-चाम का बना, फिर कैसे एक आदर्शवादी प्रेम से तृप्त हो सकता हूँ? मेरी प्यास कल्पना से नहीं बुझ सकती। मैं जल चाहता हूँ तो क्या अन्याय है? यह मिट्टी जल चाहती है, आदर्श नहीं।"

"हे भूले हुए मानव! तुम यह काया नहीं हो। यह सिर्फ एक खोल है—एक संदूक है। इसके भीतर रहनेवाली जो प्रकाश की निधि है, वही तुम हो। क्यो तुम्हें इस पक्षी की तरह जल के चक्करों में भटकते रह जाना ही पसंद है?"

"जिस प्रकार बिना संदूक को खोले हम उसके भीतर की निधि को नहीं पा सकते ऐसे ही बिना हाड़-चाम की तृप्ति किए हम प्रकाश को नहीं पा सकते। हे त्रिशूलिनी, कोरे आदर्श की होड़ से कुछ नहीं हो सकता। बात ऐसी करो, जो व्यवहार में आ सके।"

"कहाँ हो? कहाँ हो?—की आवाजों से ढूंढ़ते रहना ही तुम्हारे भाग्य में लिखा है। मेरे यही समझ मे आता है।"—कहकर भैरवी जाने लगी।

"लेकिन यह तभी संभव है, जब तुम जल में डूब कर, आग में कूद-कर या ऊँचे पहाड़ से गिर कर आत्महत्या कर लोगी।"

"मुझे ऐसी आत्महत्या की क्या पड़ी है?"

"तो मुझे ही यह आहुति देनी पड़ेगी। अच्छी बात है, अभी कुछ दिन का समय मैं तुम्हारे सोच लेने के लिये देता तो हूँ। उसके बाद यहीं किसी पहाड़ के नीचे; मेरी लाश की गिद्ध और गीदड़ परिक्रमा करते होंगे। और इस पिंजरे में रहनेवाली आवाज दिन-रात तुम्हें घेरती रहेगी। देखूंगा तब तुम कहाँ जाओगी, कौन तुम्हारी रक्षा करेगा?"—

भैरव बोला।

भैरवी चीख उठी! वह दौड़कर ऐसे भागी जैसे कोई खूंख्वार जानवर आग की लपटों से भागता है—"हे भगवान्! बचाओ! बचाओ!"

भैरव हँसकर बोला—"और यह तुम्हारा त्रिशूल! सिर्फ तुम्हारा भार है, तुम्हारी टेक नहीं।"

भैरव ने उसका पीछा नहीं किया। एक टूटे हुए पेड़ के तने पर बैठ कर सोचने लगा—'आज रात को मुझे माताजी के समक्ष उपस्थित किया जायगा। लेकिन यह नहीं मालूम, अभियोग का उत्तर देने के लिये मेरी पेशी है या मठ की अंतरंग सभा में भरती के लिये?"

वह उठकर चला। थोड़ी दूर जाने पर फिर उसने देखा, एक पेड़ के सहारे उसकी ओर पीठ किए वह त्रिशूलिनी खड़ी है। उसका एक हाथ कंधे पर त्रिशूल को धारण किए था और दूसरा हाथ पेड़ के सहारे उसकी गाल पर आश्रित।

भैरव ने उसे देखते ही दूर से आवाज दी—"क्यों? तुम अभी यहीं हो!"

"हाँ।"

"किसकी प्रतीक्षा में?"

"तुम्हारी ही तो। तुमने मेरे ऊपर कोई जादू कर दिया है। सोचती हूँ, अकारण ही तुम्हारे साथ झगड़ा लेना बुद्धिमानी नहीं। लेकिन एक प्रार्थना है।"—वह चुप हो गई।

"कहो न, तुम्हारी प्रार्थना नहीं, वह आज्ञा है।"

"तुम्हें क्या मुझे बदनाम कर देने में सुख मिलेगा?

"तुम्हारी बदनामी मेरा मरण है।"

"मैं तुम्हें जीवित चाहती हूँ।"

"तुम चाहती हो?" भैरव उछल पड़ा—"तो तुम्हारी चाहना का मैं विनम्र सेवक हूँ जो कहोगी, वही करूँगा।"

१८

युग-चैतन्य

भैरव के मन में अब यह संदेह जरा भी नहीं रहा था कि माता जी के सामने उसे अभियोग का उत्तर देने के लिये जाना है। अभियोग केवल उस भैरवी की ओर से ही संभव था और वह भैरवी अब उसके ऊपर सदय हो गई थी।

जब दोनों साथ-साथ पहाड़ पर से उतर रहे थे भैरव ने उसके निराकरण के लिये उससे पूछा—"माता जी के सामने मेरी पेशी किस लिये है। तुम बता सकती हो?"

भैरवी चौंक पड़ी, बोली—"यह क्या कहते हो? तुमने अभी क्या कहा था?"

भैरव अचकाकर पूछने लगा—"क्या कहा था?"

"यही कि तुम मुझे बदनाम न करोगे।"

भैरव की समझ में बात आ गई। उसने अपनी भाषा को ठीक करते हुए कहा—"अब न होगी यह भूल। माता जी ने मुझे किस लिये बुलाया है, बता सकते हो?"

"तुम्हें मठ की अंतरंग सदस्यता दी जायगी।"

"वहाँ क्या करना पड़ेगा?"

"सबसे पहले तुम्हारी परीक्षा ली जायगी।"

"कैसी परीक्षा?"

"तुम्हारे साहस की।"

"किस प्रकार?"

"तुम्हें लोहे की एक लाल सींक को अपनी जांघ के एक भाग से छेद

कर दूसरी ओर निकाल देनी पड़ेगी।"

"मैं मर जाऊँगा।"

"नहीं कुछ न होगा। साहस रखने पर केवल एक सूई के चुभने से अधिक पीड़ा न होगी। हड्डी में चुभाना नहीं है। मांस को छेदकर दूसरी ओर निकाल देना है।"

"यदि मेरे पीड़ा हुई। मैं सहन न कर सका और मैंने इनकार कर दिया तो क्या होगा ?"

भैरवी ने कहा—"यह माता जी की इच्छा पर निर्भर है। वे तुम्हें भरती भी कर सकती हैं और अस्वीकृत भी।"

भैरव ने पूछा—"और कौन-सी परीक्षा है ?"

भैरवी ने उत्तर दिया—"जलते हुए अंगारों को दोनों हाथों की अँजलि में उठाकर मातृ-मन्दिर की एक परिक्रमा करनी होगी।"

"हाथ जलेंगे नहीं ?"

"उनकी दवा हो जाएगी।"

"और क्या परीक्षा होगी ?"

"कुछ तुम्हारी कल्पना और स्मरण-शक्ति के सम्बन्ध की।"

"फिर ?"

"कुछ और प्रश्न पूछे जायेंगे—तुम्हारे बारे में।"

'अगर मैं झूठ बोल गया तो ?"

"माता जी के सामने कोई झूठ नही बोल सकता। वे सबके मन के विचारों को जान लेती हैं।"

"तो उन्हें पूछने की क्यों आवश्यकता होती है, वे वैसे ही क्यों नहीं जान लेतीं ?"

"मैं नहीं जानता।"—भैरवी बोली।

"और क्या होगा फिर ?"

"फिर तुमसे कुछ प्रतिज्ञाएँ कराई जाएँगी।"

"कौन-सी ?"

"आजन्म अविवाहित रहने की एक।"

भैरव ने कुछ सोचकर कहा—"प्रेम विवाह नहीं है। मैं आजन्म अविवाहित रहने की प्रसिद्ध कर लूंगा। प्रेम न करने की प्रतिज्ञा तो नहीं करनी पड़ेगी ?"

"मैं नहीं जानता।"

"अगर उन्होंने मेरे-तुम्हारे बीच के प्रेम को जान लिया तो ?"

"तो दोनों को गोली से उड़ा दिया जायगा।"

"सच बता दो क्या वे मेरे मन के भावों को जान लेंगी ?" भैरव ने बड़ी व्यथा के साथ पूछा।

"अगर तुम उनके सामने अपने मन की भावना को जागृत रखोगे तो जरूर जान लेंगी।"

"भावना को जागृत रखना कैसा ?"

"निरन्तर स्पष्ट सोचते रहना और क्या ?"

"और दूसरी कौन-सी प्रतिज्ञा करनी होगी ?"

"द्रव्य का संग्रह नहीं करना होगा।"

"वह सहज मान्य है लेकिन एक बात बताओ यहाँ मठ में जो जाली सिक्के ढाले जाते हैं और नकली नोट छापे जाते हैं—वे किस लिए ?"

"मैं नहीं जानता।"

"सदस्यों को वेतन देने के लिए तो नहीं ?"

"सभी सदस्य अवैतानिक हैं। जब द्रव्य के संग्रह का निषेध है तो फिर वेतन कैसा ?"

"और कौन-सी प्रतिज्ञाएँ हैं ?"

"ऐसे ही और भी कुछ हैं।"

दोनों भैरव के कुटीर के निकट आ गए थे। भैरवी ने कुछ दूर पर से ही अपना मार्ग अलग करने के लिए कहा—"अब मैं यहाँ से जाता हूँ।"

"इस कुटीर तक तो चलो न।"

वह राजी न हुई। बोली—"नहीं, न जाने ये लोग क्या समझें।"

भैरव ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। भैरवी मठ की ओर चली गई। आज ही भावना में यह पहली बार इस प्रकार संकोच का उदय हुआ। भैरव अपने कुटीर में लौट आया।

संध्या निकट थी। वह बैठा-बैठा सोचने लगा—"भैरवी के प्रेम के लिए मैं तमाम परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सकता हूं। उसका प्रेम एक ओर मेरी शक्ति है तो दूसरी ओर अगर मेरी दुर्बलता सिद्ध हो गई तो क्या होगा ? माता जी के सामने उस बात को सोचूंगा ही नहीं।"

कुछ देर बाद उसका मित्र ५ ज आ पहुँचा। आते ही उसने कहा—"मित्र, तुम्हारे ऊपर माता जी बड़ी सदय हुई हैं। इतनी जल्दी कोई भी दीक्षा के लिए नहीं चुना गया। तुम अवश्य ही बधाई के पात्र हो।"

५ ज ने भैरव का हाथ पकड़ लिया था। उसने बड़ी उदासीनता से अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"लेकिन मित्र मुझे तो बड़ा भय लगता है।"

"भय कैसा ?"

"तुम्हारे इस भयंकरवाद मे। नाम ही ऐसा है और तुम पूछते हो भय कैसा ?"

"सिर्फ दुश्मनों को डराने के लिए ऐसा नाम रखा गया है। वास्तव में हम विशुद्ध मानवता के पक्षपाती हैं। धरती पर के भाईचारे के समर्थक हैं। वर्गवाद, बड़े-छोटे, काले-गोरे की विभक्तियों के पोषक नहीं है।"

"लेकिन मार्ग में जो भयानक अग्नि परीक्षाएँ हैं, उनका क्या होगा ?"

"वे सब नाममात्र की हैं।"

"नही।"

"किसने कह दिया तुमसे ?"

"मुझे मालूम है।"

"माता जी के सामने चलो भी तो। संभव है माता तुमसे कुछ बात कर लेने पर उन परीक्षाओं को जरूरी न समझें। वे काट भी दी जा सकती हैं। सबसे बड़ी परीक्षा भावना की है।"

"भावना की परीक्षा ? बन्धु, देखो मैं मिट्टी का मनुष्य हूँ कहीं पर

मेरे दुर्बलता रह सकती है अगर माता जी ने उसे पकड़ कर मुझे तिरस्कृत कर दिया तो इस अपमान से मैं फिर जीवन में कभी उबर न सकूंगा। इसलिए मुझे जाने दो, मेरे अपराध क्षमा करो।"

"नहीं बन्धु," ५ ज ने भैरव का बड़े आग्रह के साथ हाथ पकड़ लिया—"भगवान् को तुम्हारे हाथ से हमारे संघ का बहुत बड़ा काम कराना मंजूर है। इसलिए तुम हमें निराश न करो।"

भैरव कुछ सोचने लगा।

"यह सच है, यहाँ तुम्हारा कोई वेतन न होगा। भोजन और वस्त्रावास की भी यहाँ बिलकुल सतोगुणी व्यवस्था है। लेकिन भाई तुम समझदार हो तुम्हें सिक्के की पोल का पता है। उसके इकट्ठा हो जाने से तिल भर भी मनुष्य के सुख की वृद्धि नहीं हो सकती और न भोजन की बहुमूल्यता से ही हमारे स्वास्थ्य का सुधार होता है। वस्त्र और रहन-सहन की जो चमक है, वह भी तो केवल एक मस्तिष्क की जटिलतामात्र है। हमारी सम्पत्ति और हमारा असली स्वरूप हमारी भावना है। भावना की परिष्कृति ही हमारी शुद्ध प्रगति है। यहाँ तुम्हें भावना के जगत का विस्तार देखने और समझने को मिलेगा।"

भैरव तब भी सोच-विचार में ही पड़ा था।

"यहाँ तुम्हें ध्यान की विविध भूमिकाओं को धारण करने की शक्ति प्राप्त होगी। तब तुम्हें पता चलेगा—यह बाहर का जितना भी रंगमंच है, इसमें जितने भी पात्र अभिनय कर रहे हैं। सब की तोतारट मची हुई है, इनके धागों की खींच और ढील किसी और ही सूत्रधार के हाथों में है। कौन है वह सूत्रधार? वह यही भावना है।"—५ ज ने कहा।

भैरव हँसा—"बहुत बढ़िया तुम्हारा धारा-प्रवाह चला यह। ठीक है। एक बात नहीं समझा। हमारी जो यह व्यक्तिगत भावनाएँ हैं, इनका सूत्रधार कौन है?"

"इन सब में प्रबल भावना जिसकी है वह।"

"माता जी की भावना हम सब में प्रबल होगी ?"—भैरव ने पूछा।

"इसमें सन्देह ही क्या है !" ५ज धीरे-धीरे कहने लगा—"और हमें उसकी भावना से भी बड़ी भावनायुक्त की आवश्यकता है। उसी के लिए तो हमारा यह संघ है।"

"माता जी क्यों नहीं अपनी भावना से मेरे जीवन-क्रम का पथ बना देतीं ?"—भैरव ने पूछा।

५ज हँसा—"सच पूछो तो यह उन्हीं की भावना है, जो तुम्हें बीहड़ एकांत में माता-पिता और घर-दर का मोह छुड़वाकर खींच लाई है।"

भैरव ने कहा—"फिर तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो ? तुम्हारे इस आग्रह और विनय का क्या मतलब है ?"

५ज ने जवाब दिया—"सिर्फ मेरा मोह।"

"मुझे छोड़ दो फिर। मैं अपनी राह खुद बना लूंगा।"

५ज ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छी बात है बन्धु तुमने मेरी एक दुर्बलता दूर कर दी। तुम अपनी इच्छा का अनुसरण करने के लिए स्वतन्त्र हो।"

भैरव बिना भैरवी को देखे ही भयंकरवादियों के संघ पर खिंचा हुआ था उसके दर्शन पर तो अब उसे उस मठ के सिवा दूसरा कोई स्थान ही नहीं दिखाई दे रहा था। उसने पूछा—"माताजी की भावना से बड़ी भावना किसकी है ?"

"युग-चैतन्य की—वही हमारा लक्ष्य है।"

"मैं नहीं समझा।"

"हमारा एक विशेष लक्ष्य है। यह जो तुम हमारे बम बनाने आदि के बारे में सुनते हो, वे सब हमारे आवरण हैं। वास्तव में हम भयंकर-वादी नहीं हैं, यह नाम हमें हमारे शत्रुओं द्वारा दिया गया है। हम परम शान्तिवादी हैं।"

"यह तो है ही। युग-चैतन्य को समझाओ।"

"हाँ वही तो। हम अतिमानवता पर पक्का विश्वास रखते है। वह मानव जो अपनी भावना से सारे युग और विश्व को प्रभावित कर देगा—वही युग-चैतन्य है।"

"फिर तुम अवसरवादी हो।"

"हाँ कुछ लोगों को यह नाम पसन्द नहीं, इसीलिए हमने एक नया नाम रख लिया है। सिद्धान्त और ठिकाना वही सनातन है।"

"ठीक है, तो तुम्हारा यह आर्थिक और राजनीतिक संगठन नहीं है ?"

"भावना को ही जो साधारण मानते हों, विश्व का बीज समझते हों उनके लिए ये सिक्कों के टुकड़े, ये विधानों के सूत्र, ये शक्ति के सिंहासन बिलकुल तुच्छता ही है।"

"मैं समझ गया। मुझे तुम्हारे संगठन पर अपने आप श्रद्धा हो गई! मै तुम्हारे अधीन हूँ। मेरे इस हाड़-चाम का तुम जैसा चाहो वैसा उपयोग कर सकते हो।"—भैरव ने कहा।

"चलो हम तुम्हें उसी युग-चैतन्य के पद पर बिठाकर तुम्हारे भीतर उसी की प्राण प्रतिष्ठा करेंगे।"

भैरव के प्राणों में बड़ी मीठी रागनी बजने लगी। वह बोला—"मुझे इसका कोई अहंकार न हो।"

"ऐसे ही क्षेत्र में उसका आविर्भाव होगा।"

भैरव बोला—"चलो।"

"हाँ चलेंगे। तुम हमारे संघ के प्रवर्त्तक बनोगे। माता जी के आसन से भी ऊपर तुम्हारा स्थान होगा।"

"मेरा ?" भैरव चौंक पड़ा—"ऐसा क्यों ?"

"यह उन्हीं का आदेश और उन्हीं की इच्छा है।"

"लेकिन उन्होंने मुझे कभी देखा नहीं है मालूम नहीं मेरे भीतर कौन सी कमजोरियाँ हैं।"

"बल-संग्रह करोगे तुम। हम सब तुम्हारे ऊपर बिजली की लहरें

छोड़ेगे—तुम्हारी सारी कमजोरी शक्ति में बदल जायगी।" ५ ज ने अपने साथ के एटैची को खोलकर कहा—"ये तुम्हारे वस्त्र हैं; इन्हें पहनकर जाना होगा।"

"भावना को तुम फिर यह क्यों वस्त्रों की तुच्छता में लपेट रहे हो? नहीं, मैं जैसा हूँ ऐसे ही चलूँगा।"

"नहीं, तुम्हारे ही विचारों से नहीं, दूसरों के विचारों से भी तुम्हारी भावना बनेगी। तुम्हें ऐसे वेश में माता जी के सामने जाते हुए कई लोग देखकर तुम्हारे विषय में जो धारणा बनायेंगे, उससे तुम्हारे व्यक्तित्व को हानि पहुँचेगी।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" भैरव बोला—'मैं निष्क्रिय होकर तुम्हारे सामने पड़ा हूँ—चाहे जैसा रंग भर दो। मैं तुम्हारा कोई विरोध नहीं करना चाहता।"

५ ज ने उसे घुटनों तक लटकता हुआ एक रेशम का लबादा पहनाया, खूब ढीला-ढाला। रेशम का ही एक पीताम्बर बाँधा। पैरों में एक जरी के काम का जूता पहनाया, सिर में एक नरंगी रंग की मखमली टोपी दी तुर्की टोपी से मिलती-जुलती। हाथ में एक नई रिस्टवाच बाँधी गई, लबादे की बाईं छाती पर की जेब में एक फाउन्टेनपेन। भैरव के हाथ में एक पुस्तक देकर उसकी साज-सज्जा को पूर्णता दी गई।

भैरव ने उस पुस्तक को खोलकर कहा—"यह तो कापी है, सब खाली पेज हैं।"

"हाँ, तुम्हें जब प्रेरणा मिलेगी तो तुम इसमें युग-चैतन्य की गीता लिखोगे।"

बड़ी नम्रता से भैरव ने कहा—"मैं तो कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। मैंने तो कोई भी परीक्षा पास नहीं की है।"

"तुम्हें किसी दफ्तर में नौकरी करनी नहीं है। पढ़ने-लिखने से क्या होता है? पढ़ने-लिखने से कोई क्या लिख पाता है? प्रेरणा से लिखोगे, जो लिखोगे सोचकर नहीं, देखकर। चलो अब देर हो रही है।"—५ ज

बोला।

"चलो।"—कहता हुआ भैरव जब बाहर आया तो उसने देखा, एक स्वयंसेवक एक घोड़ा, एक छत्र और एक चँवर लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। भैरव ने ५ ज की ओर देखा नेत्रों में एक प्रश्न लेकर।

'हाँ तुम्हारे लिए है इसमें चढ़कर जाना होगा। तुम हम सबसे विशेष ऊँची स्थिति पर हो। तुम्हें यह अभ्यर्थना स्वीकार करनी होगी।"

भैरव ज्यों ही घोड़े पर चढ़कर जाने लगा। एक दल कुछ लोगों का और आगे खड़ा था, वह शंख और घड़ियाल बजाने लगा, कुछ भैरव के ऊपर पुष्प और अक्षत बरसाने लगे।

इस छोटे-से जलूस के साथ भैरव मातृ-मन्दिर के द्वार पर जा खड़ा हुआ। वहाँ अनेक सेवकों के साथ कई लोग हाथों में आरती लिए खड़े थे।

भैरव अविश्रान्त नेत्रों से उन लोगों के बीच में त्रिशूलिनी को ढूँढ रहा था, पर उसका कहीं पता न था। घोड़े से उतरने पर फिर एक बार तुमुल शंख-ध्वनि हुई और उसने ५ ज के साथ मातृ-मन्दिर में प्रवेश किया।

एक चौक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरे चौक में ५ ज भी रुक गया। उसने भैरव से कहा—"अब तुम अकेले ही जाओ, पाँचवे चौक में तुम्हें माता जी के दर्शन होंगे।"

भैरव ने चौथे चौक में प्रवेश किया। तीनों चौकों में उसका स्वागत और अभ्यर्थना करने वाले बहुत लोग थे। चौथा चौक बिलकुल शून्य ही था। पाँचवें चौक के प्रवेश-द्वार पर उसे वही त्रिशूलिनी खड़ी दिखाई दी। उसने भैरव के गले में एक फूलमाला डाल दी।

भैरव बोल उठा—"तुम यहाँ खड़े हो? मैं कब से तुम्हें ढूँढ रहा हूँ!"

त्रिशूलिनी ने अपने अधरों पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का संकेत दिया। और धीरे से द्वार खोलकर कहा—"वहाँ जाओ तुम्हारी प्रतीक्षा की जा रही है, उस सामने के कमरे में।"

भैरव ने ज्योंही उस कमरे में प्रवेश किया, त्योंही एक स्थूलकाय प्रौढ़ा उसे देखकर उठ गई। वह एक केसरिया रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए थी। हाथों में सोने की एक-एक चूड़ी थी, गले में एक रत्न-हार था। नाक और कान आभूषण-विहीन थे। माथे पर भस्म-चन्दन की रेखाएँ थीं।

भैरव ने माता के पैर छूने चाहे, माता ने उसे उठा लिया। सारा कमरा भाँति-भाँति की सज्जा से परिपूर्ण था। बढ़िया गलीचे फर्श पर बिछे हुए थे। दीवारों पर नाना देशों की चित्रकारी, एक बहुत बड़ा दर्पण और कार्निसों पर विविध मूर्त्तियाँ। द्वारों और खिड़कियों पर बढ़िया परदे लटक रहे थे। एक छोटे-से मेज पर रेडियो रखा था और एक कोने के सहारे बहुत-से भारतीय वाद्य-यन्त्र थे। अँगीठी के पास रखे हुए धूप-दान में जलती हुई धूप से सारा कमरा सुवासित था।

भूमि पर तकियों के सहारे बैठने का प्रबन्ध था। एक ओर एक फुट-भर ऊँचा तखत बिछा था, उसमें कुछ बढ़िया मखमली कालीन बिछे थे। भैरव ने अनुमान लगाया, वह माता जी का आसन होगा। माताजी ने भैरव का हाथ पकड़कर उसी मसनद पर बिठा दिया और आप खड़ी रह गईं।

भैरव ने लोगों की किंवदन्ती पर माता का जो स्वरूप बनाया था, उसमें कोई भी सादृश्य न पाकर उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उसने माता जी से कहा—"आप भी बैठिए।"

"हम तुम्हारी सत्ता में लोक-चैतन्य का अविर्भाव करेंगे। जब तुम्हारे सामने कोई भी न बैठ सकेगा तभी यह होगा।"

भैरव माता जी की बात को समझने का प्रयास करने लगा।

माता जी बोलीं—"तुम अपने को इसी घड़ी से इस मठ का महा-प्रभु समझो जो कोई बात तुम्हारी समझ में न आती हो उसे पूछ लो।"

"मेरी दीक्षा ?"

"तुम्हें कोई दीक्षा नहीं दे सकता, तुम परमगुरु हो।"

'मेरी परीक्षा ?"

"तुम्हारी कोई परीक्षा नहीं ले सकता।"

"वह त्रिशूलिनी कौन है ?"

माता जी क्षण-भर सन्न रहकर बोलीं—"तुमसे कोई बात नहीं छिपाई जा सकती। वह लड़की बचपन ही से लड़कों के वेश में लड़के की तरह पाली गई है। कोई इस भेद को नहीं जानता। शंका अनेक रखते होंगे तो रखा करें। जब इस मठ से नारी का बहिष्कार किया गया तो वह लड़का समझकर ही यहाँ रहती चली आ रही है। किसी ने भी उसका विरोध नहीं किया, लेकिन···"

"हाँ माता कहिए।"

"लेकिन तुम वह पहले व्यक्ति हो जिसने उसका रहस्य उसके सामने प्रकट कर रख दिया।"

"वह कौन है?"

"मेरी कन्या है।"

अब तो भैरव के काटो तो खून नहीं। वह चुप रहकर बैठा सोचने लगा—"अब यहाँ यह महाप्रभुताई नही चल सकती। ये लोग मुझे यहाँ युग-चैतन्य या योग-चैतन्य जो कुछ भी बनाते हों—बन जाऊँगा मैं यहाँ भोग-चैतन्य। इसलिए बुद्धिमानी है बात अभी ठीक हो जानी चाहिए।"

माता कुछ विह्वलता से बोलीं—"आप उसके सम्बन्ध में जो भी निर्णय देंगे मुझे मान्य होगा। यहाँ रहने की आज्ञा दें अथवा उसे निर्वासित कर दें।"

"विचार कर ही बताया जायगा।"—बड़ी गंभीरता से युग-चैतन्य जी ने कहा। वे एकाएक अपनी उस काया-पलट पर अभी जमकर नहीं बैठ सके थे।

कुछ देर दोनों चुप रहे। भैरव बोला—"अगर उन्हें हम पुरुष के वेश से नारी के रूप मे रख दें तो, क्या हम अधिक सत्य को प्रकट न

करेंगे ?"

"आपकी आज्ञा सर्वोपरि है।"

"झूठ कहाँ तक छिप सकती है ?"

"लेकिन···" माता इतना ही कहकर चुप हो गई।

भैरव ने प्रकरण बदल दिया—"मेरे युग-चैतन्य होने का क्या सबूत है ?"

"ज्योतिष से यह बात जानी गई है। आपको ऐसे प्रश्न कर अपनी महिमा नहीं घटानी चाहिए।"

"मेरा क्या कार्य-क्रम होगा यहाँ ?"—भैरव ने पूछा।

"अपका यह प्रश्न भी आपके गौरव के अनुकूल नहीं।"

भैरव अब अपने आसन में जमकर बैठ गया। उसने कहा—"अच्छी बात है आप अब जा सकती हैं।"

माता जाने लगी—"आपकी सेवा के लिए यहाँ एक स्वयंसेवक नियुक्त रहेगा।"

"कौन ?"

"जिसे आप कहें।"

"वही त्रिशूलिनी।"

"लेकिन···"

"युग-चैतन्य के विधान में तुम्हें क्या कुछ कहने का अधिकार रहेगा ?"

"नही।"—माता चली गई।

१६

पुस्तक का लेख

भैरव मसनद पर से उठा, उसने एक सरसरी निगाह चारों ओर कमरे पर डाली। फिर वह बाहर आया। द्वार के पास एक मनुष्य एक तिपाई में बैठा ऊँघ रहा था। भैरव ने उससे कहा—"क्यों भाई ऊँघ क्यों रहे हो युग-चैतन्य के द्वार पर ?"

मनुष्य अचकचाकर उठ खड़ा हुआ, उसने हाथ जोड़ लिए—"देव, क्षमा हो।"

"कौन हो तुम ?"

"एक स्वयंसेवक हूँ, आपकी सेवा के लिए यहाँ पर नियुक्त हूँ।"

"तुम तो ऊँघ रहे हो, तुम्हें देखकर मेरे भी नींद जोर मार रही है। जाओ सो जाओ। युग-चैतन्य किसी से बेगार नहीं लेता। जाओ, अपने मुखिया को भेजो।"

"मेरा अपराध क्षमा कीजिये।"—स्वयंसेवक गिड़गिड़ाया।

"नहीं मेरी सेवा के लिये कई सेवक मेरे साथ ही हैं।"

"उनके आने तक।"

"वे आ गए हैं। अलग नहीं रहते, ये हाथ-पैर, आँख-कान सब मेरे चाकर ही तो हैं।"

"इसी से युग-चैतन्य की बड़ी महिमा है। उसकी जय हो। उसकी जय से धरती में प्रकाश फैले।"

"तुम पढ़े-लिखे हो स्वयंसेवक, जो कहा गया है उसे मानो।"

स्वयंसेवक चला गया। भैरव को एक ही क्षण प्रतीक्षा करनी पड़ी कि वह त्रिशूलधारिणी आ पहुँची। भैरव मोह-स्तब्ध रहकर उसे

देखता ही रह गया।

उसने एक हाथ से त्रिशूल ऊँचा कर, एक हाथ छाती पर रखा फिर सिर झुकाकर कहा—"आदेश।"

"इधर से कहीं को रास्ता है ?"

"नहीं।"

"तब तुम जहाँ से आई हो, उस द्वार को बन्द कर दो।"

त्रिशूलिनी ने नीची नजर कर कुछ संकोच दिखाया।

भैरव बोला—"मेरी आवाज को माताजी ने इस मठ में सर्वोपरि बनाया है। क्या तुम उनकी इच्छा और मेरी आज्ञा का तिरस्कार करोगी ?"

त्रिशूलिनी ने द्वार बंद कर दिए।

"अब यहाँ कोई नहीं आ सकता ?"

त्रिशूलिनी बोली—"नहीं, कोई नहीं आ सकता। लेकिन ऐसा करने की जरूरत क्या है ?"

"माताजी भी तो यहाँ किसी को नहीं आने देती थीं।"

"कीमती रत्न को बहुत छिपाकर कई तालों में बंद कर रखना पड़ता है। बाहर जो लोगों का कौतूहल पैदा होगा, उसी की बिजली से मेरे भीतर प्रकाश पैदा होगा। तभी तो यह इतनी मोटी किताब लिखी जायगी, इसके इतने पेज रँगने हैं।"—भैरव ने अपने कमरे का परदा हटाकर त्रिशूलिनी को मसनद पर रखी हुई वह कोरी पुस्तक दिखाई।

उस एकांत में एक पुरुष की संगति में उस पुरुषवेशिनी को अपना स्वरूप भूला न रह सका। उसके कपोलों पर लालिमा दौड़ चली, आँखों में लज्जा, और कंठ रुंध गया।

भैरव ने पूछा—"इस चौक के इन बाकी कमरों में कौन रहता है ?"

"अब कोई नहीं। ये सब तुम्हारे लिये खाली करा दिए गए हैं।"

"पहले कौन रहता था ?"

"इस तुम्हारे कमरे में माता जी, सामने वाले में मैं और इस तीसरे

कमरे में अंतरंग सभा के अधिवेशन होते थे।"

"वे अब कहाँ रहेंगी ?"

"चौथे चौक में।"

"और तुम कहाँ रहोगी ?"

"अपनी भाषा ठीक करो, तभी उत्तर दूंगी।"

"यहाँ कौन है सुननेवाला ? किसकी बदनामी की डर है ? हम दोनों ही तो हैं भैरवी ! तुम्हें निर्भय होना चाहिए।"

"नहीं !"

"मैं वाणी का अशुद्ध प्रयोग नहीं करूँगा। सत्य को स्पष्ट ही कहना चाहिए। नहीं तो वह उतनी मोटी किताब कैसे लिख सकूंगा ? उसमें कहानी नहीं लिखनी है। जीवन के तत्व का दर्शन लिखना है। भैरवी ! तुम्हारे कपड़ों से कोई और धोखा खाए, मैं नहीं खाऊँगा—मैं युग-चैतन्य हूँ।"

"चुप रहो, चुप रहो ! तुम क्यों मुझे नारी-सबोधन देते हो ? मैं इसका अभ्यस्त नहीं हूँ।"

"नया अभ्यास हो जाएगा धीरे-धीरे।"

"मैं नारी नहीं हूँ।"—तीव्र प्रतिवाद से वह त्रिशूलिनी बोली।

"तुम्हारे झूठा आवरण है, युग-चैतन्य धरती पर के सब पाखंडों को तोड़ने के लिये तमाम भ्रमों को नंगा करने के लिये और प्रत्येक अंधविश्वास को उखाड़ देने के लिये यहाँ आया है।"

त्रिशूलिनी बोली—"धीरे-धीरे बोलो।"

"नहीं और भी ऊँची आवाज से, सारी धरती पर इसे प्रतिध्वनित करना है। यह देश-देश की कथा है, घर-घर की कहानी है। क्यों भैरवी ?"

"तुम्हारे इस संबोधन से मुझे मर्मांतिक व्यथा पहुँच रही है।"

"यह सत्य की ढक देने का पाप है, कुछ प्रायश्चित देना ही होगा। चलो मेरे कमरे में।"

दोनों ने उस कमरे में प्रवेश किया। भैरवी ने उस त्रिशूल को दो खूँटियों पर तिरछा रख दिया।

"क्यों भैरवी, तुम तो कहती थीं यह त्रिशूल धरती पर नहीं रखा जाता। इन खूँटियों पर रख देने से क्या इसे भूमि का संसर्ग प्राप्त नहीं हो गया ?"

"नहीं, ये खूँटियाँ विशेष प्रकार की नहीं देख रहे हो तुम ?"

"रबर से मढ़ी हुई हैं—क्यों ?"

"रबर से होकर बिजली धरती में नहीं चली जाती इसलिये।"

"खूब ! तुमने पश्चिम के साइंस और पूर्व की आत्मा का समन्वय किया है ! और पैरों की राह से जो बिजली पाताल को चली जाती होगी ?"

"नहीं मेरे चप्पल भी रबर के हैं।"

"मैं समझ गया।" भैरव मसनद पर बैठ गया अपना जूता खोल कर—"आओ, तुम भी आओ।"

"नहीं, इस पर और कोई नहीं बैठ सकता।"—त्रिशूलिनी भूमि के एक अलग आसन पर बैठती हुई बोली।

"यह पुराना विधान होगा। नए विधान में एक कोई अर्थ नहीं रखता। वह विडंबना है, धोखा है। नया विधान युग-चैतन्य का विधान है। युग के माने दो के हैं। बिजली के लिये ऋण और धन दोनों चाहिए, तभी प्रकाश पैदा होगा। और तुम्हारे त्रिशूल में तो तीन काँटे हैं।"

"मुझे माता जी से पूछना पड़ेगा।"

"अच्छा बैठो, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।"

भैरवी बड़े संकोच और भय में डूबकर एक तरफ बैठ गई। भैरव उठकर कमरे में घूमने लगा—"इन संदूकों में क्या है ?"

"माता जी का सामान।"

"लेकिन उन्होंने कहा है अब इन सबका मालिक मैं हूँ।" भैरव ने

एक संदूक खोलकर देखा—"इसमें उनके कपड़े हैं।" भैरव ने एक साड़ी और एक चोली बाहर निकाल ली।

"ये कपड़े क्यों निकालते हो ?"

"इन्हें मैं पहनूंगा।"

"छी ! छी ! तुम क्यों पहनोगे ?"

'तुम्हारा जवाब बनने के लिये। अगर तुम्हें यह ठीक नहीं जान पड़ता तो तुम पहन लो इन्हें। और थोड़ी देर के लिये इस दर्पण में अपना प्रतिबिंब देख तो लो, फिर फैसला करना—सत्य अधिक सुन्दर है या छल ?"

"नहीं, आज नहीं।"

इसी समय बाहर के द्वार को खटखटाने की आवाज आई। भैरव बोला—"जाओ देखो कौन है ?"

भैरवी ने द्वार खोले। उसकी माता थी वह, उसने कहा—"क्यों द्वारों पर साँकल क्यों लगा दी ?"

भैरव भी वहाँ पर आ गया था। उसने उत्तर दिया—"यह युग-चैतन्य की इच्छा है।" आपने कहा था, इस मठ में उसकी इच्छा सर्वोपरि रहेगी। तभी तो उसे प्रकाश प्राप्त होगा।"

माता निरुत्तर रह गई। उसने दूसरे भैरव से कहा—"चलो इनके खाने-पीने का भार तुम्हारे ही ऊपर है और दीपक जलाने का समय हो गया।"

दोनों साथ-साथ चले गए, भैरव अपने कमरे में लौट गया। तखत पर लेट कर विचार करने लगा—"बड़ी विचित्र भूल-भुलैयाँ में आकर फँस गया हूँ। यह अनोखे आदर्शों से भरा भयंकरवादियों का संघ मेरी समझ ही में नहीं आ रहा है। इनकी यह युग-चैतन्यता तो मेरे मस्तिष्क में कोई स्पष्ट रेखा नहीं उपजाती, हाँ यह त्रिशूलिनी—अगर इसका वेश बदला जा सके तो, जरूर काम बन सकता है।"

माता ने लड़की से पूछा—"युग-चैतन्य ने द्वार बंदकर साँकल लगा

देने को कहा ?"

"हाँ ।"

माता सोच-विचार में पड़ गई ।

"मैंने विरोध किया था, पर उन्होंने कहा—"मेरी आज्ञा का विरोध किया जायगा तो फिर मैं अपने पद से गिर जाऊँगा ।"

माता बोली—"जान पड़ता है ज्योतिष में कुछ भूल हो गई ।"

"नहीं माँ, कुछ भूल नहीं हुई ।"

"कैसे कहते हो ?"

"मुझे उस युग-पुरुष के भीतर एक दिव्य तेज दिखाई देता है, जो अवश्य ही संसार के सारे पाखंड और अंधविश्वासों की जड़ हिला देगा ।"

"लेकिन उनका यह द्वार बंद कर साँकल लगा देगा, अंधविश्वासों का निर्वाण है या निर्माण ?"

"वे कहते हैं, जब मुझे बाहरी दुनिया से छिपाकर यहाँ रखा गया है तो मैं भीतरी दुनियाँ से भी छिप जाऊँगा ।"

"अकेले में छिप सकते हैं । किसी के साथ नहीं ।"

"उनके द्वार पर एक स्वयंसेवक तो चाहिए ही ।"

"जो है वही रहेगा ।"

"वे उसे नहीं चाहते । मेरा कमरा तो नहीं है ।"

"लेकिन द्वार बंद नहीं होना चाहिए ।"

"मैं कह दूंगा उनसे ।"

"कौशल से कहना पड़ेगा । जल्दी मत करो । तुम कहते हो ज्योतिष की गणना में भूल नहीं हुई ।"

"नहीं भूल तो बिलकुल नहीं हुई है ।"

"उन्होंने उस पुस्तक का कोई पेज लिखा क्या ?"

"नहीं, लिखने की बात कहते तो हैं ।"

"एक पेज भी लिख जाए तो ज्योतिष की बात का पता चल

जाएगा।"

"किस तरह ?"

"ज्योतिष के द्वारा वह लिखा हुआ पेज हमारे पास रखा है। अगर वह उनके लिखे पेज से मिल गया तो फिर हमें कोई भय नहीं है।"

"मिल जाएगा, जरूर मिल जाएगा।"

"अच्छा जाओ तुम दीपक लेकर जाओ, अन्धकार बढ़ रहा है।"

भैरवी दीपक जलाकर भैरव के कमरे को ले चली। उसकी माता ने उसे रोककर कहा—"ठहरो यह एक चादर ओढ़ लो।"

"क्यों माँ ?"

"चादर की ओट हवा से दीपक की रक्षा करेगी। इसके सिवा तुम उसे गले में धारण किए रहना।"

"क्यों ?"

"पुरुष भी चादर ओढ़ते हैं।"

भैरवी दीपक को चादर की ओट में कर जब भैरव के पास पहुँची तो वह कहने लगा—"मेरी इच्छा की आधी पूर्ति कर तो तुम ले ही आई हो।"

"मैं नहीं समझा।"

"यह चादर ! द्वार बन्द कर सांकल चढ़ा दो।"

"अभी तो तुम्हारे लिए भोजन लाऊँगा।"—कहकर भैरवी भोजन लेने गई।

अपना भोजन कर और युग-चैतन्य का भोजन लेकर जब वह जाने लगी तो माता ने उसे फिर सचेत किया—"द्वार में साँकल न लगाना और ज्यादा देर उनके कमरे में न बैठना।"

"लेकिन उनकी इच्छा को भी ठुकराना नहीं है।"

"हाँ, कौशलपूर्वक।"

भैरवी जब भोजन लेकर भैरव के कमरे में पहुँची तो वह उस पुस्तक के पहले पेज में कुछ लिख रहा था। खाना तिपाई पर रखकर

वह बोली—"तुमने तो इस पुस्तक में लिखना शुरू कर दिया ?"

भैरव ने पुस्तक बन्द कर दी—"लेकिन अभी तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं। लो अब यह साड़ी पहन लो।"

"माता जी नाराज होंगी।"

"द्वार पर साँकल लगा दो, मेरी आज्ञा है।"

भैरवी द्वार पर साँकल लगा आई। भैरव ने फिर उसकी ओर साड़ी बढ़ाई। वह उसके आग्रह का विरोध न कर सकी। उसने उसके भीतर जिस नारी को जगा दिया वह विवश होकर अपने वेश के लिए अधीर हो उठी। वह साड़ी लेकर बोली—"मैं अपने कमरे में जाकर बदल लाता हूँ।"

तुरन्त ही वह साड़ी बदल कर आ गई, जब उसने दर्पण में अपने को देखा तो भैरव ने कहा—"तुम ऐसी भुवन-मोहनी नारी हो, मैंने ही तुम्हें सबसे पहले यह चेतना दी। किस कारागार से निकालकर मैंने तुम्हें मुक्ति की ज्योति में रख दिया। कीड़े का जाल काट कर कैसी रंगीली तितली बनी हो। अब आगे क्या होगा ?"

"फिर अपने कपड़े बदल त्रिशूल हाथ में ले लूंगा।"

"नहीं अब उस कारागार में नहीं जाने दूंगा मैं तुम्हें।"—भैरव ने उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया।

सिहर उठी भैरवी—"तुम युग-चैतन्य हो।"

"नहीं, मैं उस पद को नमस्कार करता हूँ, तुम मेरी सबसे बड़ी चेतना हो। चलो हम दोनों इस रात में भाग चलें।"

"किस मार्ग से ? इधर चारों चौकों पर स्वयंसेवक हैं।"

"छत पर चढ़कर। माता जी की दो-तीन साड़ियाँ बाँध कर छत से नीचे लटका देंगे और उनसे उतर कर इस चाँदनी रात में रात-ही-रात हम दूर निकल जायेंगे। तुम चलने को तैयार हो ?"

"हाँ मैं चलूंगी।"

"अब इस बार तुमने ठीक भाषा बोली। कुछ देर ठहर जावें।

सबको सो जाने दें। तब तक मैं छत पर से कमंद बाँधकर नीचे लटका देता हूँ।"—कहकर भैरव ने माता जी की दो साड़ियाँ बाहर निकालीं और ऊपर छत पर चढ़ गया।

भैरव ने दोनों साड़ियों को आपस में जोड़कर छत पर की एक मुंडेर से बाँध दिया और नीचे उतर आया। भैरवी अपने नए वेश को दर्पण में देख-देखकर मगन हो रही थी।

"भैरवी! सत्य कितना सुन्दर है। इन लोगों ने किस तरह उसे अन्धकार में ढक दिया है। इन शत्रुओं के बीच में एक क्षण नहीं रहना चाहिए।"

भैरवी बोली—"त्रिशूल भी ले चलूँ?"

"नहीं, उससे पहचाने जायेंगे। बोझा कुछ भी साथ नहीं ले जाना है।"

"कहाँ चलेंगे?"

"तुम्हें पाकर जंगल में मंगल जाग उठेगा, मरु-भूमि हरी हो जाएगी, चलो।"

"माता जी बड़ी देर में सोती हैं।"

"कब तक प्रतीक्षा करें उनके सो जाने की?"

"उसकी आवश्यकता क्या है? जब हम दोनों के मन एक हैं तो फिर कौन पकड़ सकता है हमें?"

"कोई नहीं पकड़ सकता।"

"जाने के लिए कोई दिशा तो सोचनी पड़ेगी।"

"तुम्हें रास्ते मालूम हैं?"

"मैं पहचाने रास्तों से जाने में डरती हूँ।"

"पर तुम बिलकुल बदल गई हो, मैं भी अपने कपड़े बदल लेता हूँ।"—भैरव ने युग-चैतन्य के कपड़े खोल दिए और एक सफेद धोती-चादर पहन ली, एक सफेद साफा सिर पर लपेट लिया।

"लेकिन मुझे पहचान लेगा कोई।"—भैरवी ने दर्पण में मुख

देखते हुए कहा ।

"कुछ घूंघट काढ़ लिया जाएगा, खटके की जगहों पर। चलो हम भारत को ही चलें ।"

"तुम्हारे घर ?"

"नहीं, घर पर मेरे बहुत-से दुश्मन हैं।"—भैरव ने कुछ सोच-विचार कर कहा ।

"फिर कहाँ ?"

"तुम्हारे और मेरे इन दो घरों को छोड़कर और कहीं भी। इस समय तो हम चलें, हमें इसी विचार को कर्म का रूप देना है। चलो, द्वार बन्द है न ?"

"हाँ, द्वार तो बन्द है ।"

"फिर खुला क्या है ?"

"कमरों के नीचे की सुरंग।"

"उसे भी बन्द कर दें।"

"वह बन्द नहीं हो सकती। एक इशारे पर खुलती और बन्द होती है ।"

"जल्दी करो फिर। छत से नीचे कूद जाने की बात है, फिर कौन पकड़ सकता है हमें ?"

"दिया बुझा दूं ?"

"नहीं ।"—भैरव ने अपनी पुस्तक का वह पहला पेज खोलकर दीपक के निकट रख दिया ।

"तुमने पुस्तक लिखनी शुरू कर दी क्या ? पढ़ूं तो ।"—भैरवी उसे पढ़ने लगी ।

"यह वह पुस्तक नहीं है। इसमें हमारे जीवन का पहला पृष्ठ है ।"

भैरवी पढ़कर हंस पड़ी। दोनों दबे पैर बड़ी सावधानी से छत पर चढ़ गए ।

भौतिक जगत की स्थूल संसर्ग में चलती फिरती छायाओं और

आवाजों से बारीक जो मन की लहरों के खटके हैं, उनकी कोई परवा नहीं करता। माता जी को न जाने क्या सूझा। अपने कमरे में बैठी-बैठी वह उठीं। ठीक उसी समय जब भैरव और भैरवी छत पर चढ़ रहे थे।

माता ने द्वार खटखटाकर कहा—"भैरव, द्वार खोलो।"

किसी ने नहीं सुना, उत्तर कौन देता? माता को कुछ खटका हुआ और वह सुरंग खोलकर पाँचवें चौक में जा पहुँची तुरन्त ही। वहाँ जाकर उसने देखा युग-चैतन्य का कमरा खुला था, पर उसमें प्रकाश जगमगा रहा था।

वह तुरन्त कमरे में घुस गई। वहाँ किसी का पता न था। पुस्तक का पहला पेज दीपक के प्रकाश में खुला था। उसने उसे पढ़ा—

"बड़ा भारी यह युग-चैतन्य का बोझ मेरे सिर पर लाद दिया है। जरूर तुम्हारे ज्योतिषी ने गणना में भूल की है। खैर, भूलें होती रहती हैं। इस भूल को मैं नहीं सुधार सकता, लेकिन एक दूसरी भूल जो तुम्हारे मठ में बहुत दिनों से चली आ रही थी, उसे मैंने ठीक कर दिया। अर्थात् तुम्हारा भैरव जो असल में एक नारी का अस्तित्व रखता था, मैंने उसके नकली कपड़े खोलकर उसे भैरवी बना दिया। इसके पारिश्रमिक स्वरूप मैं उसे ही लेकर जाता हूँ। उसे ले जाने का एक कारण और भी है—अब तुम जिसे भी युग-चैतन्य की पदवी पर बिठाओगी—वह बेरोक-टोक बन जाएगा, क्योंकि उसके मार्ग के काँटों को मैं अपने गले का हार बनाकर ले चला। धन्यवाद!

"माता जी की जय!

विनीत

भैरव।"

'पुनश्च—एक-दो पंक्तियाँ ५ ज के लिए लिखनी जरूरी हैं, क्योंकि इस मठ का संधान मुझे उसी की कृपा से मिला

था। उससे कह देना मुझे असली वर्तमान अब मिला है। अब कहीं जाकर मैं भूत और भविष्य की उलझनों से मुक्त हुआ। एक प्रस्ताव और है, गणना में आता है अगर आप ५ ज को युग-चैतन्य के कपड़े पहना दें तो वह जरूर सफल हो जाएगा। पढ़ने पर इस पेज को फाड़ दें। आशा है, आप इस पर विचार करेंगी।

भैरव।"

माता के सिर से पैर तक का रक्त खौलने लगा। वह दौड़कर बाहर आई। इधर-उधर देखा उसने, छत पर धीरे-धीरे वे बोल रहे थे। माता ने बन्द किया हुआ द्वार खोल दिया और रस्सी खींचकर खतरे का घण्टा बजा दिया। पाँचों चौकों में लटकते हुए घण्टे उस राह की शून्यता में एक साथ ही बज उठे—"घ-न-न-न ! घ-न-न न !"

छत में चढ़ने पर भैरव और भैरवी के बीच में एक विवाद छिड़ गया। भैरव ने कहा—"भैरवी, पहले तुम उतरो।"

लेकिन भैरवी डरकर बोली—"मुझे भय लगता है, कहीं धोतियों की गाँठ खुल न पड़े। पहले तुम उतरो।"

भैरव ने कहा—"भय कैसा ? तुम त्रिशूल-धारिणी हो !"

"अब कहाँ हूँ ? तुमने मेरी उस वीरता को उखाड़कर मेरे मानस में नारी की भावना जगा दी है।"

भैरव पहले भैरवी को ही बाहर धरती पर उतार देना चाहता था। उसने सोचा, मेरे यहाँ से चले जाने पर न जाने इसकी विचारधारा किधर को चली जाय ? वह बोला—"अच्छा मैं कुछ दूर तक जाकर यह साबित कर देता हूँ कि यह कमन्द बिलकुल पक्की है।"

"भैरवी राजी हो गई। भैरव बहुत दूर तक नीचे उतरकर फिर ऊपर चढ़ आया और बोला—"लो उतरो अब।"

इसी समय बड़ी जोर से पाँचों चौकों में खतरे का घण्टा बज उठा। भैरव ने बड़ी चिन्ता में पड़कर पूछा—"यह घण्टा कैसा ?"

"खतरे का घण्टा है ! जान पड़ता है, हमारे भागने की बात खुल गई।"

"अब भी समय है। तुम पकड़कर उतरो, मैं कूद पड़ता हूँ !"—कहकर भैरव धरती पर कूद गया, लेकिन भैरवी दुविधा में पड़ी वहीं खड़ी रह गई।

इतने ही में माता छत पर चढ़ गई थी। उसने भैरवी का हाथ पकड़ लिया। भैरवी माता की आहट पाकर जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगी थी। माता के हाथ पकड़ते ही उसकी छाती से चिपट गई—"माँ ! माँ ! बचाओ, यह मुझे जबर्दस्ती भगाकर ले जा रहा था।"

"जबर्दस्ती भगा ले जा रहा था ? तुमने ये कपड़े क्यों बदले ?"—माता ने कुछ शक में भरकर पूछा।

"उसने छुरा दिखाकर मुझे मार डालने की धमकी दी।"

"कहाँ है वह ? जरूर गणना में भूल हो गई !"—माता ने कहा।

चारों ओर स्वयंसेवक लोग पाँचों चौकों की छतों पर अस्त्र-शस्त्र लेकर जमा हो गए थे। वे चिल्ला-चिल्लाकर पूछने लगे—"माताजी आज्ञा दीजिए।"

माता ने भैरवी से पूछा—"बताती क्यों नहीं कहाँ है वह ?"

"भूमि पर उतर गया।"

माता ने पुकार कर कहा—"चोर भागा जा रहा है नीचे, छत पर से कूद कर, उस पर गोली चलाकर उसे मार डालो।"

कुछ स्वयंसेवक उस धोती की राह नीचे उतर गए। कुछ ने यों ही छत पर से उस छिटकी हुई चाँदनी में गोलियाँ चला दीं।

माता ने सरोष कहा—"उसको मार डालो, नहीं तो वह हमारा सारा भेद बाहर दे देगा।"

जो स्वयंसेवक नीचे उतर गए थे, वे चारों ओर को दौड़ गए, सूत किसी को भी कुछ नहीं मिला था। दौड़ने से कर्त्तव्य की पूर्त्ति होगी इसीलिए वे दौड़ने चले गए।

नीचे उतरकर भैरव सिर पर पैर रखकर भागा। उसने मन में सोचा—नियति सहायक नहीं हुई ! जितना ऊँचा उठा था, यह तो उतना ही नीचे गिर गया !

मकान की छाया में दौड़ता गया वह, कोई न देख सका उसे। दौड़ते दौड़ते वह नदी के किनारे आ गया। जल में ऐसी ठंडक तो कुछ थी नहीं ! जाड़ों में अधिक वर्षा नहीं हुई थी, जो कुछ हुई वह बह चुकी थी। धारा में तीव्रता थी पर गहराई नहीं। अधिक से अधिक उसके घुटनों तक पानी होगा। उसी ओर उसे सुरक्षित पथ जान पड़ा।

भैरव नदी में कूद गया ! वह तैरना जानता था लेकिन तैरने की जरूरत पड़ी नहीं। नदी पार कर वह कुछ दूर तक रेत में दौड़ा। उसके कपड़े सफेद थे किसी की दृष्टि नहीं खींच सका वह। फिर वह जंगल की हरियाली में मिल गया।

२०

गूँगा यात्री

रात भर भागता ही रहा भैरव। न-जाने कितने खाई-खंदक, गिरि-वन नदी-नाले पार कर गया वह। प्राणों के त्राण के आगे न उनकी कठिनाई ही उसके विचार में आई न उनकी गिनती। माता जी की उसे मार डालने की आज्ञा उसने सुन ली थी, उसी से उसे भाग जाने का बल मिला।

कहाँ किस ओर वह जा रहा था? इसका कुछ भी ज्ञान नहीं था उसे। चाँदनी ने सुबह तक उसका साथ दिया। इसे उसने भगवान् का वरदान समझा। रात-ही-रात में वह कम-से-कम बीस-पच्चीस मील चला गया होगा और ऊँचाई?—इसका कोई अन्दाज ही नहीं।

प्रभात की ज्योति में उसने पेड़-पौधों को देखा, भूमि की बनावट को देखा। उसने मन में निश्चय किया, वह भारत की ओर नहीं बढ़ रहा है, अवश्य ही किसी नए देश और राज्य में चला गया है।

एक स्थान पर बैठकर उसने मन में सोचा—"अब मेरा पीछा करने वाले नहीं पकड़ सकते मुझे, मैं उनकी पहुँच से बहुत दूर आ गया हूँ। कहाँ आ गया हूँ? रात-भर जिस वेग से भागा हूँ, वह मेरी शक्ति से नहीं हुआ। उन जंगलों को याद कर मेरे प्राण काँपते हैं। यह कैसा अद्भुत संयोग है, किसी भी जंगली पशु से मेरा सामना हो जाता तो क्या होता। लेकिन भगवान् को मेरी रक्षा करनी थी। अब क्या होगा? अब तो न राह मालूम है, न राह का भोजन ही पास में।"

वह फिर उठकर चला, अचानक उसे कुछ जानवरों के पैरों की आवाज और मनुष्यों की बोल-चाल सुनाई दी। वह तेजी से उधर चला

गया। वहाँ जाकर उसने अपने को एक मार्ग में पाया। उसमें बहुत से व्यापारी अपना सामान जानवरों पर लादे हुए जा रहे थे।

बड़े धीरज से वह उन लोगों के साथ चलने लगा। एक व्यापारी ने उससे कुछ पूछा। लेकिन वह उसकी समझने योग्य भाषा न थी। उसने कोई उत्तर न देकर इशारा किया।

वह व्यापारी सिकम की राजधानी गंगतोक और ल्हासा के बीच में व्यापार करता था। हिन्दी टूटी-फूटी बोल लेता था। उसका वेश देखकर उसने उसे भारतीय समझकर पूछा—'कौन हो तुम? कहाँ से आए हो? और इधर कहाँ जा रहे हो?"

भैरव को एक उपाय सूझा। उसने मन में निश्चय किया अगर इससे कुछ कहता हूँ तो फिर सारी पोल खुल जायगी और न जाने शक हो जाने से यह क्या सोचे? इसलिए उसकी दया आकर्षित करने के लिए भैरव गूंगा बन गया। उसने पेट बजाकर कुछ अजीब तरह के इशारे किए।

व्यापारी बोला—"हुकम है तुम्हारे पास इस मुल्क के राजा का।"

भैरव ने फिर अपना पेट बजाया और रोने का अभिनय करने लगा।

"यहाँ दूसरे मुल्कवाले को बिना परवाने के घुसने की इजाजत नहीं है।"

लेकिन भैरव उस व्यापारी के साथ चलता ही रहा। व्यापारी के कंधे पर एक थैले का बोझ था, जो उसने किसी बीमार बकरी को मदद देने के लिए अपने कंधे पर रख लिया था। भैरव ने उसके कंधे पर से वह थैलों का जोड़ा अपने ऊपर ले लिया।

व्यापारी हँस पड़ा और उसने अपने सत्तू के संग्रह में से कुछ उसे दे दिया। भैरव ने सत्तू फाँककर पानी पी लिया और फिर उसी व्यापारी के साथ चलता रहा।

व्यापारी कहने लगा—"तुम्हें इस तरह खाने-पीने और साथ की मदद देने से हमारे ऊपर भी बात आ जायगी इसलिए अगली चौकी से

तुम्हें हमारा साथ छोड़ देना होगा।"

भैरव फिर रोने लगा—"हूँ ! हूँ !"

व्यापारी ने अपने साथियों से कहा—"यह अच्छा रोग साथ लग गया, क्या करूँ ? इसकी दशा देखकर दया तो आती है। काम करने को तैयार है यह, लेकिन चौकीवालों को क्या जवाब दिया जायगा ?"

एक साथी व्यापारी ने कहा—"एक तरकीब मैं बताता हूँ। बिचारा परदेसी, बेजुबान, बोलने से लाचार। हमें इस पर दया करनी चाहिए। मेरे पास एक पुराना छुपा है, मैं इसे दे देता हूँ। यह गरम मुल्क का रहनेवाला अब बहुत ऊँचे पहाड़ों पर आ गया है। जाड़े से भी इसकी हिफाजत हो जायगी और एकाएक परदेसी समझकर कोई सरकारी नौकर इसे दिक भी न कर सकेगा।"

दूसरा कहने लगा—"जो दया हम इस पर करेंगे वह इसी जन्म में वसूल हो जायगी। सिर्फ जीभ कटी हुई है इसकी, हाथ-पैर तो दुरुस्त ही हैं। हमारे जानवरों को चारा लाया करेगा। उनके बाँधने-खोलने में मदद करेगा। आग-पानी का सहारा हो जायगा इससे।"

उस व्यापारी ने एक गधे के बोझ के नीचे उस मैले और फटे छुपे को रख रखा था कि जानवर के पीठ न लगे। मिट्टी के तेल के दो भरे कनस्तर लदे हुए थे उसके इधर-उधर। उसने इशारा कर भैरव को बुलाया और एक तरफ से सहारा देकर वह कनस्तर नीचे उतारने को कहा।

कनस्तरों के नीचे उतर जाने पर व्यापारी ने अपना छुपा निकाल लिया। गधे पर का बोझ फिर वैसे ही रख दिया गया।

भैरव को जब वह छुपा पहनाया गया तो उसकी शकल बहुत कुछ बदल गई। अब एकाएक सरसरी निगाह से देखने पर किसी को भी उसके ऊपर शक होने की बात नहीं थी। व्यापारी की एक चमरी के गले में पोर्सलेन के सफेद और नीले बड़े-बड़े दानों की एक माला बँधी थी। बीच में एक ताँबे का घण्टा था।

उसने उस माला में से सिरों पर के छः दाने निकालकर एक तागे

में पिरोकर भैरव के गले में पहना दिए। गूंगे ने बहुत खुशी दिखाई और प्रसन्न होकर उन व्यापारियों के साथ उनका-सा होकर चलने लगा।

शाम को पड़ाव पर वह जानवरों की पीठ पर से बोझ उतारता, जानवरों को ले जाकर चराता, उन्हें पानी पिलाता और समय पर पड़ाव पर ले आता। वह सबका ही काम कर देता, पर जिस व्यापारी ने उसे छुपा दिया था, उसकी वह विशेष प्रीति से सेवा करता।

वह तम्बू ठोकता, सामान ठीक जगह पर लगाता, पानी भरता आग जलाता और जो कुछ वे लोग इशारों द्वारा उससे कहते सबका हुक्म बजा लाता।

ज्ञांची पहुँचते-पहुँचते भैरव उन व्यापारियों के साथ बहुत घुल-मिल गया। तिब्बत की नमकीन चाय में चांबा घोलकर पीते हुए अब उसे सात-आठ दिन हो गए थे।

दिन-भर उन व्यापारियों के साथ मुँह सीकर चलना पड़ता था उसे। पहले बड़ा चौकन्ना होकर रहता था। कहीं भूल से कोई शब्द मुँह से निकल जाने पर उसका सारा षड्यन्त्र खुल पड़ता पर भगवान् ने उसकी रक्षा की। फिर उसकी आदत हो गई।

इस जरूरत से सिर पर आ पड़े मौन-व्रत द्वारा भैरव की विचार-शक्ति का विकास होने लगा। बोलना मनुष्य की बहिर्मुखता है, उसकी धारा बन्द हो जाने पर विवश होकर उसे अन्तर्मुख होना पड़ा।

भूत काल बहुत स्पष्ट होकर उसके मानस में उभर आता। कभी वह बासो को सोचता और कभी भैरवी को। भैरवी को पाने पर वह बासो को विश्वासघातिनी समझ उसे भूल गया था। अब भैरवी को भी वह उसी की कोटि में गिनता है। दोनों के चित्र जब कभी उसकी स्मृति में उदित होते हैं तो वह बड़ी घृणा से उन्हें मिटाने की चेष्टा करता है। लेकिन उन चित्रों पर वह अपना वश नहीं समझता।

ज्ञांची में कुछ दिन का पड़ाव रहा उनका। कुछ भारतीय बाजारों का माल उन्हें वहाँ उतारना था और कुछ माल ल्हासा के लिए भरना

था। इसके सिवा कुछ व्यापारियों की रिश्तेदारी भी थी वहाँ।

भैरव सुबह कुछ खा-पी सत्तू बाँध जानवरों को चराने चला जाता। दिन-भर जंगलों में ही बिता देता और संध्या समय डेरों को लौटता।

एक दिन वह जंगल में एक टीले के ऊपर आराम करता हुआ सपने को देख रहा था—"आगे क्या होने वाला है? कहाँ को चली जा रही है यह जीवन की नाव? वाणी के समान अत्यन्त उपयोगी माध्यम की बलि देकर उसने यह जो मौन साधा है कहाँ जाकर इसका अन्त होगा?

"माता-पिता कहाँ है? घर-द्वार कहाँ?—इतनी दूर आ जाने पर अब उसे जननी-जनक और जन्मभूमि का अनुराग बेचैन करने लगा।

"माता-पिता जैसी दुर्लभ निधि का तिरस्कार कर क्यों घर से भाग आया? निस्सन्देह यह उसी पाप का दण्ड है, जो मुझे भरना पड़ रहा है। कैसे यह प्रायश्चित्त पूरा हो और कैसे मैं भारत को जाऊँगा?"

व्यापारी लोग आपस में तिब्बती भाषा में बोलते थे, जिसका वह एक शब्द भी नही समझ सकता था। इसलिए वह और भी उनके साथ की अपनी गतिविधि का कोई अन्दाज नही लगा सकता था।

वह उसका अपना व्यापारी कभी-कभी उसके साथ दो-चार शब्द हिन्दुस्तानी के बोलता था। उन्हीं के आधार पर भैरव ने यह अनुमान लगाया था, कुछ दिन बाद वह ल्हासा जाकर फिर सिकिम को लौटेगा। वहाँ से सम्भवतः कलिंपोंग और दार्जिलिंग तक भी।

यही दिवा-स्वप्न देख रहा था वह उस दिन। सिकिम की सीमा पर भयंकरवादियों से भेंट की बातें सोच रहा था। कभी उनके द्वारा पकड़ा जाकर अपनी दुर्दशा देखता और कभी उनके मठ की सूचना देकर पुलिस को वहाँ ले जाने की कल्पना करता।

इसी समय उसने घोड़े की टापें सुनीं। एक घोड़े में एक सुसज्जित अफसर उधर से आ रहा था। उसकी दृष्टि चारों ओर भटक रही थी, ऐसा जान पड़ता था, मानो वह कोई चीज ढूंढ रहा था। भैरव उठा और संभलकर बैठ गया।

दूर से उसे देखकर वह घुड़सवार वहीं पर आ गया और उसने तिब्बती भाषा में भैरव से कुछ कहा।

भैरव कुछ नहीं समझा और उठकर खड़ा हो गया।

घुड़सवार ने फिर कुछ कहा। भैरव ने सोचा—केवल चुप रहना मूर्खता है। उसने अपनी गूंगी भाषा में कहा—"हूँ! हूँ! हूँ ऽ गूं! गूं! गूं!"

अफसर ने न-जाने अपना क्या अपमान समझा, वह घोड़े से उतरा और उसने भैरव की कनपटी पर एक तमाचा जड़ दिया।

उस चाँटे की पीडा से भैरव की बुद्धि डांवाडोल हो गई, उसके इतने दिन से पाला गया मौन-व्रत भंग हो गया। अचानक ही उसके मुंह से उस चांटे के प्रतिकार में निकल पड़ा—"अरे बाप रे!"

तिब्बती वेश के भीतर विदेशी शब्दों को निकलते हुए देखकर वह अफसर और भी ताज्जुब में पड़ गया। उसने दार्जिलिंग के एक स्कूल में शिक्षा पाई थी। वह खूब अच्छी तरह हिन्दुस्तानी जानता था। उसने भैरव से पूछा—"कौन है तू?"

भैरव ने फिर अपना मौन-व्रत जोड़ लिया और वह इधर-उधर के इशारे का ऊँ-ऊँ गूं-गूं करने लगा।

"बहुत चालाकी मत कर, सच बता कौन है तू?"

भैरव फिर वैसा ही करने लगा।

अफसर बोला—"काला घोड़ा देखा है एक?"

भैरव ने इशारे से एक ओर दिखाया।

अफसर ने कहा—"ले आओ इधर।"

भैरव दौड़कर काले घोड़े को ले आया। अफसर का अपना खोया घोड़ा मिल जाने से कुछ क्रोध तो चला गया था, पर भैरव पर जो उसका संशय हो गया था, उसे मिटाने को उसकी बेचैनी बढ़ गई थी। उसने भैरव से कहा—"इस घोड़े को लेकर मेरे साथ चल।"

भैरव ने अपने जानवरों की ओर इशारा किया। अफ़सर नहीं

माना और बलपूर्वक भैरव को अपने साथ ले गया। अपने घर जाने के बाद उसने भैरव से कहा—"चल, कहाँ रहता है तू ?"

भैरव उसे अपने व्यापारियों के तम्बुओं पर ले गया। अफसर ने एक व्यापारी से पूछा—"यह कौन है ?"

व्यापारी ने कहा—"कोई नहीं है हुजूर, एक गूंगा भिखारी है, हमारे जानवरों की देख-रेख करता है।"

अफसर ने प्रतिवाद किया—'गूंगा नहीं है, कोई जासूस है।"

सभी व्यापारी हँस पड़े—"नहीं साहब, जासूस नहीं है। बड़ी बुरी दशा में से हमने उबारा है इसे।"

"कहाँ का है ?"

"नेपाल का है या सिकिम का।"

"लेकिन शकल नहीं मिलती।"

"अपना काम करें आप, वहम में न पड़ें।"

"मैंने इसे साफ-साफ बोलता सुना, तुम इसे गूंगा कहते हो।"

"यह हफ्तों से हमारे साथ है और हमने कभी इसका एक लफ्ज भी नहीं सुना। आपके कानों में कोई गूँज पैदा हो गई। आँखों को भी धोखा होता है और कानों को भी।"

अफसर फिर भी नहीं माना उसने अपनी डायरी में उनका नाम लिख लिया और भैरव से बोला—"क्या है तेरा नाम ?"

भैरव ने उसे अँगूठा दिखाकर जीभ बाहर निकाली। यह विचित्र मुद्रा उसने तिब्बत के भिखारियों को देखकर सीख ली थी।

व्यापारी ने कहा—"भिखारी का भी कहीं कुछ नाम होता है ?"

अफसर ने उसके अंगूठे में कुछ स्याही लगाई और उसकी छाप अपनी डायरी में ले ली और व्यापारियों से कह गया—"इस पर खास निगरानी रखना। विदेशियों के कुछ जासूस आए हैं इधर।"

अफसर के जाने पर सब व्यापारी हँसने लगे। एक ने कहा—"जैसे बहुत तेज नशा कर आया है।"

भैरव महामूर्ख बनकर सामने खड़ा था। उसके मालिक ने पूछा—"कहाँ हैं जानवर ?"

भैरव ने जंगल का इशारा दिया।

"जाओ, ले आओ उन्हें। अफसर को क्यों नाराज कर दिया तुमने ?"

भैरव ने कई तरह से उसके खोए हुए काले घोड़े का बोध कराना चाहा उन्हें, पर सफल न हुआ। अन्त में हार मानकर जंगल को चला गया।

जब तक वे लोग झांची में रहे तब तक भैरव रोज उस मोटे-ताजे तिब्बती अफसर को अपने सामने खड़ा ही पाता और मन में यह समझने की चेष्टा करता—"आखिर मैंने उस दिन उसका क्या कसूर किया ?"

चौथे दिन वे लोग झांची से ल्हासा को रवाना हुए। सात-आठ दिन की यात्रा के बाद जब एक दिन उनका पड़ाव क्यीचू और सांगपो नदियों के संगम में पड़ा था, तब फिर एक बड़ी विचित्र घटना हो गई।

भैरव को उस दिन एक बकरी के रास्ते में मर जाने के कारण उसके बोझ का एक भाग ढोना पड़ा। कभी जीवन में उसने बोझा तो ढोया था नहीं। घर पर जब रहा तो अनेक नौकर-चाकरों की सेवा पर ही रहा और भयंकरवादियों के मठ में तो युग-चैतन्य ही बनने को था।

दिन-भर कई हफ्तों से पैदल यात्रा और कंधे पर बोझ। खाना खाते ही उसे नींद आ गई। एक-दो व्यापारी अभी जाग रहे थे, कुछ हिसाब-किताब पर उनमें बहस हो रही थी। उसी तंबू के एक ओर भैरव भी पड़ा था। कहाँ भारत का समुद्र तल और कहाँ वह ऊँचाई दस हजार फुट से भी ऊँची ! कुछ उस अनभ्यस्त हलकी हवा का भी असर था।

सोते हुए वह सपना देख रहा था। सपने में अब माता-पिता, वह बासो—भैरवी—ये सब मिट चुके थे, अब तो उसे वही तिब्बती अफसर

दिखाई देता था। वह मोटा-ताजा, विचित्र वेश-भूषा में ! लम्बी चोटी, कानों और गले में कीमती आभूषण पहने। वह उसका अंगूठा छापकर अपनी डायरी में ले गया था। वही फिर उसके स्वप्न-राज्य का द्वार खटखटाकर घुस आया उसके मन के भीतर।

भैरव ने सोते-सोते देखा, अफसर के साथ बासो और भैरवी भी थीं। अफसर ने उन्हें दिखाकर उससे पूछा—"पहचानते हो इन्हें ?"

भैरव ने फिर वही गूंगे का अभिनय करना शुरू किया।

अफसर ने अब बासो से पूछा—'तुम पहचानती हो इसे, कौन है यह ?"

"हाँ मैं पहचानती हूँ। यह बड़ा बदमाश है। मुझे भगाकर बम्बई ले गया और वहाँ इसने मुझे बेच दिया।"

"यह गूंगा तो नहीं है न ?"

"नहीं गूंगा नहीं है, बन रहा है। अभी इसकी पीठ में दो-चार कोड़े जमाइए यह बोलने लग जाएगा।"

अफसर ने फिर भैरवी की ओर मुख कर पूछा—"तुम भी पहचानती हो इसे ?"

"हाँ, यह अच्छा आदमी नहीं है। मेरी माता ने मुझे इसकी सेवा में रखा और यह मुझे भगाकर ले आया। जब माता को यह बात मालूम हो गई तो यह मुझे छोड़ आया, बड़ा विश्वासघाती है यह।"—भैरवी ने कहा।

अफसर ने फिर उससे भी पूछा—"यह गूंगा है क्या ?"

"गूंगा नहीं है। यह तो ऐसी बातें करता है कि सारा आकाश गूंज उठता है।"

अफसर ने भैरव की ओर मुँह किया—"क्यों रे, सच-सच कह, दो गवाही तो ये हैं और तीसरा तेरा अंगूठा कटा हुआ मेरी नोट-बुक में है। बोल क्या तू सचमुच में गूंगा है ?"

भैरव ने प्रतिवाद किया—"भगवान् साक्षी हैं मैं सचमुच में

गूंगा हूँ।"

भैरव ने यह प्रतिवाद पूरी ताकत से किया । वह स्वप्न के पर्दे को चीरकर उस तम्बू में भी गूंज उठा । दोनों व्यापारियों ने उसे सुना और दोनों चौंक पडे ।

भैरव का आश्रयदाता व्यापारी तुरन्त ही भैरव के निकट गया और उसे उठाकर बोला—"गूंगे उठ ! यह भगवान् की तेरे ऊपर कृपा हो गई क्या ? तेरी आवाज खुल गई ! या तू ने हमें आज तक बेवकूफ बनाया है ?"

भैरव आँखें मलता हुआ उठा ।

व्यापारी ने फिर उससे कहा—"क्या बात है ?"

भैरव फिर अपने पुराने इशारों पर चलने लगा ।

व्यापारी ने कहा—"तू अभी बोल रहा था !"

भैरव ने इधर-उधर देखकर अपना भोलापन जाहिर किया । व्यापारी ने दूसरे के मुँह की तरफ देखा ।

दूसरे व्यापारी ने कहा—'गूंगा बनने क्यों लगा यह, इससे क्या फायदा हुआ इसे ? झूठे ही अपनी एक इन्द्रिय गँवा देना कौन चाहता है ?"

"मैं तो समझता हूँ यह जन्म का गूंगा नहीं है ।"

दूसरा बोला—"इससे पूछो तो सही ।"

पहले ने पूछा—"क्यों जी, क्या तुम जन्म के गूंगे हो ?"

भैरव ने सिर हिलाकर नहीं कहा, फिर ताली बजाकर आसमान की तरफ उँगली उठाई ।

व्यापारी ने दूसरे से कहा—"शायद किसी बीमारी के सबब बाद को इसकी जबान बन्द हो गई ।"

भैरव का आश्रयदाता बोला—"लेकिन इस बिचारे को जरा भी होश नहीं है कि अभी इसके मुँह से साफ-साफ लफ्ज निकले थे ।"

"तुम किसी तरह इसे इसका विश्वास दिला सकते तो इसकी जुबान

भी खुल जाती।"

दूसरा व्यापारी भैरव से कहने लगा—"तुम अभी बहुत साफ लफ्जों में बोले थे नींद में। जरा कोशिश करो तो जागते में भी बोल सकते हो।"

भैरव के मुख पर एक पहेली-सी अंकित होकर रह गई!

व्यापारी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"कोशिश क्यों नहीं करते, तुम बोल सकते हो। बोलो, बोलो।"

भैरव ने अभिनय करना शुरू किया। बहुत जोर लगाकर बोलने लगा वह—"तत् ददत् दद्दत्!"

व्यापारी उसकी पीठ ठोककर उसका उत्साह बढ़ाने लगा—"शाबाश! और जरा कोशिश करो।"

भैरव के फिर वही समस्या जाग उठी। वह सोचने लगा—"अगर अपनी जबान खोलता हूँ, तो कुछ आसानी तो जरूर हासिल होगी। लेकिन शायद उससे बड़ी आफत में फँस जाऊँगा। अपने ठौर-ठिकाने का क्या पता दूँगा?" अन्ततः उसने जड़-पत्थर की तरह मूक रह जाना ही निश्चय किया।

व्यापारी उसका उत्साह बढ़ा ही रहा था अभी। भैरव ने भी उसको सन्तोष देने के लिए फिर जोर लगाया—"बप्पप् द दद्दद्!"

व्यापारी निराश होकर बोला—"अहँ ऽ अभी बोले थे तुम बहुत साफ! नींद में जब बोले हो तो जागते हुए और भी ठीक बोल सकते हो।"

उसका साथी बोला—"लहासा चलकर किसी वैद्य को दिखा देना, कोई दवा खाकर ठीक हो जायगा।"

"मैं तो समझता हूँ यह दवा के वश का रोग नहीं है। अभी बोला और अभी जबान बन्द! ताज्जुब है! मैं तो समझता हूँ इसे कोई भूत लगा है।"

"क्या ताज्जुब है!"

"ताज्जुब तो कुछ नहीं, खतरा जरूर है। इसके साथ-साथ चलने-

वाला वह भूत अगर किसी दिन हमारे पीछे लग गया तो फिर बड़ी मुश्किल हो जायगी। इसके तो आगे-पीछे कोई नहीं, हम बाल-बच्चे वाले, क्या होगा ?"

दोनों कुछ देर तक चुप रहे। भैरव ऊँघने लगा था। उन्होंने उससे सो जाने को कहा और खुद भी दोनों सो गए।

दूसरे दिन से भैरव और भी परिश्रम से अपना काम करने लगा कि जिससे उसकी वह दुर्बलता छिप जाय। उसका आश्रयदाता उसकी विवशता देखकर द्रवीभूत हो उठा और उसकी स्वामिभक्ति का उस पर और भी गहरा असर पड़ गया।

पांच-छः दिन में वे लोग ल्हासा पहुँच गए। भैरव के आश्रयदाता का वहीं मकान था और वहीं उसके बाल-बच्चे थे।

ल्हासा में एक महीने का पड़ाव था। नए साल का त्यौहार निकट था। ल्हासा का वह सबसे बड़ा उत्सव था। उसके बाद ही जाने का निश्चय था।

व्यापारी की पत्नी और दो बच्चे थे। भैरव जानवरों का सामान खोल-खोलकर जमा कर रहा था। व्यापारी एक दूसरे व्यापारी पड़ौसी से बातें करने लगा था। उसकी पत्नी और दोनों बच्चे बहुत दिन बाद परदेश से लौटे हुए पति और पिता के सामान की ओर सहज ही आकृष्ट हो गए थे।

उन्होंने भैरव को उसके कपड़ों के कारण बहुत दूर का परदेसी नहीं समझा था। पत्नी ने तिब्बती में उससे पूछा—"मेरी चीजें लाए हो या नहीं ?"

भैरव ने इशारे से कहा—"मैं नहीं जानता।"

व्यापारी का छोटा लड़का बोला—"और मेरे खिलौने ?"

भैरव की समझ में उनकी बोली कुछ भी नहीं आई। समझ में आने पर भी वह क्या जवाब देता ? उसने फिर पहले की ही तरह हाथ हिलाया।

अन्त में व्यापारी की लड़की बोली—"और मेरे कपड़े ?"

भैरव ने फिर अपना हाथ हिलाया-डुलाया। तीनों अपनी-अपनी माँगों की पूर्त्ति न होने से इतने दुखी न हुए, जितना उसके अभिमानी मुख से एक भी शब्द न निकलने से खिन्न हुए। उन्हें क्या मालूम असली भेद क्या था ?

व्यापारी के आने पर उन सबने उससे अपने-अपने प्रश्न किए और सबने सन्तोषजनक उत्तर पाया।

उसकी पत्नी ने पूछा—"यह कौन है ?"

व्यापारी बोला—"यह भी ऐसा ही है ! बड़ा परिश्रमी है।"

उसकी लड़की बोली—"बड़ा घमण्डी जान पड़ता है।"

"नहीं, बड़ा सीधा है।"

पत्नी ने फिर पूछा—"कहाँ का रहनेवाला है ?"

व्यापारी ने बात को कुछ छिपाकर कहा—'नेपाल और भारत की सीमा का।"

"इसे तिब्बती नहीं आती ?"

"तिब्बती क्या ? कोई भी भाषा नहीं आती।"

"बड़ा अजीब जानवर है।"

"गूँगा है।"

तीनों बड़े कौतूहल से उसकी तरफ देखने लगे। उसके लिए जो घृणा उन्होंने अपने मन में पैदा कर ली थी, वह टूटकर बह गई।

व्यापारी बोला—"लेकिन दिन भर काम में ही लगा रहता है, जो एक बार समझा दोगे उसे कभी नहीं भूलता।"

पत्नी ने पूछा—"तनखा क्या लेगा ?"

"तनखा कुछ नहीं।"

"वनमानुष है क्या ? तनखा क्यों नहीं लेगा ? बकरी है या भेड़ ?"

"कुछ-कुछ ऐसा ही समझो," व्यापारी ने कहा—"एक जंगल में से ही पकड़ लाए हैं हम इसे। भूखों मर रहा था। वही उपकार क्या

कम है ! फिर पैसे से क्या करेगा यह ? खाना-कपड़ा हम देते ही हैं इसे।"

वे तीनों बड़ी दया से उसकी तरफ देखने लगे। एक-एक कर तमाम जानवरों का सामान खोलकर उसने मकान के आंगन में जमा कर लिया था। सभी जानवर मानो उसके एक-एक इशारे को पहचानते थे, ऐसा जान पड़ा।

सबका सामान उतर जाने पर उसने बड़ी जिज्ञासा लेकर व्यापारी की ओर देखा। व्यापारी ने एक गोठ की तरफ इशारा किया और वह तुरन्त ही समझ गया। उसने कुछ ही देर में सबको वहाँ बाँध दिया। जो खुले रहने के थे, वे खुले ही छोड़ दिए।

उसके बेटे ने पूछा—"इसका नाम क्या है ?"

व्यापारी हँसा—"जो भी रख दोगे, इस किसी से इन्कार न होगा।"

"तुम किस नाम से इसे पुकारते हो ?"

"हम तो इसे दद्द के नाम से पुकारते हैं।"

"किसने रखा यह नाम ?"—उसकी लड़की ने पूछा।

"कभी-कभी यह इस शब्द का उच्चारण करता है इसी से।" इतने ही में व्यापारी कुछ गम्भीर होकर बोला—'लेकिन एक रात को यह बिलकुल साफ-साफ बोला था।"

"फिर ?"—पत्नी ने पूछा।

"फिर वैसे ही हो गया। इसी से मैं सोचता हूँ इसे कोई भूत लगा है।"

उसकी पत्नी तीनों बच्चों का हाथ खींचकर अपने मकान की दूसरी मंजिल पर चढ़ने लगी।

व्यापारी बोला—"पर भय की बात नहीं है। मैं आज ही जाकर इसके इलाज का इन्तजाम करता हूँ। मनुष्य का बेटा है आखिर हमारी जात का हमारे देश का नहीं भी है तो क्या हुआ ? हमारी सेवा करता है बड़ी लगन से।"

पत्नी ने कहा—"जरूर इसकी मदद करनी चाहिए। लेकिन जब तक इसका भूत नहीं निकल जाता इसे जानवरों के साथ गोठ में ही

रहना होगा।"

वैसा ही किया गया। इसके बाद भैरव ने तमाम कीमती सामान ऊपर उनके रहने के कमरे में रख दिया। रात हो गई थी। कुछ खिला-पिलाकर भैरव वहीं गोठ में सोने के लिए भेज दिया गया।

उस अंधकार में एक कोने में कंबल बिछाकर सो गया भैरव! घर पर कैसे स्वच्छ और सुवासित कमरे में सोता था वह! कहाँ सोना पड़ रहा है अब उसे?

जानवरों के गोबर की बदबू में, उनके बदन से निकलती हुई दुर्गंधि में! नाना प्रकार के कीड़ों से भरी भूमि और जुई से भरे कपड़ों में! कहाँ से कहाँ आ गया वह! उसने उस भूमि में किसी को नहाते नहीं देखा। जब से वह उन व्यापारियों के साथ आया है, वह भी नहीं नहाया। हे भगवान! कभी उसे अपने ऊपर बड़ी घृणा होती। वह रोज नहानेवाला, उसके अंग स्थान-स्थान पर मैल की परतें बिछ गई थीं।

सोते-सोते विचारने लगा वह—'पुण्य का फल तो नहीं है यह! जरूर मेरे पाप ही हैं ये। पाप क्या है? क्या पाप किए हैं मैंने? मैंने बासो को प्यार किया था! क्या प्रेम पाप है? मैंने भैरवी से अनुराग किया था—क्या वह भी पाप ही था?'

'नहीं, मेरी तरफ से कोई पाप नहीं हुआ है। मैंने युग-चैतन्य के पाखंड को तोड़ दिया। उस पद पर प्रतिष्ठा प्राप्त करना था पाप, मैंने उसे एक रात के लिये भी स्वीकार नहीं किया। कौन जानता है यह जो कष्ट मैं भुगत रहा हूँ इनकी ओट में मेरे लिये किसी स्वर्णमय जीवन की रचना हो रही है?'

वह आशा की लहर में तैरता हुआ फिर डूब जाता और सोचता—'अब कहाँ क्या है? जननी-जनक के प्रेम से तिरस्कृत, जन्म-भूमि से काले कोसों दूर! कौन यहाँ अपनी पीड़ा समझनेवाला है, किसे मेरी भाषा आती है, फिर यह अटूट मौन व्रत साधकर? अब तो इसी ऊँचाई पर ढोरों को दिन भर चराते, रात को उन्हीं के साथ सोते, नमकीन चाय पीते, सत्तू फाँकते और जुई बीनते उमर काटनी है।'

२१

डाकुओं का गिरोह

दूसरे दिन सुबह उठकर जब वह जानवर का जंगल में चराने के लिये ले जाना चाहता था, व्यापारी ने उसके पास आकर कहा—"अभी रहने दो इन्हें।"

भैरव ने ताज्जुब से मालिक की तरफ देखा।

"इलाज के लिये ले जाता हूँ अभी तुम्हें। वहाँ से लौटने पर जाना जंगल।"

भैरव को भी कुछ चाय और सत्तू खाने को दिया गया। और फिर वह मालिक के साथ एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित एक वैद्य के यहाँ गया।

व्यापारी ने कहा—"बीमार है यह।"

"क्या बीमार है?"

"जबान बिलकुल बंद है।"

वैद्य ने एक नुसखा लिखा। उसे फिर आग में जलाकर फूंक दिया। फिर वह राख कुछ पानी में मिलाकर भैरव को पिला दी और कहा—"बस ऐसे ही एक महीने तक रोज मेरे पास आकर यह दवा पी जानी होगी। खुल जायगी आवाज।"

व्यापारी बोला—"मैं तो व्यापारी आदमी हूँ, न-जाने कब परदेस को जाना पड़ जाय। कुछ और जल्दी कर दीजिए इलाज।"

"बीमारी तो अपना बखत लेगी ही।"

"मैं समझता हूँ यह बीमारी—बीमारी नहीं है, भूत-बाधा है।"

वैद्य जी ने कुछ सोचकर कहा—"हाँ, ऐसा कहो न। आज छोड़ जाओ फिर तुम इसे मेरे पास। मैं कर दूंगा इसका इलाज।"

व्यापारी भैरव को वहीं छोड़ गया। कुछ देर में वैद्य का एक चेला आया। चेला भैरव को लेकर एक लुहार की दूकान में गया। वहाँ वह लोहा गरम कर रहा था।

चेले ने भैरव को भूमि पर बैठ जाने की आज्ञा दी और सड़सी से एक गरम लाल लोहे की सीख उठाई और भैरव से मुँह खोल जीभ बाहर करने को कहा।

भैरव उठकर भागा। चेला दौड़कर फिर उसे पकड़ लाया। इस बार लुहार ने उसे मजबूती से अपनी बलिष्ठ बाँहों में कस लिया। चेले ने फिर वही लोहे की छड़ आग में से निकालकर भैरव की जीभ को दागने के लिये बढ़ाई।

भैरव चीख उठा—"ठीक हो गया! मेरी जबान खुल गई!"

चेला उसकी भाषा न समझने पर भी अपने कौशल पर बहुत खुश हो गया। लुहार ने भी उसका लोहा मान लिया। लेकिन भैरव की भाषा सुनकर उसके एक शक हो गया। उसने वैद्य के चेले से पूछा—"जबान तो खुल गई जान पड़ती है, पर यह बोली कौनसी है?"

"जबान के खुलने से मतलब है, बोली कोई भी हो।" चेले ने भैरव का हाथ पकड़ लिया। उसके मन में यह बात पैठ गई थी कि अगर वह गूंगा अपने घर को चल देगा तो वह अपने गुरु के सामने अपनी अकल का सबूत और कैसे दे सकेगा? उसने जाते हुए लुहार से कहा—"तुझे भी कुछ दक्षिणा दिला दूंगा, क्योंकि तूने बीमार को पकड़ा तो तेरी सड़सी ने दवा को थामे रखा।"

भैरव का हाथ खींचकर ले चला चेला और गुरु के सामने पेश कर बोला—"मैं ठीक कर लाया इसे।"

गुरु ने भैरव की ओर देखकर पूछा—"क्यों?"

भैरव को फिर एक अकल सूझ गई। वह फिर गूंगे का अभिनय करने लगा—"दद्दत् तत् तत्!"

गुरु ने चेले की ओर नजर की। चेला बोला—"दाम देने के भय

से यह ऐसा कर रहा है। यह साफ-साफ बोलने लगा था।"

गुरु ने भैरव का मुँह खुलवाकर उसकी जीभ देखी और कहा—"इसकी जीभ की जड़ काटनी पड़ेगी नीचे से!"

भैरव कुछ न समझकर भी बहुत समझ गया, उसने रोनी सी सूरत बनाकर अजीब तरह के इशारे किए और बाहर को जाने लगा।

चेले ने उसे जोर से जकड रखा था। वह बोला—गुरु जी, आप भी चलिए, मैं आपके सामने फिर इसकी जबान खोल देता हूँ।"

गुरु जी एकदम चेले का ऐसा उत्साह भी नहीं बढ़ाना चाहते थे। कहने लगे—"जबान खुल गई होती तो क्यों इसे झूठ बोलने की जरूरत होती? जाने की जिद कर रहा है यह, जाने दो, कोई जरूरी काम होगा। मुमकिन है जंगल जाने का काम हो। रोको नही इसे। कीमत की कोई चिन्ता नहीं। मैं इसके मालिक को बरसों से जानता हूँ। नकद न भी होगा तो मैं भारत की बहुत-सी दवाएँ उसके मारफत मँगवा लूंगा। लेकिन जब फायदा हो तभी तो न।"

"फायदा हो गया है गुरुदेव! यह बोला था।"

"क्या बोला था?"

"मैं समझा तो नहीं।"

"इससे कह दो कल आए।"

चेले ने उससे तिब्बती में कहा—"कल आना, अपने मालिक को भी साथ ले आना।"

भैरव छूटकर भागा। किधर जाए? परिक्रमा की सड़क छोड़कर वह क्वी चू नदी पर आया। बड़ी प्यास लग रही थी उसे। पानी पीकर उसने दिल और दिमाग ठंडा किया। फिर सोचने लगा—"अब यहाँ नहीं रहना चाहिए। मालिक जरूर मेरी जबान खुलवाकर ही छोड़ेगा और जबान खुल जाने पर फिर मेरी खैर नहीं है।"

वह पुल पार कर जो सड़क मिली उस पर से होता हुआ चला गया—बड़ी तेजी से। शाम तक जरूर वह बीस मील से अधिक ही पार

कर चुका होगा।

अँधेरा हो गया था, जब वह एक गाँव में पहुँचा। गाँव में एक ही मकान था, दो-तीन छोटे-छोटे गौशाला से जान पड़ते थे। लेकिन सूना-सूना-सा जान पड़ा उसे दूर से। खेतों और मकान के आस-पास जीवन की कोई भी झलक नहीं दिखाई दे रही थी।

भैरव उस रात में और कहाँ जाता? जब वह मकान के निकट पहुँचा तो एक बुढ़िया लाठी के सहारे अपने कुछ जानवरों को टटोलती-सी दिखाई दी। एक दुबला-पतला कुत्ता अपनी दुम दबाए बुढ़िया की ओट में छिपता हुआ उस पर भौंकने लगा था। बुढिया ने तिब्बती में पूछा—"कौन?"

भैरव उस अरसे में तिब्बत और तिब्बतियों के निकट सहवास से कुछ थोड़े से उनकी भाषा के शब्द कहने और उनसे अधिक समझने लग गया था। उसने तुरंत ही बुढ़िया को उसी की भाषा में जवाब दिया—"तुम्हारा बेटा।"

"मेरा बेटा?"—बुढ़िया ने हर्ष के अतिरेक में भैरव को टटोलकर गले से लगा लिया। उसके मुख-नाक और गालों पर हाथ रखकर बोली—"बेटा, तू कहाँ था? तुझे चीनी सिपाहियों ने मार दिया कहते थे!"

भैरव के बात समझने में देर नहीं लगी। उसने सोचा—"अगर इस माता का मरा हुआ बेटा मेरी हस्ती में जीवित हो सकता है तो हानि क्या है? मेरी बिछुड़ी हुई माता भी इसमें जाग उठेगी!" उसने उस बुढ़िया को टूटी-फूटी भाषा में जवाब दिया—"नहीं माँ, मैं जिंदा हूँ। हमारे दुश्मनों ने वह खबर उड़ा दी।"

माता विह्वल होकर रोने लगी—"लेकिन बेटा, तेरी आवाज को यह क्या हो गया? और तेरी बोली भी बड़ी अजीब टूटी-सी लग रही है।"

"माँ, मेरे सिर में गोली लग गई थी। कई महीनों तक मेरी जबान बंद हो गई थी, अब जाकर मुझे कुछ-कुछ अपनी बोली समझ में आ

रही है। यह बोली पहले भी तुम्हारी ही गोद में बैठकर सीखी थी। बड़ी बात थी, तुम्हारे स्नेह को न भूलना। जब वह याद आ गया है, तो फिर बोली सीखने में कोई दिन नहीं लगेगा।"—भैरव हिन्दी में बोला।

"बेटा, भगवान् का धन्यवाद है। मुझे विश्वास था तू एक दिन आएगा, अवश्य आएगा। लेकिन तू यह कैसा बोल रहा है मैं कुछ नहीं समझ पाती।"—बुढ़िया ने कहा।

भैरव भी कुछ नहीं समझा। उस पुत्र के विछोह से दुःखिनी माता को उसने विश्वास दिला दिया कि वह उसका बेटा है। उसने अनेक शंकाओं का विरोध और समाधान कर भैरव को अपना बेटा समझ लिया।

भैरव कहीं पर एक आश्रय ढूंढ रहा था और बुढ़िया एक मरते-वक्त का सहारा। बेटे के लौट आने की राह देखते-देखते, उसके लिये रोते-रोते बुढिया अंधी हो गई थी। उसके थोड़ी-सी खेती थी, कछ जानवर भी थे। अंधी होने पर भी वह टटोल-टटोलकर खेती करती रही कुछ दिन तक। जानवरों को भी खोलती-बाँधती और उन्हें चराती दुहती।

निकट ही कहीं एक गाँव में उस बुढ़िया का भाई रहता था। कुछ दिन तक वह उसकी मदद को आता रहा। बाद को वह भी मर गया फिर कुछ समय से पड़ौस से एक मठ के महंत उस बुढ़िया को कभी कुछ चाय, नमक और सत्तू दे जाते थे।

भैरव ने माता को आश्वासन दिलाते हुए अपनी टूटी-फूटी भाषा में कहा—"माँ, मैं अब तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम्हारे जानवर चरा लाऊँगा और तुम्हारे उजड़े खेतों को फिर हरा कर दूंगा।"

सुबह ही उठ जाता भैरव। दूध दुहता। आग जलाकर उसे गरम कर कुछ बुढ़िया को देता कुछ आप पीता। फिर जानवरों को खोल कर जंगल में चरने भेज देता और स्वयम् माँ को साथ लेकर खेती में बढ़ जाता।

दिन-भर माता के साथ बातचीत करता। उसकी सेवा और स्नेह से माता गद्‌गद हो उठी। भावना का एक अजीब स्रोत उसके हृदय से फूट निकला। भाषा उसको स्पष्ट करने के लिए एक अत्यन्त दुर्बल माध्यम थी।

एक चमत्कारिक रीति से कुछ समय में भैरव के भीतर माता की भावना को समझने के लिए भाषा का जन्म हो गया और फिर कुछ दिन बाद उसे समझा सकने योग्य बोली उसको प्राप्त हो गई।

अब माता के तमाम संशय भैरव ने हर लिए। यही नहीं वह पास-पड़ोस में भी आता-जाता और किसी को उसके ऊपर कोई शक न होता।

एक दिन माता के परिचित मठ का एक महंत माता की खोज-खबर करने आया। उसने भैरव को देखकर कहा—"कौन हो तुम? पहले तो मैंने तुम्हें यहाँ कभी नहीं देखा। कहाँ से आए हो तुम यहाँ?"

"ऐसे ही घूमते-घामते आ गया।"

"बुढ़िया से क्या तुम्हारा कुछ रिश्ता है?"

"हाँ, यह मेरे पूर्वजन्म की माता है।"

"कहाँ हैं वे? बुला दो उन्हें। कहना मठ का महंत आया है।"

भैरव जाकर माता को बुला लाया।

महंत बोला—"माँ, मैं बीमार हो गया था। कई महीने तक पड़ा रहा इसी से नहीं आ सका। तुम्हारे चाय है या नहीं?"

माता ने उत्तर दिया—"मेरा बेटा आ गया, अब मेरे कोई कमी नहीं रही। यह उधर-इधर गाँवों में दौड़-धूप कर सब कुछ ले आता है। तुमने देखा नहीं उसे?"

महंत बोला—"हाँ देखा है।"

"और इसने मेरा तमाम कारोबार सम्भाल लिया है। मेरे जानवर भी खूब मोटे-ताजे हो गए हैं। मेरी खेती भी हरी हो गई। इस फ़सल में मेरे काफी जौ हो जावेंगे। फिर मुझे किसी चीज की कमी

नहीं रहेगी।"

महंत बहुत सन्तुष्ट होकर बोला—"उस भगवान् की बड़ी असीम दया है।"

माता ने कहा—"अब तुम्हें मेरी कुछ भी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।"

"फिर भी कभी कोई आवश्यकता होने पर तुम अपने बेटे को हमारे मठ में भेज सकती हो। अब तो तुम्हारी इच्छा का यह वाहक तुम्हें मिल गया।"

महंत चला गया और भैरव से एक दिन मठ देखने को आने के लिए कह गया।

भैरव को बुढ़िया की सेवा में रहते-रहते प्रायः एक साल हो गया अब तो उसकी बोली में किसी को भी उनके प्रति परदेशी होने का शक नहीं रहा।

अचानक एक दिन बुढ़िया ने भैरव से कहा—"बेटा, बहुत यह दुनिया देख ली अब तो किसी तरह भगवान् उठा लेता तो ठीक था।"

"क्यों माँ ऐसा क्यों कहती हो? तुम्हारे कारण ही मेरा यहाँ मन लगा है। तुम ऐसा क्यों कहती हो?"

"नहीं तो क्या कहूँ बेटा? अगर मेरी आँख होती तो मैं कहीं-न-कहीं से तुम्हारे लिए एक बहू ढूंढ लाती। यही एक इच्छा मेरी बाकी रह गई है।"

"इच्छाओं का कहीं अन्त नहीं है।"

"तुम्हारे मन में ऐसा वैराग्य क्यों उपजा है?"

भैरव को बासो और भैरवी फिर याद आईं। वह बोला—"माँ, वैराग्य में शान्ति है।"

"नहीं है। मैं कहती हूँ ये मठों के महंत जो आ-जीवन अविवाहित ही रहने का प्रण करते हैं। क्या इन्होंने नारी से जन्म नहीं पाया है? बेटा, मैं जब तक तुम्हारे लिए एक बहू न ले आऊँ तब तक मैं सुख से

नहीं मर सकूँगी।"

"तुम्हारी सेवा को मैं हूँ तो सही।"

"अपने स्वार्थ के लिए धिक्कार है! मुझे तुम्हारे मतलब की चिंता क्यों न हो?"

भैरव उस ऊँचाई पर जानवरों को चराते हुए और धरती पर खेती करते हुए अक्सर सोचता—"मैं कहाँ-से-कहाँ आ गया?" मनुष्य की आकांक्षा पर किसी अदृश्य देव का हाथ जरूर है।" ऐसी एक उसकी भावना दृढ़ हो गई।

उस एकान्त में वह कर्मवादी से भाग्यवादी बन गया अब वह अपनी इच्छा-शक्ति को भी कोई महत्त्व न देता। "भगवान् का एक गूढ़विधान है, उसी चक्र में हम घूम रहे हैं।"—कभी-कभी ऐसा सोचते हुए वह अक्रिय बन गया और किसी प्रकार समय बिता देने को ही जीवन का लक्ष्य मानने लगा।

"जीवन की ये तमाम महत्त्वकांक्षाएँ सिर्फ अफीमचियों के स्वप्न के समान हैं। सारी कर्त्तव्य की प्रेरणाएँ अपने-अपने दृष्टिकोणों पर कल्पनाएँ हैं।"—ऐसे विचारों में भैरव अपने व्यक्तित्व को खो बैठा और भाग्य के किसी परिवर्तन के लिए हर वक्त तैयार होने लगा।

अचानक एक दिन बुढिया बीमार हो गई। उसने भैरव से कहा—"बेटा, जान पड़ता है अब मेरा समय आ गया है।"

"नहीं माँ ऐसा न कहो।"

"बेटा, एक दिन तो जाना पड़ेगा ही।"

भैरव ने मन में सोचा—"यह अकाट्य सत्य है।"

माता फिर कहने लगी—"सभी को जाना पड़ा है बेटा।"

"क्या इच्छा है तुम्हारी?"

"तुम्हारे विवाह के लिए ही इतने दिन ठहरी रही। अब नहीं ठहर सकती।"

"विवाह कर क्या होगा? तुम समझ लो मैं विवाह कर चुका।"

"नही बेटा, तुम अगर विवाह नहीं करोगे तो मेरी आत्मा यहीं मँडलाती रहेगी।"

भैरव ने उसकी इच्छा की गंभीरता सोचकर कहा—"अच्छा माँ तुम अच्छी हो जाओ तो मैं कहीं से लड़की ढूँढकर विवाह कर लेता हूँ।"

माता ने कहा—"अच्छा मैं अच्छी हो जाऊँगी तुम कल मठ के महंत से दवा माँग लाओ।"

दूसरे दिन भैरव महत के पास से दवा माँग लाया, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। माता की हालत दिन-दिन खराब होती गई। अन्त में माता ने भैरव का हाथ पकड़ कर कहा—"बेटा, तुम प्रतिज्ञा करो मेरे मरने के बाद तुम विवाह कर लोगे।"

भैरव ने प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन माता का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद भैरव का मन वहाँ नही लगा। दिन-भर जानवरों के साथ दूर चला जाता। शाम को घर न आता तो और कहाँ जाता? रातें काटनी बड़ी दूभर हो गई। जरा देर के लिए आँखें लगतीं, फिर वही अँधी माता का जरा और रोग से विजित भयानक मुख उसे दिखाई देता—बहुत साफ और नजदीक!

भैरव की इच्छा होती वह वहाँ छोड़कर चला जाय। परन्तु कैसे? कई भेड़ों, बकरियों और चमरियों की जिम्मेवारी थी उसके ऊपर। उन्हें ऐसे ही छोड़कर कहाँ चला जाता? दे भी देता, तो किसे?

माता की मृत्यु के पाँचवें दिन की बात है, रात को जब वह सो रहा था। सोते-सोते उसने एक भयानक सपना देखा। कुछ घोड़ों की टापों की आवाज से उसकी नींद खुल गई। माता उससे विवाह कर लेने की प्रतिज्ञा करा गई थी। पर भैरव विवाह के लिए जरा भी तैयार न था। वह समझा इसी दण्ड देने के लिए आज माता का भूत उठा है।

भैरव चुपचाप बिस्तर में पड़ा दुबक गया। भूत के लिए दीवाल, द्वार-तालों का बँधन कुछ भी बाधा नहीं है—इस बात को वह जानता था। बाहर कई लोगों को बातें करते हुए उसने सुना। उसने उनकी

बोली समझने की कोशिश की, एक भी शब्द नहीं समझ सका।

फिर उन लोगों ने जब उसके द्वारा भड़भड़ाने शुरू किए तो उसका विचार भूत पर से हट कर दूसरी बात पर चला गया। वह उसका निर्णय कर ही रहा था कि उन लोगों ने पत्थरों से दरवाजे तोड़ने शुरू कर दिए।

भैरव चुपचाप उठा और खिड़की की राह भाग जाने की सोचने लगा। उसने ज्यों ही धीरे-धीरे खिड़की खोली तो देखा, कई घुड़सवारों ने उसका घर घेर लिया है। खिड़की से कूदकर भाग जाना उस रात में उसके लिए शक्य नहीं था।

उसने खिड़की बन्द ही रहने दी। इतने ही में पत्थरों की चोटों से उसका दरवाजा टूट गया और दो तीन आदमियों ने भीतर घुसकर उसको पकड़ लिया, उनमें जो प्रधान था। उसने कहा—"जो कुछ माल है निकाल कर सामने रख दो।"

"माल ? इस गरीब किसान के घर में कहाँ से रखा है ?"

"ये बातें और बहाने रहने दो, हम लोग सब समझते हैं। हम लोगों को माल ढूंढने में जो तकलीफ होगी, हम उसे पूरी-की-पूरी तुमसे वसूल कर लेंगे।"

"भगवान् साक्षी है, तुम देख लो अगर कहीं कुछ भी मिल जाय तो मुझे गोली से उड़ा देना।"

"नहीं, हम नहीं मान सकते यह बात ! तुमने कहीं खेत में गाड़ रखा होगा।"

"धन आया कहाँ से ? एक अंधी बुढ़िया रहती थी यहाँ हाथ-पैर से लाचार—अभी मर गई बिचारी। एक मैं भेड़-बकरी चराकर उनके दूध से दिन काटनेवाला—कोई खेती नहीं, व्यापार नहीं, नौकरी नहीं !"

"हमें सब मालूम है। सेना में नौकर थे तुम, लूट में बहुत-सा सोना और जवाहरात तुम्हारे हाथ लगे हैं।"

"वह बुढ़िया का बेटा था नौकर, वह तो कभी का मारा गया। कहाँ

की लूट उसके हाथ लगती ?"

"तुम कौन हो बुढ़िया के ?"

"कोई नहीं। ऐसे ही एक बिना घर-द्वार का मँगता मैं भी हूँ। यहाँ बुढ़िया को उसकी राह दिखाने को किसी हाथ की जरूरत थी और मुझे भी रात को कहीं सिर रखने के लिए ठौर चाहिए थी।"—भैरव ने बिना किसी बनावट के सच्ची-सच्ची बात उनके सामने रख दी।

लेकिन वे डाकू, बड़ा पत्थर का उनका कलेजा था। आपस में बात-चीत कर कुछ फैसला करने लगे वे। भेस मे उनका तिब्बतियों से बहुत कम साम्य था और बोली में भी कुछ अन्तर था। बहुत देर तक उन्होंने बातें की। साथ की मशालों से मकान में इधर-उधर बहुत कुछ खोज भी की।

अन्त में फिर एक भैरव के सामने आया और बड़ी दयापूर्वक उससे कहने लगा—"भाई, मैने बहुत कहा इनसे। ये माननेवाले नहीं है। ये तुम्हारी बातों को बिलकुल बेबुनियाद समझ रहे है।"

"तो क्या करना चाहते है ये ?"

"तुम्हें मार-पीटकर छिपा हुआ धन प्रकट करना।"

"कहाँ बताऊँ मैं ?" ठडी साँस लेकर भैरव ने कहा।

डाकुओ के सरदार ने अपने साथियो से भैरव को मकान की एक धन्नी पर उलटा लटका देने को कहा।

तुरन्त ही उसकी आज्ञा का पालन किया गया। भैरव चुपचाप उस पीड़ा को सहन करने लगा।

सरदार की आज्ञा उस पर प्रकट की गई—"क्यों अभी और कितनी देर तक नही बताओगे ?"

भैरव चुपचाप आँसू बहाने लगा पर सरदार का दिल नहीं पसीजा। घर में कुछ कण्डे रखे थे। सरदार ने उन्हें भैरव के सिर के नीचे रखवा-कर उनमें आग लगवा दी।

धुएँ से भैरव का हाल खराब हो गया। उसकी आँखों से, और मुँह

से पानी निकलने लगा। वह जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगा। जब कहीं कुछ था ही नहीं तो वह बताता क्या ?

अब तो भैरव की वह दयनीय दशा देखकर कुछ डाकुओं के मन में दया उमड उठी। लेकिन किसी की हिम्मत सरदार की सूझ के खिलाफ बोलने की न थी।

एक ने सरदार से कहा—"सरदार, मुझे एक बात सूझती है। हमारे एक साथी के मर जाने से एक घोड़ा खाली हो गया है। उसको ले जाना हमारे लिए एक मुश्किल सवाल हो गया है।"

सरदार बोला—"तो क्या उसकी खाली पीठ पर तुम इसे बिठाना चाहते हो कि यह आसानी से भाग जाय।"

"भाग कर कहाँ जायगा ? हम इसको बीच में रख देंगे। दूसरी बात जब इसके यहाँ कोई नहीं है तो क्यों न यह हमारे गिरोह में भरती हो जाय ? हम इसे हमेशा कुछ दिन तक एक कैदी की तरह से रखेंगे बाद को जैसा भी हो।"

सरदार को बात सूझी। उसने भैरव को खुलवाकर अपने सामने खड़ा कराकर कहा—"तुम्हारे पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है क्या ?'

"नही।"

"तो फिर तुम हमारे साथ चलो।"

'वहाँ क्या करूँगा ?"

"जो हम करते है।"

भैरव कुछ सोचने लगा। डाकू सरदार ने फिर कहा—"हम ऐसे डाकू नहीं हैं। अन्याय से जमा किया पैसा जहाँ है हम उसे ही लूटते हैं हमारे दया भी है धर्म भी है। हम बहुत से मठों की सहायता करते हैं।

भैरव ने मन में सोचा—"क्या हानि है उलटे लटक जाने से इनके ही साथ क्यों न चला जाऊँ ?"

डाकुओं के सरदार ने पूछा—"क्या तुम्हें घोडे पर चढ़ना आता है ?

भैरव ने उत्तर दिया—"हाँ कुछ-कुछ आता है।"

"चलो फिर।"

भैरव बोला—"मेरे आश्रम में कुछ जानवर हैं।"

"उन्हें खोल दो, किसी गाँव की ओर हाँक दो।"

ऐसा ही किया गया। सुबह होते-होते भैरव उस खाली घोड़े पर सवार होकर उनके साथ चलने लगा। उसके हाथ-पैरों में उन लोगों ने जंजीरें बाँध दी थी। इस प्रकार कि वह घोड़े की सवारी आसानी से कर सके पर भाग न जाय।

कुल मिलाकर दस घोड़े और दस आदमी थे उस गिरोह मे भैरव-सहित। उनके साथ वह कहाँ और किधर जा रहा है, कुछ पता नही था उसे। सूर्योदय हो रहा था। सूर्य की अवस्थिति से कुछ अन्दाज लगाया उसने वे सब बराबर उत्तर की ओर ही बढ़े जा रहे थे। मार्ग बिलकुल मैदान से होकर था, इसलिए गति में तेजी थी। सूर्य सिर पर चढ़ने को आए और वे लोग एक तालाब के निकट पहुँच गए।

सरदार की आज्ञा से घोड़े रोक दिए गए, सब उतर पडे। वहीं पड़ाव डाला जाना निश्चित हुआ। घोडों पर से सामान और जीनें उतार ली गई और उन्हें चरने के लिए छोड़ दिया गया।

तालाब के एक ओर बालू हटाकर गड़ा हुआ सामान निकाल लिया गया। सरदार के लिए एक तम्बू तान दिया गया, उनके विश्राम के लिए। वे विश्राम करने लगे।

भैरव के हाथ-पैरों की जंजीरें कुछ कसकर बाँध दी गई और शेष लोग खाने-पीने की व्यवस्था मे लगे।

भोजन के उपरान्त सभी लोग विश्राम करने चले। अब भैरव को एक और जंजीर से एक झाड़ी में बाँध दिया गया। उस समय उसने कुछ नहीं कहा।

सब लोग सो गए, केवल एक भैरव ही जाग रहा था। वह अपने मन में सोचने लगा—"इस तरह बन्धन में इन लोगों के साथ कब तक दिन कटेंगे? मैं अगर इनका साथ छोड़कर कही भागना चाहूँ तो कहाँ

को जाऊँगा ? बिलकुल अपरिचित यह देश, जब कहीं नहीं भाग सकता, तो क्यों न मैं इनका भक्त होकर अपने को मुक्त कर लूं ?"

संध्या समय जब सरदार जाग उठा तो भैरव उसके समीप गया और बोला—"मेरी एक प्रार्थना है।"

सरदार बोला—"क्या है ?"

'मेरे लिए यह देश बिलकुल नया है। मैं कहीं नही भाग सकता इसलिए मेरे बन्धन खोल दिए जायँ।"

"तुम हमारे साथ कोई द्रोह नहीं रखोगे ?"

"नही, बिलकुल नहीं।"

सरदार ने हँसकर कहा—"अच्छी बात है, हम विश्वास कर लेते हैं तुम्हारा।" तुरन्त ही उसने भैरव की जंजीरें खोल देने की आज्ञा दी और वह मुक्त कर दिया गया।

भैरव ने सरदार के प्रति बड़ी कृतज्ञता से देखा।

सरदार हँसा और कहने लगा—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

भैरव बड़ी चिन्ता में पड़ा सोचने लगा।

"नाम क्या इतनी देर तक सोचा जाता है ?"

भैरव को शीघ्र अकल आ गई, वह बोला—"मेरा नाम दद्दद है।"

"दद्दद ! अगर हम तुम्हें यहाँ से छोड़ दें तुम अपने घर पहुँच जाओगे ?"

'कहाँ है मेरा घर ?"

"वही जहाँ से हम तुम्हें लाए हैं।"

'नही, वहाँ मेरा घर नहीं है।"

"फिर कहाँ है ?"

"कहीं नही है। कहीं न होने से ही मैं तुम्हारे गिरोह में सचाई के साथ शामिल हो गया।"

सरदार ने भैरव का विश्वास करना प्रारम्भ किया, यह प्राकृतिक ही था कि भैरव भी बड़ी निश्छल भक्ति से उसकी सेवा करने लगा।

सरदार उस पर बहुत प्रसन्न हो गया।

वे लोग कई दिन तक चलते रहे। एक पड़ाव के बाद दूसरा पड़ाव आता गया। प्रायः जन-शून्य पठार से होकर उसका मार्ग चला गया था। कभी रेत के मैदान, कभी हरे-भरे चरागाह। कभी छोटे-छोटे पहाड़ और नदियों की घाटियाँ। कभी छोटे-छोटे वृक्ष लताओं से भरे रमणीक दृश्य, फूलों से भर हुए वन।

कई दिन तक के साथ ने सरदार और भैरव के बीच में बड़ी गाढ़ी मित्रता स्थापित कर दी। वे दोनों एक दूसरे से बात-चीत और व्यवहार में बेतकल्लुफ हो गए।

कई दिन चलते-चलते हो गए तो एक दिन भैरव ने सरदार से पूछा—"इस शून्य निर्जन में और कहाँ तक हमें यात्रा करनी है ?"

"क्यों ? तुम तो कहते थे, मेरे कोई भी नहीं है। फिर तुम्हें किसकी याद आती है ?"

"याद के लिये नहीं कहता। निश्चेष्ट-सा जीवन प्रतीत होता है।"

"डाकुओं के गिरोह में भरती हुए हो, डाका मारने की इच्छा होती है क्या ?"

भैरव हँसने लगा।

"इधर बहुत छोट-छोटे गाँव हैं, अन्न-धन-विहीन। यहाँ तो हमें इधर-उधर से लाकर इनको देना पड़ता है।"

भैरव उस डाकू सरदार को देखकर कुछ समझने की कोशिश करने लगा, सरदार ने उसे पास बिठा लिया। उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोला—"सब डाकू हैं। हर बड़ी मछली छोटी को निगलने के लिये तैयार बैठी है। किसी ने विद्या को, किसी ने व्यापार को, नीति को, किसी ने धर्म को और किसी ने पूंजी को टट्टी बनाकर डाका डालने का ओट की है। क्यों दद्दद ! तुम समझ रहे हो न बात को ?"

"हाँ समझता तो हूँ। किसी तरह यह दुर्बल और बलवान का भेद मिटाया नहीं जा सकता ?"

"कोशिश तो यही है हमारी।"

"एक तुम्हारी कोशिश से क्या हो सकता है ? जान पड़ता है प्रकृति इस भेद के ही पक्ष में है।"

"प्रकृति तो इस ऊँचाई पर व्याप्त शीत के भी पक्ष में है। तो क्या हम जीवित रहने के लिये आग नही लगाते। खेती से विहीन इस देश मे मास नही खाते ? प्रकृति किसी पक्ष में नही होती। उसने मनुष्य को बुद्धि दे रखी है कि वह उसका उपयोग करे।"

भैरव हँसा और उसने पूछा—"हम यह किस ओर जा रहे है ?"

"चाङ् थङ् के मैदान में।"

"वहाँ है कोई पैसेवाले ?"

"कोई नहीं। वह जनशून्य स्थान है।"

"फिर वहाँ जाने से मतलब ?"

"जो कुछ माल लूटकर ले जाते है, वहीं जमा करते हैं।"

"वहाँ कौन है ?"

"मेरे घरवाले।"

"ऐसे निर्जन और शीत में क्यों रहते है ?"

"हमारा एक मठ भी है वहाँ, उस मठ की रक्षा के लिये।"

"मठ में कौन है ?"

"हमारे गुरुदेव, वे वहाँ तपस्या करते हैं अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये नहीं, समस्त संसार के कल्याण के लिये।"

"उस कल्याण की साधना कैसे होती है ?"

"बताऊँगा। प्रकृति में जो कानून की मदद से सबको एकता बन देने की बात है, उसमें बड़े परिश्रम की जरूरत है। हम वहाँ प्रार्थना के बल से इसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहते है।"

भैरव को वह भयंकरवादियों का मठ याद आने लगा। उसने पूछा—"कुछ और विस्तार से बताइए। मुझे इस प्रश्न से बड़ी प्रीति है।"

"तुमने कभी मैत्रेय का नाम सुना है ?"

"सुना होगा शायद कभी।"

"मैत्रेय, आगामी बुद्ध का नाम है। उनके जन्म पर धरती का सारा राग-द्वेष, कलह बैर, ऊँच-नीच की भावना, अमीरी-गरीबी—सब नष्ट हो जायगी। सारी मानवता एक परिवार-सी हो जायगी। चारों ओर सुख-शान्ति का राज्य हो जायगा।"

भैरव को युग-चैतन्य की याद आने लगी।

सरदार कहता जा रहा था—"इस धरती पर बहुत पाप बढ़ गए हैं। हमारे गुरुदेव वहाँ मैत्रेय के जन्म के लिये कठोर साधना कर रहे हैं।"

"मैत्रेय भगवान् की इच्छा से जन्म लेंगे या गुरुदेव की ?"—भैरव ने प्रश्न किया।

"कोशिश तो यही है हमारी।"

"एक तुम्हारी कोशिश से क्या हो सकता है ? जान पड़ता है प्रकृति इस भेद के ही पक्ष में है।"

"प्रकृति तो इस ऊँचाई पर व्याप्त शीत के भी पक्ष में है। तो क्या हम जीवित रहने के लिये आग नही लगाते। खेती से विहीन इस देश मे मास नही खाते ? प्रकृति किसी पक्ष में नही होती। उसने मनुष्य को बुद्धि दे रखी है कि वह उसका उपयोग करे।"

भैरव हँसा और उसने पूछा—"हम यह किस ओर जा रहे है ?"

"चाङ् थङ् के मैदान में।"

"वहाँ है कोई पैसेवाले ?"

"कोई नही। वह जनशून्य स्थान है।"

"फिर वहाँ जाने से मतलब ?"

"जो कुछ माल लूटकर ले जाते है, वहीं जमा करते हैं।"

"वहाँ कौन है ?"

"मेरे घरवाले।"

"ऐसे निर्जन और शीत में क्यों रहते है ?"

"हमारा एक मठ भी है वहाँ, उस मठ की रक्षा के लिये।"

"मठ में कौन है ?"

"हमारे गुरुदेव, वे वहाँ तपस्या करते हैं अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये नही, समस्त ससार के कल्याण के लिये।"

"उस कल्याण की साधना कैसे होती है ?"

"बताऊँगा। प्रकृति मे जो कानून की मदद से सबको एकता बना देने की बात है, उसमें बड़े परिश्रम की जरूरत है। हम वहाँ प्रार्थना के बल से इसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहते हे।"

भैरव को वह भयंकरवादियों का मठ याद आने लगा। उसने पूछा—"कुछ और विस्तार से बताइए। मुझे इस प्रश्न से बड़ी प्रीति है।"

"तुमने कभी मैत्रेय का नाम सुना है ?"

"सुना होगा शायद कभी।"

"मैत्रेय, आगामी बुद्ध का नाम है। उनके जन्म पर धरती का सारा राग-द्वेष, कलह बैर, ऊँच-नीच की भावना, अमीरी-गरीबी—सब नष्ट हो जायगी। सारी मानवता एक परिवार-सी हो जायगी। चारों ओर सुख-शान्ति का राज्य हो जायगा।"

भैरव को युग-चैतन्य की याद आने लगी।

सरदार कहता जा रहा था—"इस धरती पर बहुत पाप बढ़ गए हैं। हमारे गुरुदेव वहाँ मैत्रेय के जन्म के लिये कठोर साधना कर रहे हैं।"

"मैत्रेय भगवान् की इच्छा से जन्म लेंगे या गुरुदेव की ?"—भैरव ने प्रश्न किया।

२२

डायरी का पेज

अंत में वे लोग जिस गांव में पहुँचे वहाँ कलजन और रिंबूची भी आए थे। दसों घोडे रोक लिए गए। थोड़ा-थोड़ा सामान प्रत्येक घोड़े में था, सब उतार लिया गया।

घोडों के आँगन में पहुँचते ही डोल्मा और उसका बेटा घर से बाहर निकल आए और सामान यथास्थान रखकर अतिथियों की आव-भगत में लग गए।

सब अतिथियों का व्यक्तिगत सामान ठाकुर-गृह में ही रख दिया गया। संध्या समीप थी। चाय पीकर वे सब लोग प्रार्थना के लिये तैयार हो गए। अंधी माता से भैरव को भी प्रार्थना का कुछ पाठ याद हो गया था। वह भी सबके साथ गुनगुनाने लगा।

प्रार्थना के समय की रक्षा सब कुछ छोड़कर करते थे वे लोग। प्रभात और संध्या की प्रकाश-संधियों में वे लोग अपने समवेत स्वरों से एक अजीब रग भर देते थे। मार्ग में जहाँ भी वह बेला हो जाती, वहाँ कुछ भी होता वे अपनी यात्रा को विश्राम देने को रुक जाते। मिनटों में तंबू गड़ जाते और बिस्तर बिछ जाते। सबसे पहले प्रार्थना होती, तब कोई दूसरा काम।

पिछले कई दिनों से भैरव और सरदार के बीच निकट संसर्ग मे आ जाने से विशेष प्रीति उत्पन्न हो गई थी। योग की ओर भैरव की अनुरक्ति देखकर सरदार और भी अधिक उस पर आकृष्ट हो गया।

भैरव उस ठाकुर गृह को देखकर बहुत प्रसन्न हो गया। सामने विशाल मूर्ति को देखकर भैरव ने पूछा—'यह किसकी प्रतिमा है ?"

"यही मैत्रेय हैं।"

"इसे किसने बनाया है ?"

"मैत्रेय-मठ के गुरु महाराज ने।"

"मैत्रेय-मठ कहाँ है ?"

"यहाँ से दो दिन की यात्रा में। वहाँ और भी अधिक एकांत है।"

"वहाँ कौन-कौन रहते हैं ?"

"गुरु महाराज और उनके शिष्य। लेकिन शिष्यों की वे बड़ी कड़ी परीक्षा लेते हैं। ज्यादेतर शिष्य घबराकर शीघ्र ही वहाँ से भाग जाते हैं।"

भैरव मैत्रेय की मूर्ति को देखते हुए बोला—"गुरु महाराज योग साधते हैं या यह मूर्ति बनाते हैं ?"

"मूर्ति-निर्माण को क्या तुम कोई छोटा योग समझते हो ?"

'मैं तो इसे एक साधारण पेशा गिनता हूँ।"

"साँचे से ढालना कहा जा सकता है। लेकिन मन की कल्पना को मूर्ति का रूप देना, यह तो बड़ी कला है।"

"कला और योग का क्या संबंध ?"

"इंद्रियों पर अधिकार करने के अनंतर जब मनुष्य अपने मन का मालिक हो जाता है तब उसके धारणा जागती है।"

भैरव अपने मन में सोचने लगा—"जिसे अब तक एक डाकुओं का सरदार समझता चला आ रहा हूँ, वह तो बड़ी गहराई का जीव जान पड़ता है।" भैरव ने पूछा—'धारणा क्या हुई ?"

"धारणा याने ठहराव ! हमारे मन में सागर की भाँति हर समय विचारों की लहरें बनती और बिगड़ती रहती हैं। वही मन की चंचलता है। जब मन की रास बुद्धि के हाथों में आ जाती है तो फिर वे लहरें न बनती हैं, न बिगड़ती हैं।"

"क्या होता है फिर ?"

"चित्र स्थिर हो जाता है।"

"इस जड़ता को आप क्यों महत्त्व देते हैं ?"

"यह जड़ता नहीं है, यह ध्यान-योग की सिद्धि है । जैसे गीली मिट्टी में कोई भी छाप स्थिर हो जाती है । ऐसे ही मन हो जाता है, जो भी ध्यान किया जाता है, वह मूर्ति-सा स्थिर हो जाता है भीतर, और योगी मूर्तिकार सहज ही उसे बाहर साकार कर देता है ।"

"उस योगी के मन में वह ध्यान कहाँ से आता है ?"

"समष्टि की चेतना में से । भूत, वर्तमान और भविष्य यह हमारी गणना से है । बोधिसत्व—यथार्थ में न हुआ है, न है और न होगा । वह तीनों काल और लोकों में व्याप्त एक चिरंतन सत्य है । धारणा में उस सत्य के अंक पड़ जाने से कभी-कभी हम बोधिसत्व को पा सकते हैं । उसी का फल-स्वरूप यह मूर्ति है ।" सरदार ने कहा ।

भैरव सोच-विचार में पड़ गया ।

सरदार बोला—"गुरुदेव की धारणा ऐसी ही है, इच्छा करने पर वे मन की किसी भावना, किसी चित्र को इच्छानुसार स्थिर रख सकते हैं, इसी ताकत से वे होनेवाली घटनाओं को पहले ही जान लेते हैं । किसी मनुष्य के मन की बातों को बता देना तो उनके लिये खेल है ।"

भैरव के मुँह से अचानक निकल पड़ा—"माता जी के बारे में भी यही कहा जाता था ।"

सरदार ने पूछा—"कौन माता जी ?"

"एक मठ में थीं । लेकिन मैंने अपनी मूर्खता से कुछ नहीं पाया उनमें ।"

"तुम हमारे गुरुदेव की परीक्षा ले सकते हो । वहाँ के लिये सामान लेकर शीघ्र ही हम लोग जायेंगे, तुम्हें भी ले चलेंगे ।"

भैरव सोच रहा था—"जीवन बड़ी विचित्रता है । हम समझते हैं हम कुछ छोड़ कर आगे बढ़ रहे हैं । लेकिन जब तक हमारे भीतर के विचार की प्रणाली नहीं बदलती, वे छोड़ी हुई चीजें फिर आकर हमें घेर लेती हैं ।"

डोल्मा और उसका लड़का अतिथियों के लिये भोजन बना कर ले आए।

भैरव ने उनका परिचय पूछा। सरदार हँसकर बोला—"यह मेरी पत्नी है और यह लड़का।"

"इस शून्य एकांत में इन्हें कोई भय नहीं लगता ?"

"भय आत्मा का रोग है, भगवान् के भजन से वह पास नही फटकता।"

"मेरे भी मन में आत्मा की शोध के लिये बेचैनी जाग उठी है।"—भैरव ने कहा।

सरदार बड़ी जोर से हँसा—"आत्मा की खोज के लिए ? लेकिन दद्द ! जब तक तुम्हारे इस मिट्टी की प्यास नहीं बुझती, तुम आत्मा को नहीं ढूंढ सकते।"

भैरव ने बड़े निश्चय से कहा—"मैंने उस पानी में धोखा ही धोखा पाया इसलिए मैं उस प्यास को भी एक धोखा ही समझता हूँ।"

सरदार चौंककर बैठ गया अच्छी तरह—"दद्द ! तुम्हारे मुख से यह बड़ा विचित्र सत्य निकल गया। क्या तुम इस पर ठहर सकते हो ?"

"हाँ सरदार !"

"तब तुम पर मै अपना कोई वश न रखूंगा—तुम्हें गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दिया जायगा। तुम वहाँ जाने को तैयार हो ?"

"हाँ, वहाँ क्या करूँगा ?'

"वहाँ तुम्हें योग सिखाया जायगा।"

"योग क्या है ?"

"योग का अर्थ है जोड़।"

"कैसा जोड़ ?"

"जोड़—भीतर और बाहर का जोड़। भीतर आत्मा है और बाहर है माया। उन दोनों का मेल मिलाना ही योग है।"

"अभी आपने इस मिट्टी की प्यास को तुच्छता दी है, और फिर

आप उसे योग में शामिल करना चाहते हैं।"

"दद्द् ! मैं अधिक कुछ जानता नहीं हूँ अगर जानता होता तो ऐसे जंगलों, पर्वतों और बर्फ़ानों में भटकता न फिरता। फिर भी कुछ कहता हूँ—सुनो, तुम एक सरोवर के तट पर खड़े हो।"

"अगर मैंने उस मिट्टी की प्यास को तुच्छता दे दी है तो मुझे वह मरीचिका ठग नहीं सकती। वह मरीचिका नारी है सरदार ! मैं दो बार उससे ठगा गया हूँ अब तीसरी बार नहीं ठगा जा सकता।"

"वह मरीचिका नारी है—बहुत सुन्दर ! दद्द्, मैं उस नारी को ही सरोवर की उपमा दूँगा। तुम उसके तट पर खड़े हो।"

"नहीं सरदार, मैं उसे बहुत दूर छोड़कर इस एकान्त में आ गया !"

"एकान्त कहीं नहीं है और न कहीं भीड़ ही है। ये तो सिर्फ मन की कल्पनाएँ हैं।"

"क्या कल्पना सत्य है ?"

"हाँ, जिसे तुम सत्य कहते हो वह एक कल्पना है और जिसे तुम कल्पना कहते हो···"

"क्या कल्पना—क्या वह कल्पना ही सत्य है ?"—उत्तेजित होकर भैरव बोला।

'कहता तो हूँ—लेकिन सत्य गुरुदेव के पास ही मिलेगा। तुम उस सरोवर के तट पर खड़े हो। क्या देखते हो ?"

"वह सरोवर नारी है ? इस उपमा को न समझकर भी मुझे यह बड़ी प्यारी लगती है।" भैरव ने अपने साथियों की तरफ देखा—"ये सब सो गए हैं।"

"हाँ ! क्योंकि ये हमारी इस बात में रस नहीं ले सके, अधिकार न होने से ही रस नहीं मिला तो सो गए दद्द् ! ये सब सो गए सो जाने दो। ये सोकर भी सुन रहे हैं।"

"कैसे सरदार ?"

"सोकर जीव और भी चैतन्य होकर जागता है।"

"विचित्र सत्य !"

"लौटकर फिर सरोवर पर आओ। क्या देख रहे हो तुम उस सरोवर में ?"

"उस नारी में ?"

"हाँ।"

"देख रहा हूँ अपनी ही परछाई।"

"लेकिन उलटी परछाईं।"

"हाँ सरदार ! इसी से मुझे उससे घृणा हो उठी।"

"लेकिन घृणा से कुछ न मिलेगा।"

"प्रेम से भी कुछ न मिला।"

"इसी से पूछता हूँ। तुम कहाँ पर हो ? नारी की प्रतिछाया में या धरती पर ?"

"सरदार ! मैं तो धरती पर ही हूँ। इतना सरल सत्य किसकी समझ में न आयेगा ?"

"लेकिन नारी की लहरों में फँसा वह कौन है ? वह तुम ही हो। वह सूक्ष्मता तुम्हारी आत्मा क्यों नहीं है ? यह जो स्थूलता धरती पर खड़ी है, वह क्यों नहीं उसका प्रतिबिम्ब है ?"

"हो सकता है।"

सरदार ने भी अपने और साथियों की ओर देखा—"ये सब सो गए हैं। दद्द ! कौन जाग रहा है ?"

"सरदार के साथ मैं जाग रहा हूँ।"

"नहीं दद्द ! यह झूठा अभिमान है ! हम भी सो जायेंगे, केवल बोधिसत्व जाग रहा है !"

"सरदार, यह अखण्ड जागृति कहाँ मिलेगी ?"

"बाहर कुछ नहीं, सब अपने ही भीतर मिलेगा, कला की जागृति पर। जल में फँसा हुआ प्रतिबिम्ब जब तुम्हारे ही भीतर समा जायगा तब। बाहर जो यह प्रपंच है यह सब हमारे भीतर भी है। लेकिन हम बाहर

सत्य समझते हैं, भीतर कल्पना। जब भीतर सत्य समझकर बाहर कल्पना समझ लेंगे तब आवरण दूर हो जायगा। तभी हम बोधिसत्व के निकट जाने लगेंगे। जाते-जाते ''—सरदार रुक गया।

"रुक क्यों गए ? फिर क्या हो जायगा ? जाते जाते हम बोधिसत्व के निकट पहुँच जायेंगे ?"

"हाँ।"

"उस तत्व में मिल न सकेंगे ?"

"मिल जायेंगे दद्दू !"

'मैं उस भूमि पर खड़ा हो गया था, सरदार ! लेकिन गिर पड़ा !"

"गिरने के अनुभव को लेकर फिर खड़े हो सकते हैं, अगर गुरु मिल जाय।"

"कहाँ है गुरुदेव ?"

"मैं ले चलूँगा तुम्हें उनके पास।"

"कब ?"

सरदार ने कुछ सोचकर कहा—"गुरुदेव के लिए कुछ सामान जुटाना है। एक-दो रोज में वह सब हो जाने पर हम चल देंगे।"

भैरव ने पूछा—"क्या सामान है गुरुदेव का ?"

"गुरुदेव का अपना निजी सामान तो कुछ भी नही है, क्योंकि वह नीची इन्द्रियों के भोग पर आधारित नहीं है।"

"नीची इन्द्रियाँ कौन-सी हैं ?"

"मुँह से नीचे सब नीची इन्द्रियाँ ही हैं।"

"तो क्या वे कुछ खाते-पीते नहीं हैं ?"

"बहुत कम।"

'फिर जीवित कैसे रहते हैं ?"

"ऊँची इन्द्रियों के भोगों से।"

"वे क्या-क्या हैं ?"

"नाक द्वारा गन्ध, नेत्रों द्वारा प्रकाश और कानों द्वारा ध्वनि का

भक्षण कर वह जीते हैं। ये मानव की सूक्ष्मता के भोग हैं। अन्न खाकर जीना भी कोई जीना है ? सक्ष्म-भोगी होकर जीव बहुत दिन तक जीवित रहता है।"

भैरव सरदार की बातों को सोचता ही रह गया।

"दद्दद ! मैं कुछ नहीं जानता। मुझे एक कोरा सिपाही ही समझो। मुझे शरीर से काम लेना पडता है और बिना अन्न के मेरी गुजर नहीं। गुरुदेव का अधिकांश केवल मनोमय है—वह फूलों की गन्ध, मेघों के रंग और पक्षियों के कलरव से जीवित रह सकते है।"

"कैसे ? मुझे बड़ा आश्चर्य है !"

"आश्चर्य कैसा ? मन की कोई वास्तविकता तो है नहीं, वह एक कल्पना है।"

"उनका क्या शरीर नही है ?"

"शरीर है तो सही पर कभी-कभी वे उस शरीर का अतिक्रमण कर जाते हैं।"

"मैं अजीब गोरखधन्धे में पड़ गया हूँ।"

"वहाँ जाकर देख लोगे तो सब समझ में आ जायगा। दद्दद् ! सो रहो, तुम भी तो हारे-थके हो।"

"मन थकता है या नही ?"

"मैं नहीं जानता, लेकिन जो चीज स्थूलता पर ठहरी हुई नहीं है, उसे थकने की क्या आवश्यकता है ?" सरदार ने फिर कुछ सोचकर कहा—"नही, मन नहीं थकता।"

"सोचता कौन है ?"

"मन सोचता है।" अचानक कुछ गड़बड़ाकर सरदार बोला—"नहीं, दिमाग सोचता है।"

भैरव ने पूछा—"मन और दिमाग में क्या अन्तर है ?"

सरदार बोला—"सो जाओ दद्दद् ! मैं नहीं दे सकता तुम्हारे सवाल का जवाब। मैं थक गया हूँ सोच नहीं सकता। मुझे बड़ी जोर की नींद

लग गई। मैं अब सो गया।"

"सरदार ! सचमुच में क्या तुम सो गए ?"

सरदार की नाक बजने लगी थी। कुछ देर तक मन पदार्थ है या नहीं इस तर्क-वितर्क में पड़ा हुआ भैरव जागता रहा, फिर वह भी सो गया।

भैरव के मन में मैत्रेय-मठ को जाने के लिए बड़ी बेचैनी जाग उठी। दूसरे दिन डोल्मा से गुरुदेव के बारे में उसकी जो बातें हुई उनसे तो उसका मन उड़कर वहीं चला गया। वहाँ केवल उसका स्थूल पिंजर रह गया।

दिन भर बिना विराम के वह मठ के लिए थैलों में सीकर सामान भरने लगा। किसी में जौ-नमक, किसी में चाय-मक्खन और भी अनेक तरह की आवश्यक चीजें।

संध्या को उसने सरदार के सामने खड़े होकर कहा—"सरदार, जितना सामान था सब मैंने ठीक कर लिया।"

"बकरियाँ और जानवर ?"

"उनकी कोई कमी नहीं है।"

सरदार दूसरे ही दिन सारा सामान बकरियों और झब्बुओं में लादकर मठ के लिए रवाना हो गए। दो दिन यात्रा में लगे। तीसरे दिन दोपहर में वे लोग मठ में पहुँच गए।

सरदार और भैरव ने मठ के बाहर एक विचित्र आकार देखकर आपस में बातचीत करनी आरम्भ की।

सरदार ने कहा—"बड़े भारी आकार की चिड़िया-सी दिखाई दे रही है, इतनी बड़ी चिड़िया तो कोई होती नहीं।"

"सरदार, सृष्टि में पहले होती थीं।"

"कौन कहता है ?"

भैरव सोचने लगा, कुछ सोचकर उसने निर्भय होकर कह दिया—"मैंने पढ़ा है।"

"कंग्यूर और तंग्यूर में तो मैंने कहीं नहीं पढ़ा है।"

भैरव को कहना पड़ा—"मैंने इतिहास में पढ़ा है।"

"कौन से इतिहास में ?"

"अंग्रेजी के इतिहास में।"

"तुम्हें अपनी धार्मिक किताबें छोड़कर साइंसवालों की किताबें पढ़ने की क्या जरूरत है ? इन्होंने सच्चाई का बड़ा भयानक रूप बनाया है। तुमने यह अंग्रेजी क्यों पढ़ी ? कहाँ पढी ?"

"क्या बता दूँ ? दार्जिलिंग में पढ़नी पड़ी मुझे।"

दोनों गुफा के नजदीक आते जा रहे थे। सरदार ने कहा—"नहीं, चिड़िया तो नहीं जान पड़ती यह।"

"मुझे तो हवाई जहाज-सा जान पड़ता है।"

"तुमने हवाई जहाज कहाँ देखा है ?"

"वहीं दार्जिलिंग में मैंने इसकी तसवीर भी देखी है और आसमान में इसे उड़ता हुआ भी देखा है।"

दोनों और नजदीक आ गए थे। भैरव बोल उठा—"यह तो हवाई जहाज ही है।"

"हवाई जहाज ? नहीं जी ! गुरुदेव की कोई मानसिक कल्पना होगी।"

"मानसिक कल्पना कैसी ?"

"भाई, यह सब जो कुछ विस्तार है, सब मानसिक कल्पना ही तो है। भगवान् की कल्पना है, लेकिन योगी लोग भी कल्पना कर लेते हैं। गुरुदेव भी कभी-कभी कुछ ऐसी बातें उपजा देते हैं। यह जो अजीब मठ है कहते हैं, यह भी तो एक वैसी ही कल्पना है। नहीं तो ऐसे विकट पहाड़ के ऊपर राज और मजदूरों की ताकत नहीं है ऐसा मठ खड़ा कर दें।"—सरदार ने कहा।

भैरव कुछ चौंककर बोला—"मठ कहाँ पर है ?"

"इधर से नजर नहीं आता। उधर दक्खिन की तरफ से बड़ी कठिनता से दिखाई देता है। बिलकुल ढालू चट्टानों पर बना है।

दुर्लंघ्य ऊँचाई पर है। कोई उधर से जा नहीं सकता किसी तरह।"

"रास्ता किधर से है?"

"इधर ही से एक गुफा से होकर।"

ज्यों ही वे लोग गुफा के द्वार पर पहुँचे, चारों काले कुत्ते बाहर आकर भौंकने लगे। सरदार ने पुचकारकर उनमें अपनी पहचान जगा ली। गुफा के द्वार पर सारा सामान जानवरों की पीठ पर से उतार लिया गया और जानवर चरने के लिए छोड़ दिए गए।

भैरव ने विनम्रता से पूछा—"अगर आप आज्ञा दें तो मै जरा इस हवाई जहाज को देख लूं।"

सरदार बोला—"चलो, मैं भी चलता हूँ। मुझे तो ऐसा भासता है यह गुरुदेव के ही मन की कारीगरी है।"

दोनों हवाई जहाज के निकट आए। भैरव उत्साह के साथ उसके ऊपर चढ़ने लगा था। सरदार ने रोक दिया—"ठहर जाओ मित्र, उसके भीतर न जाओ। मालूम नहीं गुरुदेव ने यह किस मतलब से बना रखा है।"

"गुरुदेव की रचना नहीं है यह सरदार! देखते नहीं हो इसमें ये कैसे अक्षर लिखे हैं—ये अंग्रेजी के हैं। गुरुदेव अंग्रेजी नहीं जानते।"

"गुरुदेव अंग्रेजी नहीं जानते? यह सिर्फ तुम्हारा भ्रम है। वह क्या नहीं जानते? धरती पर जितनी भी विद्याएँ हैं—गुरुदेव को सब मालूम हैं। जो विद्याएँ अभी तक खुली नहीं हैं वे भी उन पर प्रकट है।"—सरदार ने भैरव का हाथ पकड़ लिया।

भैरव सरदार के सामने कोई हठ न कर सका। धूल के तूफानों से हवाई जहाज के सम तलों पर मिट्टी जम गई थी। वह बहुत दिनों से वहाँ पर पड़ा नजर आ रहा था। जल, वायु और धूप के प्रभावों से उसका रंग फीका पड़ गया था।

भैरव लौटने से पहले जरा बारीकी से हवाई जहाज को देखने लगा था। कुछ बात समझ में आने पर उसने सरदार से कहा—"जहाज का

यह हिस्सा टूट गया है। जान पड़ता है, किसी खराबी के कारण यह भूमि पर गिर पड़ा है। इसका चालक और इसके यात्री, भगवान् जाने उनका क्या हुआ है। उनकी सड़ी या सूखी लाशें शायद अब भी हमें देखने को मिल जाएँ।"

हँसकर सरदार बोला—"गुरुदेव ने उनका प्रबन्ध कर ही दिया होगा। चलो, हम अपना काम देखें।"

दोनों लौटने लगे। इतने में भैरव को भूमि पर पड़ी एक किताब दिखाई दी। उसकी बाहर की जिल्द गायब थी। भीतर के पेज भी कुछ कटे-फटे थे।

सरदार ने भैरव को उसे उठाते देखकर पूछा—"क्या है यह ?"

"कोई किताब जान पड़ती है।" भैरव ने उसे अच्छी तरह देखकर कहा—"इसमें हाथ से कुछ लिखा गया है। बाहर की जिल्द किसी जानवर ने बहुत मुमकिन है, चमड़े की गन्ध पाकर चबा डाली है।"

"तुम पढ़ सकते हो इसे ?"

"हाँ।"

सरदार ने बड़े ताज्जुब से उसे ऊपर से नीचे तक देखकर कहा—"तुम्हें ल्हासा में अच्छी नौकरी मिल सकती थी, तुम कहाँ उस जंगल में भेड़े चराने लगे ?"

भैरव सरदार की बातों पर कोई ध्यान न देता हुआ उस छिन्न-भिन्न लेख को पढ़ने में दत्तचित्त था।

"क्या है दद्दू ! तुम तो इस लेख की बड़ी गहराई में डूब गए।"

"हाँ, सरदार यह किसी महिला की डायरी लिखी जान पड़ती है जो इस जहाज में अकेली ही उड़ी थी।"

"कहाँ से ?"

"जगह का नाम फट गया है, तारीख और महीना भी, सन् सिर्फ बचा है—१९३२।"

"यह कौन सन् है ?"

"मैं नहीं जानता।"—कहकर भैरव फिर उस लेख को ही पढ़ने में लग गया।

"दद्द् ! तुम्हारी समझ में आ रहा है क्या ? मुझे भी बताओ वह अकेली ही उड़नेवाली महिला कौन थी ? उसे भय भी नहीं लगा ? अकेली ही उड़ने का उसका मतलब क्या था ?"

भैरव पढ़ना समाप्त कर बोला—"मिस इवा इसका नाम है, यह कुमारी है।"

"कुमारी ? क्या यह अपना वर ढूंढने चली अकेली ही ?"

"नहीं, दुनिया में सबसे पहले लम्बी उड़ान की एक मिसाल कायम करने के लिए।"

"व्यापार के लिए भी नहीं और सैर को भी नहीं ?"

"नहीं, ऐसे ही जैसे गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ने की बात है।"

"सिर्फ दिमाग की खराबी दद्द् ! और कुछ नहीं। अच्छा पढ़ो, लिखा क्या है ?"

भैरव ने पढ़ना शुरू किया—"कई वर्षों से हवाई जहाज में अकेली ही संसार की पूरी परिक्रमा करने की मेरी इच्छा आज पूरी हुई। सेंट पीटर के गिरजे के मैदान में मुझे विदाई देने के लिए लोग हजारों की संख्या में खड़े थे। मेरा दिल धड़क रहा था, मैं यह सोच रही थी क्या सचमुच मैं किसी दिन ऐसी ही भीड़ द्वारा स्वागत भी पा सकूंगी या नहीं ? सारी भीड़ जब मेरे इस असाधारण साहस के लिए नाना प्रकार के जय-घोषों से मुझे उत्साह दे रही थी, मोटरों के भौंपू बजाकर मेरी विदाई को मुखरित किया जा रहा था, तब मैं सोच रही थी—यह मेरी आत्म-हत्या को बल देने का प्रयास तो नहीं है ?···मेरा जहाज आकाश में उड़ चला, लोगों का शोर चरम सीमा पर पहुँच गया। वसंत का यह प्रभात मुझे बड़ा ही मनोरम जान पड़ा। बादलों से विहीन स्वच्छ आकाश में उड़ी जा रही थी। ऐसे सुन्दर मौसम में मौत की यात्रा भी

क्यों कम सुखद होगी ?" भैरव ने निराश होकर डायरी के तमाम पृष्ठ उलट डाले।

"बस ? और कुछ नहीं है ?"

"नहीं ! या तो लिखा नहीं गया, या पन्ना फटकर गायब हो गया।"

"गुरुदेव से पता लग जाएगा।"

२३

मुर्गा, साँप और सूअर

रिंबूची सुरा के कलश में डूब जाना चाहता था, इसी से उस अन्धकार-मयी गुफा का होकर रह गया। सुरा समाप्त ही नहीं होगी यह उसके आश्चर्य का विषय था, उसका जीवन समाप्त हो जाएगा—यह उसका ध्रुव सत्य था।

दूसरे दिन कलजन उसके लिए चाय और कुछ भोजन लेकर आया और उसने उससे कहा—"इस अँधेरी गुफा का मोह छोड़ दो, दोस्त। यह पेट-पताल जानवरों की खोह है।"

"तुम कहाँ रहते हो ?"

"मैं तो ऊपर दिल-दुनिया में रहता हूँ। गुरुदेव ने मुझे बहुत काम सौंप दिए हैं।"

"हूँ !" बड़ी तुच्छता-सा कलजन को देखकर रिंबूची ने कहा—"देखो जी तुम कहीं काम क्यों न करो और मैं कहीं क्यों न सो रहूँ ? अन्त में हम दोनों को गिद्ध और गीदड़ों का ही भोजन बनना है।"

"यह कायरों का दर्शन है। तुम साधु और चोर के जीवन में कोई अन्तर ही नहीं देख रहे हो। तुम्हारी विवेक-हीनता है यह। इस अँधेरे पेट-पताल में रहने से तुम ज्योति के जगत का कोई अस्तित्व ही नहीं मान रहे हो।" कलजन ने बड़े दुख के साथ कहा—'रिंबूची, हम आत्मा की शोध के लिए सब कुछ छोड़कर इतनी दूर आए थे। अफसोस है, तुम अपना लक्ष्य भूलकर अत्यन्त तुच्छ पार्थिवता में रम गए। यदि तुम्हें अन्धकार ही पसन्द है तो आँखें बन्द कर क्यों नहीं उस अँधेरे में रहते ?"

"क्या मिलेगा उस अँधेरे में ?"

"सब कुछ ! जो बाहर है, वही सब कुछ। बाहर छाया है, भीतर असलियत। बाहर का सब नष्ट हो जाने वाला है; भीतर जो प्राप्त कर लोगे, वह तुम्हारी अक्षय तृप्ति करेगा।"

'अच्छी बात है। मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ। बीच का द्वार खुला रहने दोगे ?"

"किसलिए ?"

'छङ् के नशे के लिए। कलजन क्या हम चाय नहीं पीते निरन्तर ?"

"तुम्हारे उस मन के अंधकार में भी तो छङ् का कलश मौजूद है। बड़ी आसानी से तुम उसे पी सकते हो।"

"नशा भी उठता है उससे ?"

"क्यों नहीं !"

"ऐसे ही सपने में जिस सपने में वह पी जाती है।"

"सपना जागृति से अधिक गंभीर है, रिंबूची।"

"तो तुम भाग जाओ यहाँ से। मैं सपने में हूँ। गुफा के अंधकार के ऊपर मैंने अपनी आँखें मीच रखी हैं और नींद के ऊपर मैंने नशे की चादर ओढ रखी है।"

कलजन उसे नशे में समझ छोड़कर चला गया। लेकिन वह अपने मित्र के लिये अधिक बेचैन हो उठा। वह मन-ही-मन उसके कल्याण के लिये कामना करने लगा। उसने गुफा के द्वार को बंद कर दिया पर उस पर साँकल नहीं चढ़ाई। इस आशा पर कि उसकी प्रार्थना सफल होगी और उसका मित्र उस अंधकार को छोड़कर प्रकाश की ओर बढ़ जायगा।

द्वार बंद कर उसने दिल-दुनिया में प्रवेश किया और वह मैत्रेय के ध्यान में बैठ गया। लेकिन उसका मन जमा नहीं उस कल्पना पर। वह सोचने लगा—"मेरा इतना निकटस्थ मित्र इस प्रकार अंधकार में फँस गया है और मैं सारे विश्व के त्राण की उपासना करूँ ? यह एक असंभव तर्क है। मेरा पहला कर्त्तव्य उसका त्राण करना है। उसे प्रकाश में

लाकर ही मेरा उद्देश्य पूरा होगा।"

वह इस प्रकार बैठा ही था कि खंपोलामा ने आकर पूछा—"क्या कर रहे हो ?"

"ध्यान कर रहा हूँ।"

"किसका ?"

"अपने मित्र का।"

"लेकिन हमें तो मैत्रेय को धरती पर उतारना है, सारे विश्व के कल्याण के लिये।"

"गुरुदेव, वह मेरा मित्र है, मैं उसे अपने साथ लाया हूँ। उसका उस अँधेरी गुफा में बंदी रह जाना मेरे लिये असह्य है।"

"सबकी मुक्ति के लिये कलजन, फिर तुम क्यों एक पर ही अटक गए हो ?"—खंपोलामा ने कहा। उनके पास एक हाथ का बना चित्र था, उस पर उन्होंने दृष्टि की।

"गुरुदेव, ध्यान किसे कहते हैं ?"

"क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो ?"

"नहीं गुरुदेव, मैं आपसे सत्य प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"पाँचों इंद्रियों का जो यह बाहरी भ्रम है इसे मन में पैदा कर लेना ही ध्यान है।"

"जिसे अनुभव नहीं है मैत्रेय का वह कैसे उनका ध्यान करेगा ?"

"सबके हृदयों में उस मैत्रेय का प्रकाश है। उसके लिये उत्कट इच्छा होने पर ही वह ध्यान में खुल जाता है।"

"किस तरह ?"

"ऐसे ही जैसे तुम मुझे देख रहे हो।"

"आँखें बंद होने पर ?"

"यह आँख सिर्फ बाहर के भ्रम की साक्षी है। कलजन, हमारे भीतर भी आँखें हैं।"

"भीतर कौन-सी आँख है ?"

"जिससे तुम स्वप्न देखते हो।"

कलजन कुछ चकराया।

खंगोलामा ने कहा—"स्वप्न में पाते हो न ? पूरे रंगो में, स्वरों में, गंधों में, स्वादों में और स्पर्शों में ?"

"हाँ गुरुदेव पाता हूँ।"

"अनुभव ? एक तुच्छता को यह नाम दिया गया है। स्मृति के ऊपर सदियों की धूल पड़ गई है। कलजन, हम करोड़ों जन्मों में आवर्त्तित हैं। हमने बार-बार उसे देखा है।"

"उसे बार-बार देखकर भी हम इस चक्कर के बाहर नहीं निकल सके, क्यों ?"

"उसको देख लेने से कुछ नहीं होता। जब तक तृष्णा हमारे भीतर मौजूद है, तब तक निर्वाण नहीं। जब तक दिए में स्नेह है, वह जलता ही रहेगा। हवा से बुझ जाना मौत है, निर्वाण नहीं। निर्वाण तो तेल के समाप्त होने पर ही होगा। देवता हमें तृष्णा के क्षय का सहज मार्ग बता देता है, वह हमारी तृष्णा हर नहीं सकता। कर्म का बड़ा निर्दय विधान है। वहाँ कोई अपवाद नही चलता। कर्म का बीज विचार में है और विचार उपजता है हमारे ध्यान से।"

"गुरुदेव, अभी आपने मन में से तृष्णा को निकाल देने को निर्वाण का सहायक बताया है—फिर अभी आप विचार करने को कहते हैं !"

"विचार और तृष्णा में अंतर है। तृष्णा अपनी पूर्ति के लिये बाहरी जगत में भ्रमती है और विचारणा मन मे ही रमकर पूर्ण हो जाती है। तृष्णा में तुम्हारा मन इंद्रियों के पीछे भागता रहता है अपने स्वरूप को भूलकर। विचारणा में मन बुद्धि में प्रतिष्ठित रहता है।"

"गुरुदेव, मैं अपने मन को अपनी बुद्धि में प्रतिष्ठा दूंगा। मै बाहरी जगत में भ्रमित न होऊँगा, मैं अपने भीतर ही ध्यान करूँगा।"

"देवता की प्रतिष्ठा से पूर्व उसके लिये आसन तैयार करना होगा। ध्यान के लिये पहले भूमिका बनाई जायगी तभी तो ध्यान जमेगा।"

"कैसे वह भूमिका बनेगी ?"

"धारणा से। धारणा ही वह वेदिका है जिस पर तुम्हारे हृदय का देवता आकर स्थिर होगा।"

"धारणा कैसे सिद्ध होगी ?"

"प्रत्याहार से।"

"प्रत्याहार क्या हुआ ?"

"इंद्रियों के पीछे भागते हुए मन को पकड़कर बुद्धि में स्थिर करना ही प्रत्याहार है।"

"बुद्धि क्या है ?"

"तू उस प्रत्यक्ष ब्रह्म का ही प्रकाश है, यही बुद्धि है।" खंपोलामा ने हाथ का चित्र कलजन को दिखाते हुए कहा—"लो जब तक तुम उस निराकार ब्रह्म को नहीं पकड़ सकते तब तक इस चित्र को सामने रखो।"

कलजन ने पूछा—"किसका चित्र है यह ? यह हाथ का बना हुआ है गुरुदेव, क्या यह आपने ही बनाया है ?"

'हाँ।"—खंपोलामा ने उत्तर दिया।

"इसके कपड़े कुछ दूसरी ही तरह के हैं। ऐसे क्यों बना दिए ?"

"ऐसे ही हैं।"

"कहाँ ?"

"सिर-सरग में।"

"वह कहाँ है गुरुदेव ?"

"दिल-दुनियाँ के ऊपर।"

'कौन है यह ?"

"देवी महामाया ! मैत्रेय की जननी !"

"रंग-रूप विदेशी है इसका ?"

"मैत्रेय समस्त विश्व की संपत्ति है, फिर तुम्हें क्यों अपने ही रंग-रूप का अभिमान हो ?"

"ये कहाँ से आईं ?"

"आकाश से, भगवान् ने भेज दीं।"

"चित्र के नीचे क्या लिखा है ?"

"ये महामाया के ही अक्षर हैं।"

"क्या अर्थ है इस लेख का ?"

"उसका लेख और वाणी दोनों हमारी बुद्धि से परे की चीजें हैं।" खंपोलामा ने कहा— "भ्रम में न पड़ो, कलजन, मैत्रेय का अवतरण अब स्पष्ट संभव हो गया, माता आ गई ! यही है वह माता।" खंपोलामा ने उसके सामने वह चित्र रख दिया।

कलजन अपने मन में सोचने लगा—"माता आ गई, पिता भी तो चाहिए।"

खंपोलामा कहने लगा—"हाँ कलजन, माता आ गई। पवित्र अत्यंत पवित्र है वह। उसके विरुद्ध कोई मलिन भावना न करनी होगी।"

कलजन ने घबराकर मन के उस विचार को तोड़ दिया। उसने विनम्रता के साथ कहा—"हाँ गुरुदेव।"

"इस चित्र को दीवार पर लटका दो और निरन्तर इसका ध्यान करो। इसकी गोद में शिशु मैत्रेय के दर्शन करो। जिस दिन तुम उसे स्पष्ट देख लोगे, वह अवतरित हो जायगा। मैं भी इसी ध्यान को साध रहा हूँ, कलजन। बाहर जो सारा सृष्टि का वृक्ष है इसकी जड़ हमारे मन की गहराई में ही है।"

कलजन ने वह चित्र अपने आसन के सामने की दीवार पर लटका दिया और बड़े कौतूहल से उसे समझने की कोशिश करने लगा—"इस चित्र में जो ये तीन जानवर आपने बनाए हैं, उनका क्या मतलब है ?"

"हाँ, ये तीन जानवर हैं, जिन्होंने धरती पर के मानव को भी जानवर में बदल दिया है। ये तीन जानवर हैं मुर्गा, साँप और सूअर ! ये तीनों धरती पर के तीन पापों के प्रतीक हैं। मुर्गा काम को व्यक्त करता है, साँप घृणा को और सूअर अज्ञान को। जब मैत्रेय धरती पर जन्म

लेता है तब ये तीनों पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय पर रात का अंधकार।"

"मैत्रेय की जय हो, वे शीघ्र पधारें धरती पर।"—कलजन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

"हाँ, इस कामना का भी कुछ फल है लेकिन कामना से ध्यान का माहात्म्य कई गुना है। इस बात को तुम्हें अधिक समझने की जरूरत नहीं है।"—कहकर खंपोलामा चला गया।

कलजन उस चित्र को देखता ही रह गया। अनगिनती भावनाएँ उसके मन में उठने लगी—"कौन है यह महामाया? निःसन्देह यह किसी दूर देश की है। खंपोलामा ने इसके बारे में आज तक कभी कुछ नहीं कहा। यह नारी बिलकुल नवीन वय की जान पड़ती है। इस एकान्त में कहाँ से आ गई? गुरुदेव आकाश-मार्ग में भ्रमण करते रहते हैं। जरूर कहीं से ले आए होंगे।"

कलजन किसी विचार में स्थिर नही रह सका। इसी समय अतिथि-शाला की तरफ द्वार पर उसे खटखटाने की आवाज सुनाई दी।

रिंबूची चिल्ला रहा था—"द्वार खोल दो, कलजन, द्वार खोल दो। मैं तुम्हारी आज्ञा मानने को तैयार हूँ।"

कलजन की समझ में कोई बात नहीं आई। उसने पूछा—"आखिर क्या हो गया तुम्हें? इतनी जल्दी तुम्हारी मति कैसे फिर गई?"

"जो कहोगे वही करूँगा भाई, द्वार तो खोलो।"

कलजन ने द्वार खोला। हाँफता हुआ रिंबूची दिल-दुनिया के भीतर घुस आया और बोला—"यह दरवाजा बंद कर दो।"

"क्या बात है?"

'मुझे बड़ा भय लग रहा है। मुझे कहीं छिपा दो।"

"रिंबूची, तुम्हें अधिक नशा चढ़ गया जान पड़ता है।"

'नहीं, मैं तुमसे सच कह रहा हूँ। उस अंधेरी पेट-पताल की गुफा में बड़े भयानक भूत रहते हैं। आज मैंने उन्हें देखा और सुना।"

"मैं कब से तुमसे कह रहा था। भगवान् का धन्यवाद है आज तुम्हें अकल आई। प्रतिज्ञा करो कि तुम आज से नशे का सेवन नहीं करोगे। नशे से बढ़कर बुरी चीज और क्या है? यह तमाम पापों का पिता है।"—कलजन ने कहा।

"बड़े भयानक भूत!"—रिंबूची ने द्वार बंद कर उसमें साँकल चढ़ा दी।

"नशा मनुष्य को ही भूत में बदल देता है। तुम स्वयं ही भूत बन गए हो। तुम्हें देखकर मुझे डर लगता है।"

"छिपा दो कहीं।" अचानक रिंबूची की नजर उस चित्र पर गई, उसने पूछा—"यह किसका चित्र है?"

"महामाया का।"

"कहाँ है वह?"

"यहीं इसी मठ के ऊपरी भाग में।"

"मुझे दिखा दो।"

"नहीं, अभी हमें इसी चित्र को देखने की आज्ञा है।"

"यहाँ तो बहुत प्रकाश है। ये लकड़ी के ठप्पे कैसे हैं?"

"इनसे पुस्तकें छापी जाती हैं।"

"ये चित्र और ये मूर्तियाँ! इनका यहाँ क्या काम है?"

"गुरुदेव ने इन सबको ध्यान-साधना का बहुत आवश्यक अंग बताया है।"

"इनके लिए तो एकाग्रता चाहिए।"

"अवश्य।"

"लेकिन एकाग्रता तो वहाँ अंधेरी गुफा में है।"

"वह तुम्हारा अंधविश्वास है।"

रिंबूची फिर चौंका, उछलकर बोला—"भूत! भूत!" वह चीखता-चिल्लाता कमरे में इधर-उधर दौड़ने लगा।

कलजन ने उसे पकड़कर कहा—"रिंबूची, मूर्खता न करो! भूत

कोई चीज नहीं है।"

"हूँ, भूत कोई चीज नहीं है ! इतने दिन तक भूतों को माना तुमने, उनसे भय खाया, उनकी पूजा की—अब तुम भूत न माननेवाले बन गए !"—रिंबूची ने कहा।

"मन की कल्पना है सब, जैसा सोचो वही रूप रखकर सामने आ जाता है।"—कलजन बोला।

"बस यहीं पर तुम्हारी जबान कट जाती है। मैंने भूतों को सोचा है, इसी से भूतों को देखा है। कोई शक नहीं, वे यहाँ आकर तुम्हारे देखने में भी आ जाएँगे।"

"कभी नहीं, तुम्हारे विचारों की जड़ में सड़े हुए जौ का उफान है, मैंने उसे नहीं पिया है। मेरी कल्पना में भूत नहीं है, वे मेरे सामने भी नहीं आ सकते।"

इतने में किसी ने द्वार खटखटाकर कहा—"गुरुदेव ! गुरुदेव !"

रिंबूची बोला—"वह देखो आ गए भूत ! अब देखता हूँ कैसे तुम्हारी जान बचती है ?" रिंबूची भागकर दिल-दुनिया में भगवान् मैत्रेय की विशाल मूर्ति के पीछे छिप गया।

बात ऐसी हुई उस दिन हवाई जहाज में का फटा हुआ डायरी का पन्ना पढ़ते हुए जब भैरव लौटा तो सरदार और वह दोनों मिलकर जानवरों की पीठ पर से उतारा हुआ सामान गुफा के भीतर रखन लगे। उनकी गुफा में गूँजती हुई आवाज और छाया से घबराकर रिंबूची वहाँ से भागा और कलजन के पास चला गया।

बाहर का तमाम सामान गुफा में रखकर सरदार भैरव को लेकर भीतर चला। दिल-दुनिया का द्वार खटखटाकर उसने पुकारा—"गुरुदेव ! गुरुदेव !"

कलजन उस आवाज को सुनकर प्रभावित हुआ। उसने अपने मन में निर्णय किया—"यह पुकार किसी अधिकारी की ही है। लेकिन बिना गुरुदेव की आज्ञा पाए द्वार खोल देना उचित नहीं।" उसने जवाब में

कहा—"कौन है ?"

"अपना परिचय दो, तुम कौन हो ?"—आवाज आई, उसमें यह स्पष्ट ही गूँज रहा था पूछनेवाले के मन में इस उत्तर देनेवाले के लिये जरा भी प्रतिष्ठा नहीं है।

अब कलजन का माथा ठनकने लगा, वह बोला—"गु-गुरुदेव सिर-सरग में विराजते हैं।"

पूछनेवाला जोर से हँसा—"तुम कोई नए ही आदमी जान पड़ते हो, खोलो द्वार।"

रिंबूची मैत्रेय की मूर्त्ति की ओट से बोला—"कलजन, यही तो है वह भूत ! और भी पूरी पलटन है इसके साथ, भला चाहते हो तो मत खोलो दरवाजा।"

कलजन द्वार खोलने ही वाला था, रिंबूची के इस आग्रह पर रुक गया। सोचने लगा—"यदि ये सचमुच में भूत हैं तो इन्हें द्वार खुलवाने की क्या आवश्यकता है ?" वह द्वार खोलने लगा।

रिंबूची ने आवाज से कलजन का मतलब समझकर एक बार फिर कहा—"कलजन, खबरदार !"

कलजन ने द्वार खोल दिए। सरदार और उसके पीछे-पीछे भैरव ने प्रवेश किया। सरदार के रौबीले मुख को देखकर कलजन ने झुक-कर उसके प्रति आदर प्रकट किया।

सरदार ने भैरव से कहा—"तुम यहाँ बैठो, मैं गुरुदेव से मिलकर अभी आता हूँ।" सरदार ने कलजन से कोई बात नहीं की, वह सीधा आगे को बढ़कर न-जाने कहाँ चला गया।

कलजन देखता ही रह गया। उसने अंदाज लगाया वह आनेवाला जरूर किसी गुप्त मार्ग से गुरुदेव के पास चला गया। कलजन के ऊपर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा, वह गुरुदेव का जरूर कोई विशेष गण है। उसने भैरव के बैठने को आसन देते हुए कहा—'बैठो जी।"

भैरव इधर-उधर देखते हुए बोला—"बैठ जाऊँगा। तुम कोई

तकलीफ मत करो।"

मूर्त्तियों की भव्य कला को देखकर भैरव प्रसन्न हो गया। कलजन उसके साथ-साथ उस कमरे में घूम रहा था। भैरव ने पूछा—"यह किसकी कला है ?"

"गुरुदेव की।"

"अच्छा गुरुदेव मूर्त्तिकार भी हैं क्या ?"

"हाँ, वह आत्मा की शोध के लिये कला का प्रकाश आवश्यक मानते हैं।"

"होगा।"—भैरव ने बड़ी उदासीनता के साथ कहा।

"होगा नहीं, है। कला भी भावना का ही पार्थिव रूप है, आत्मा की खोज उसी के सहारे होती है।"

"यह मूर्त्ति मैत्रेय की है ?"—भैरव ने उस बड़ी मूर्त्ति की ओर उँगली दिखाकर पूछा। सरदार के घर उसने मैत्रेय की मूर्त्ति को देखा था।

मूर्त्ति के पीछे छिपे हुए रिंबूची की साँस बड़ी जोर-जोर से चल रही थी। भैरव ध्यानपूर्वक उसे सुनने लगा।

कलजन ने जवाब दिया—"हाँ, मैत्रेय की ही मूर्त्ति है।" वह अपने मित्र की कमजोरी को छिपा देने के मतलब से भैरव का हाथ पकड़कर आगे को ले जाने लगा।

लेकिन भैरव और भी कौतूहल के साथ उस मूर्त्ति के पास ठहर गया। रिंबूची ने अपनी स्थिति बदली, उसके एक हाथ की कोहनी दिखाई पड़ गई। भैरव ने उसे हाथ लगाकर टटोला।

रिंबूची भेद खुल जाने पर चिढ़कर बाहर निकल आया और भैरव का हाथ पकड़कर बोला—"कौन होता है तू ?"

भैरव ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। कलजन ने बीच-बचाव कर दिया। भैरव बोला—"बड़ा बदतमीज, कौन है यह ?"

"मेरा मित्र है। जाने दो इसे, इसकी तबीयत कुछ खराब है।"

रिंबूची कलजन पर बिगड़कर बोला—"कुछ तबीयत खराब नहीं है।"

कलजन ने इशारा कर भैरव को समझा दिया। भैरव चुप हो गया। दोनों आगे को बढ़ने लगे।

रिंबूची अपने को स्थिर न रख सका। उसने फिर झपटकर भैरव का हाथ पकड़ लिया और बोला—"तुम किस मतलब से यहाँ आए हो?"

कलजन ने उसका हाथ छुड़ाकर कहा—"तुम्हें नहीं मालूम है ये गुरुदेव के खास आदमियों में से हैं।"

"होंगे, हाथ-पैर तो ठोस जान पड़ते हैं। मुझे धोखा हो गया था।"

भैरव महामाया के उस चित्र के पास आया। उसे देखकर उसने पूछा—"यह किसकी तसवीर है?"

कलजन ने जवाब दिया—"महामाया, मैत्रेय की माता की।"

भैरव ने कुछ और निकट जाकर देखा। उस चित्र के फैशन पर वह बोला—"यह तो कोई यूरोपियन महिला जान पड़ती है।"

"हाँ, यही है।"—कलजन ने कहा।

"कहाँ से आया यह चित्र?"

"गुरुदेव ने बनाया।"

"योग-शक्ति से?" इसी समय भैरव की दृष्टि चित्र के एक कोने में लिखे हुए अक्षरों पर पड़ी। उस लेख को पढ़कर वह सन्न रह गया।

भैरव की भावना छिपी न रह सकी। कलजन बोला—"क्या लिखा है इसमें? तुम इस भाषा को जानते हो?"

"अच्छी तरह नहीं जानता।" भैरव ने भेद छिपा दिया।

चित्र के एक कोने में अंग्रेजी में जो लिखा था, उसका मर्म इस प्रकार था—

इस मठ में बंदिनी हूँ मैं,
कौन मुक्त करेगा मुझे?
—कुमारी इवा मार्सिन

भैरव ने पूछा—"मैत्रेय की मूर्त्ति अधिक काल्पनिक है और यह महामाया अधिक सजीव !"

कलजन ने कहा—"लेकिन कल्पना और सत्य में कोई फर्क नहीं है।"

भैरव के मन में मठ के बाहर के टूटे हुए हवाई जहाज, डायरी के फटे हुए पत्र और महामाया के चित्र पर लिखे हुए शब्दों से एक नई ही कहानी जुड़ रही थी। उसने कलजन से पूछा—"मठ के बाहर यह हवाई जहाज किसका है ?"

"हम नहीं जानते किसका है ? वह हमारे यहाँ आने से पहले ही से वहाँ पर पड़ा है।" कलजन ने कहा।

रिंबूची बोला—"वह भूतों का डेरा है।"

"इनकी बातों पर ध्यान न दो, यह नशे में हैं।"—कलजन ने कहा।

"तुम दोनों क्या करते हो यहाँ ?"

"हम तपस्या करते हैं।"—रिंबूची बोला।

कलजन ने विनम्रता के साथ कहा—"नहीं, ऐसी तकदीर कहाँ है हमारी ? हम दोनों गुरुदेव के चाकर हैं।"

भैरव ने कहा—"कोई किसी का चाकर नहीं है जी। यह स्वतन्त्रता का युग है, वह गुलामी का अन्धकार चला गया। हम सब बराबर हैं।"

कलजन डरते-डरते कहने लगा—"यह कैसी बात है ? आप कौन हैं ? आप यह कैसी सुना रहे हैं ? यहाँ तो पैसे-टके का कोई सौदा नहीं है। यहाँ धर्म का मामला है। गुरु गुरु की जगह में है और चेला चेले की। बौद्ध धर्म के भीतर शील सर्वोपरि है।"

"तुम्हें धर्म के नाम पर यह बहका दिया गया है। महात्मा बुद्ध ने ही संसार में सबसे पहले समता का उपदेश दिया है। सब बराबर हैं भाई।"

"तुमने अपना परिचय नहीं दिया।"

"मैं भी ऐसे ही एक जीव हूँ।"

"और वह जो गुरुदेव से मिलने गए हैं ?"

"वह सरदार हैं।"

"तुम्हारे सरदार ?"

"हाँ।"

"और अभी तुम कहते थे हम सब बराबर हैं। अभी तुम्हारे सरदार निकल आए !"

२४

महामाया

सरदार ने गुरुदेव के पास जाकर भैरव के बारे में न जाने क्या कह दिया, उन्होंने तुरन्त ही उसे अपने पास बुला लिया। कलजन और रिंबूची देखते ही रह गए, एक नवागंतुक एकदम तमाम सीढ़ियों, मंजिलों को एक ही दिन में पार कर भीतरी घेरे में पहुँच गया।

खंपोलामा के सामने सरदार ने गुप्त द्वार से ले जाकर भैरव को पेश कर कहा—"गुरुदेव, यही है वह युवक।"

भैरव ने गुरुदेव के सामने तीन बार प्रणाम किया। खंपोलामा ने उसके सिर पर तीन बार हाथ रखकर आशीर्वाद दिए।

भैरव खंपोलामा को देखकर प्रभावित हो गया। जैसा उनके बारे में उसने सुना था उसमें कोई अधिक अन्तर नहीं जान पड़ा उसे। गुरुदेव ने उसे अच्छी तरह देखा और फिर कहा—"बहुत अच्छा, युवक, तुम्हारे मुख में तुम्हारी भावना अंकित है और जान पड़ता है तुम कोई बहुत बड़ा काम करने के लिए संसार में आए हो।"

भैरव चुपचाप सुनने लगा।

खंपोलामा ने फिर कहा—"लेकिन एक भय है बहुत बड़ा···" गुरुदेव रुक गए।

भैरव चुप ही रहा, उसके मन में उस भय के निराकरण के लिए कोई जिज्ञासा पैदा नहीं हुई।

खंपोलामा ने प्रकरण बदलकर पूछा—"युवक, तुम जानते हो तुम यहाँ क्यों आए हो?"

भैरव ने कुछ सोचकर कहा—"अवश्यमेव।"

खंपोलामा ने पूछा—"बताओ।"

भैरव ने जवाब दिया—"रंगीन एशिया में सफेद चमड़ेवालों की कामना कैद है, मैं उसे मुक्त करने आया हूँ।"

खंपोलामा हठात् उस श्वेतांगना को सोचने लगा, जिसका नाम उसने महामाया रख दिया था। उसने पूछा—"कौन है वह ? तुम्हें कैसे ज्ञात हो गया ?"

"सत्य स्वयं प्रकट हो जाता है, गुरुदेव !"

गुरुदेव ने भैरव के कन्धे पर बड़ी प्रीति से हाथ रखकर पूछा—"साफ-साफ बताओ तो सही।"

खंपोलामा के पैर छूकर भैरव ने कहा—"क्षमा कीजिए गुरुदेव, ऐसे ही मुख से निकल पड़ा।"

"तुम शराब भी पीते हो ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"पहले पीता था महाराज, जब ·" अचानक उसे बात तोड़ देनी पडी।

"जब क्या ?"—खंपो ने पूछा।

"अब छोड़ दी महाराज, कई बरस हो गए।"

"उसको कैसे जान लिया तुमने वह यहाँ कैद है ?"

"कौन गुरुदेव ?"

"वही, वह श्वेतांगना ?"

"कौन श्वेतांगना देव ?" भैरव ने हंसकर पूछा।

"जिसके बारे में अभी तुमने कहा।"

"मेरा मतलब श्वेत जातियों की उस विजय की कामना से है जो एशिया के उर्वर भाग को निरन्तर अपनी गुलामी में ले लेने के लिए सोचती रहती हैं। वह लेनी नहीं चाहिए उन्हें। उनकी आबादी बढ़ गई है तो वे लम्बाई-चौड़ाई में फैलने के बजाय आकाश में क्यों नहीं बढ़ जाते ? खेतों के अन्न के बदले क्यों नहीं रसायनिक संश्लेषणों द्वारा अपनी खुराक बना लेते ?"—भैरव ने कहा।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"—खंपोलामा ने पूछा।

सरदार ने बताया—"दद्द्।"

"तुम बहुत होशियार जान पड़ते हो। तिब्बती के सिवाय कुछ और भाषाएँ जानते हो ?" गुरुदेव ने भैरव से पूछा।

"तिब्बती लेख-पढ़ नहीं जानता। नेपाली जानता हूँ, कुछ अंग्रेजी भी।"

"जो कुछ भी है, तुम्हें भगवान् ने मेरे पास एक बहुत बड़े मतलब से भेजा है।"

"लेकिन मेरा तो सिर्फ एक ही आशय है, मैं उसी के लिए इस संसार में आया हूँ। वह है, दुनिया में जो जबर्दस्त और दुर्बल का भेद है, उसे मिटा दूँ। यह जो एक देशवाले दूसरे देशवालों की गर्दन में फंदा लगाए हुए हैं, वह फंदा काट दिया जाय। सबके अधिकार समान हैं।"—भरव बोला।

खंपोलामा ने कहा—"भाई, तुम तो यह दुनियादारी की बात कर रहे हो—यह सब आसुरी सम्पत्ति है। हमें दैवी सम्पत्ति का बराबर बटवारा करना है। जड़ में तो वही है। जहाँ वह हुआ नहीं कि तुम्हारा उद्देश्य अपने-आप सिद्ध हो जायगा।"

"उसके लिए क्या करना होगा ?"—भैरव ने पूछा।

"उसके लिए मैत्रेय का अवतरण करना होगा धरती पर।" खंपोलामा को कुछ याद आया। उन्होंने सरदार से कहा—"दिल-दुनिया में महामाया का चित्र दिया है मैंने, उसे ला दो।"

सरदार चित्र लाने चला गया, भैरव ने अपने मन में सोचा—"हो-न-हो वही चित्र है।"

तुरन्त ही चित्र के आ जाने पर उसका संशय मिट गया। खंपोलामा ने पूछा—"तुमने इस चित्र को देखा है ? यह महामाया है, मैत्रेय की माता।"

"मैत्रेय की माता !"—चौंक पड़ा भैरव।

"क्यों ? क्यों ?"

"यह महा भयानक पाप की बात, आपके समान महात्मा के मुँह से कैसे निकल गई ?"—भैरव बोला।

सरदार ने भैरव का हाथ पकड़कर कहा—"दद्दू ! तुम यह क्या कहते हो, ये गुरुदेव हैं।"

खंपोलामा ने सरदार के हाथ से भैरव का हाथ स्वयं पकड़कर कहा—"नहीं सरदार ! इस युवक की मन और वाणी की एकता को देखकर मैं बहुत खुश हूँ, इसकी पीठ ठोकता हूँ। मुझे विश्वास है अब हमारी सिद्धि में कोई संशय नहीं है।"

भैरव ने संकोच से माथा नीचा कर लिया।

खंपोलामा ने उसका माथा ऊँचा कर कहा—"युवक ! प्रकृति दो भागों में बँटी है—क्षर और अक्षर। तुमने क्षरता को सामने रखकर पाप को देखा। अक्षरता पाप और पुण्य दोनों की सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। महामाया के जो गर्भ स्थापित होगा वह अक्षरता से होगा। इसलिए पाप की कोई कल्पना न करो।"

भैरव ने फिर सिर नीचा कर गुरुदेव की बात का कोई विरोध नहीं किया।

गुरुदेव ने कहा—"महामाया क्या मैत्रेय को गोद नहीं ले सकती ?"

सरदार ने जवाब दिया—"जरूर ले सकती है।"

"फिर कैसे पाप की कल्पना तुम्हें हो ? युवक, पाप और पुण्य को परिभाषा में बाँध लेना सहज बात नहीं है।"—गुरुदेव ने कहा।

सरदार बोले—"गुरु के वाक्य को बिना किसी संशय के ग्रहण कर लेना ही कल्याणकारी होता है।"

भैरव बोला—"गुरुदेव, इसी भय से धर्मों के भीतर क्या पाखण्ड की बुनियाद नहीं पड़ गई ? इस वाणी की गुलामी ने हमें भीतर कुछ और बाहर कुछ बना दिया !"

गुरुदेव हँसे—"धीरे-धीरे तुम्हारी समझ में आ जायगा। अच्छा, एक बात तो बताओ। इस चित्र में यह क्या लिखा हुआ है ? कौन भाषा

है यह ? तुम पढ़ सकते हो इसे ?"

भैरव मुश्किल में पड़ा। उसने मन में सोचा—"इस लेख को सही-सही पढ़ूं या किसी और तरह ?" उसने तुरन्त ही निर्णय कर कहा—"गुरुदेव, यह अंग्रेजी में लिखा गया है।"

"क्या मतलब है इसका ?"

"कुमारी इवा मार्सिन नामक किसी महिला ने इसे लिखा है।"—भैरव आगे को चुप हो गया।

"क्या लिखा है ?"—गुरुदेव का आग्रह था।

"गुरुदेव !"—भैरव ने फिर बड़ी कठिनता से उस लेख को पढ़ने का नाटक किया।

"तुमने पढ़ लिया है इसे। सत्य नहीं छिपाया जायगा युवक ! कहो जो भी लिखा है। तुम्हें किसका भय है ?"

"गुरुदेव, वह नारी लिखती है—मैं इस मठ में वंदिनी हूँ, कौन मुझे मुक्त करेगा ?"—भैरव ने लेख का अनुवाद किया।

"वंदिनी ? कौन कहता है वह वंदिनी है ?"—गुरुदेव ने कहा।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोला। एक गम्भीर सन्नाटा छा गया। गुरुदेव ने ही उसे तोड़ा—"युवक, तुम उसको देखकर कहना, वह वंदिनी है या उसकी सेवा में हम बंदी हैं !"

खंपोलामा सिर-सरग की ओर को बढ़ते हुए फिर लौट गया—"तुम उसके साथ बात कर सकोगे ?"

"हाँ गुरुदेव, यह उन्हीं का लिखा है ?"

"हाँ, उन्हीं का लिखा है। अच्छा चलो, चुपचाप बहुत धीरे-धीरे छिपकर देखो उसे। देखो क्या मैंने उसे कैद कर रखा है ?"

तीनों ऊपर की ओर चले। चार कमरे थे उसमें। चारों अत्युत्तम साज-सज्जा से परिपूर्ण, बढ़िया गलीचे और कालीन बिछे हुए थे। छोटी चित्र-विचित्र अजदहों के चित्रों से अंकित तिब्बत मेजें लगी थीं। धूप और हवा के लिए गवाक्ष बने थे। दीवारों पर भाँति-भाँति की

आकृतियाँ बनी थीं। बढ़िया रेशमी झालरदार परदे टंगे थे। अनेक प्रकार की मूर्त्तियाँ रखी हुई थीं। दीवारों में दर्पण जड़े थे।

कमरे के बाहर ही गुरुदेव ने उन दोनों को ठहरा दिया और एक छेद से कमरे के भीतर देखकर धीरे-धीरे बोले—"देखो, मैंने उसे बंदी नहीं किया है। बड़े सुख से रखा है यहाँ।"

भैरव ने छेद से देखा। एक परम सुन्दरी नारी, श्वेतागंना, एक तकिए के सहारे लेटी हुई बड़ी गहरी चिन्ता में डूबी हुई थी। उसके मुख पर करुणा मूर्त्तिमती होकर बसी हुई थी।

गुरुदेव बोले—"भाषा का बन्धन कहा जा सकता है। उसकी भावना मुझ पर प्रकट नहीं और मेरी उस पर नहीं। लेकिन युवक, तुम्हारे आ जाने से वह ताला टूट जाएगा।"

सरदार उसे छेद से देखने लगा।

"लेकिन मैं कहीं से चुराकर-छीनकर नहीं लाया। परमेश्वर ने इसे मेरे पास भेजा है, जरूर अपना ही मतलब पूरा करने को। ठहरो युवक, जल्दी मत करना। ज्यादा बातें भी इससे करनी नहीं है।"

भैरव ने फिर उस छेद से देखना शुरू किया। वह सुन्दरी उठी। उसने धीरे-धीरे खिड़की खोलकर पर्दा हटाया और बाहर की ओर दृष्टि की। पर्दा गिरा दिया उसने शीघ्र ही। एक रूमाल से उसने अपनी आँखों के कोनों को पोंछ डाला। दीवार में एक विशाल दर्पण जड़ा हुआ था, उसमें उसने अपना प्रतिबिम्ब निहारा। अपनी छाती पर हाथ रखकर उसने एक ठण्डी साँस ली और फिर एक निराधार लता की भाँति नीचे बिछौने पर गिर पड़ी!

भैरव, दूर देश के एक अज्ञात निर्जन में, एक बौद्ध भिक्षु की संगति में उस सुन्दरी की कल्पना कर द्रवित हो उठा। एक नए ही वायुमण्डल, सर्वथा विदेशी रहन-सहन और एक अनजान भाषा-भावना के बीच में उस बाला की विषम परिस्थिति की कल्पना कर न सका भैरव। उसकी इच्छा होने लगी, वह दौड़कर उसके पास जाकर उसकी न-जाने कितने

समय से अवरुद्ध भावना को अपनी बोली का सहारा दे दे। उसने बड़ी परवशता से खंपोलामा की ओर देखा।

'क्या कहना चाहते हो ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"कुछ नहीं गुरुदेव, यह नारी बड़ी विषम परिस्थिति में है।"

"तो क्या यह मेरी वंदिनी है ?"

"नहीं, गुरुदेव मेरा यह आशय नहीं है।"

"मैं उसका बन्दी हो गया, दद्द् ! लेकिन कर्त्ता कोई नहीं है। सब उसी के इशारों से हो रहा है।"—खंपोलामा ने आकाश की ओर इंगित किया।

सरदार कहने लगा—"बड़ी विचित्र रीति से वह अपनी इच्छा को पूरा करा लेता है, हम समझते हैं इच्छा हमारी है।"

"तुम इससे बातें करना चाहते हो ?"

भैरव ने बड़ी उत्कंट आकांक्षा के साथ कहा—"हाँ, गुरुदेव।"

"लेकिन सीधे बात नहीं कर सकते तुम अभी।"

"फिर कैसे ?"—भैरव ने पहेली में पड़कर पूछा।

"बीच में मैं रहूँगा।"

"अर्थात् ?"

"मैं तुमसे जो कुछ कहूँगा, तुम उससे कहोगे और जो कुछ वह उत्तर देगी तुम मुझे बताओगे।"

भैरव ने उत्तर दिया—"तो गुरुदेव, बीच में आप नहीं, बीच में तो मैं रहा।"

खंपोलामा हँसे—"वत्स, अगर हम चक्कर में खड़े हो जाएँ तो सभी बीच में हैं। अच्छा, इन बातों को छोड़ो, काम की बातें होनी चाहिएँ।"

दोनों इवा के कमरे की ओर बढ़े। खंपोलामा ने भैरव को एक परदे के पीछे खड़ा कर उससे कहा—"तुम इससे कहो—भगवान् की एक विशेष इच्छा से ही यह यहाँ इस मठ में आई है।"

भैरव ने खाँसकर गला साफ किया और जो कुछ खंपोलामा ने कहा, उसको अंग्रेजी में निवेदन किया।

अंग्रेजी के शब्दों को उस मठ में गूंजते हुए सुनकर पहले तो इवा को विश्वास ही नहीं हुआ। वह समझी कि सपना देख रही हूँ। वह सँभलकर उठ बैठी। उसने विश्वास बढ़ाने को पूछा—"क्या सचमुच में ही तुम यह कोई बोल रहे हो? हे योगिराज, ये ध्वनियाँ तुमने अपने मंत्र-बल से तो नहीं उपजा दीं? या यह मेरा भ्रम है?"

"नहीं, तुम्हारा भ्रम नहीं है।"

"भगवान् को धन्यवाद।"—इवा ने उठकर भगवान् के प्रति आभार प्रकट किया। वह उस बोलनेवाले की तरफ को बढ़ने लगी। गुरुदेव ने उसे रोक दिया।

विह्वल होकर इवा बोली—"कौन हो तुम? मेरे सामने आओ न। मेरे प्राण तुम्हें देखने को बेचैन हो उठे हैं।"

खंपोलामा ने उस परदे की ओट से बोलनेवाले से पूछा—"यह क्या कह रही है?"

भैरव ने उत्तर दिया—"सामने आने को कह रही है।"

खंपोलामा बोले—"इनसे कह दो गुरुदेव की आज्ञा नहीं है, जब तक तुम दोनों का कोई सम्बन्ध स्थिर न हो जाए तुम सामने नहीं जा सकते।"

भैरव के कहने पर इवा ने पूछा—"गुरुदेव कौन हैं?"

"इस मठ के स्वामी।"—भैरव ने उत्तर दिया।

"हमारा क्या सम्बन्ध स्थिर होगा?"—इवा ने पूछा।

"मैं नहीं जानता।"

"तुम कौन हो?"

"मैं यह भी नहीं जानता। काल के समुद्र में तैरता हुआ कोई जीव हूँ या दिशाओं के अनन्त में उड़ता हुआ कोई पक्षी।"

"तुम यह मेरी भाषा बोलने के कारण मेरे लिए बड़े प्रिय हो चुके

हो। तुमने कहाँ सीखी यह भाषा ?"—इवा ने पूछा।

गुरुदेव ने कहा—"दद्द् ! इतना ज्यादा मुख खोलने की आवश्यकता नहीं है। एक-एक शब्द मुझ पर खुल जाना चाहिए।"

भैरव ने कहा—"ये पूछती हैं, हमारा क्या रिश्ता स्थिर होगा ?'

खंपोलामा बोले—"तुम्हीं बताओ।"

"मैं इनसे ही पूछता हूँ।" भैरव ने इवा से पूछा—"हमारा रिश्ता तुम्हारी ही रुचि पर निर्भर है।"

इवा हँस पड़ी—"मैंने तुम्हें कभी देखा नहीं, तुम्हारे बारे में कुछ सुना नहीं। मैं कैसे तुमसे कोई रिश्ता कर लूँ ? इसीलिए तो कहती हूँ सामने आओ।"

भैरव ने यही खंपोलामा के कान में दुहराया। खंपोलामा ने प्रत्युत्तर में कहा—"इससे कहो, भगवान् ने ही इसे यहाँ भेजा है संसार की एक विशेष सेवा के लिए।"

इवा ने यह सुनकर कहा—'भगवान् ने नहीं भेजा है, मेरा हवाई जहाज टूट गया और मैं यहाँ गिर पड़ी। मैं हवाई उड़ान का एक रिकार्ड स्थापित करने जा रही थी।"

भैरव ने कहा—"यह कहती हैं भगवान् ने नहीं भेजा, हवाई जहाज में पेट्रोल खत्म हो जाने से ये यहाँ गिर पड़ी।"

खंपोलामा ने हँसकर कहा—"यही तो भगवान् का भेजना है।"

इवा बोली—"तुम अपना परिचय देने में क्यों संकोच कर रहे हो ?"

खंपोलामा ने पूछा—"इसने क्या कहा ?"

भैरव ने जवाब दिया—"यह मेरा परिचय पूछती हैं।"

"कह दो मैं मैत्रेय हूँ।"

भैरव ने चौंककर पूछा—"मैत्रेय कौन है ?"

"तुम मैत्रेय को नहीं जानते, जरूर जानते हो। मैत्रेय वही है सदियों से त्रस्त धरती जिसके आने की प्रतीक्षा कर रही है।"

"मैं मैत्रेय हूँ ?"

"हाँ, तुम मैत्रेय हो, दद्दद् ! भ्रम और अविश्वास की कोई गुंजाइश नहीं है। कह दो—तुम मैत्रेय हो और वह मैत्रेय की जननी।"

"वह मैत्रेय की जननी ! बड़ा असम्भव सत्य है यह। हम दोनों की आयु में बहुत थोड़ा अन्तर है।"

"इससे क्या होता है ? गोद ली हुई सन्तान ऐसी ही होती है। गुरु की आज्ञा मान लो, हम तुम्हारे भी मैत्रेय की आत्मा की प्रतिष्ठा कर देंगे। अभी तुम्हें जो कल्पना जान पड़ती है, कुछ ही दिनों में वही सत्य हो जाएगा।"

इवा बोली—"कौन हो तुम ? इस शून्यता में मैं कई बार आत्म-घात की चेष्टा करने लगी थी। तुमने मुझे बचा लिया। क्या कभी किसी से बोलकर अपने हृदय का दुःख बाँट सकूँगी ?—मैं यही सोचती रह गई थी। तुम्हारी इस वाणी में मेरी प्रार्थनाएँ स्वीकृत हुई हैं। मुझे विश्वास हुआ है, भगवान् अवश्य हैं। आओ, मेरे सामने आओ, मेरी मुक्ति के उपायों पर हम बहस कर सकें।"

खंपोलामा ने कहा—"यह न-जाने क्या-क्या बक रही है। तुम्हें शीघ्र ही इस पर मेरा संदेश खोल देना चाहिए।"

"हाँ गुरुदेव !"—भैरव ने कहा।

"नहीं ! यह संबोधन नहीं देना होगा अब तुम्हें मुझे, तुम जगद्गुरु मैत्रेय हो। मुझे गुरु कहने से तुम्हारे भीतर मैत्रेय की आत्मा प्रकाशित न हो सकेगी।"

"अच्छी बात है।"

"सबको एक साधारण मनुष्य समझकर बात करो।"

"ऐसा ही होगा। अब मैं इस पर अपना सम्बंध खोलता हूँ।" भैरव ने इवा से कहा—"सुनती हो ? मेरा-तुम्हारा सम्बंध क्या है ? तुम मेरी माता हो, मैं तुम्हारा बेटा हूँ।"

"छी: ! यह क्या परिहास करते हो ? मुझे कलंकिनी बनाते हो तुम ?"

"नहीं, तुम संसार में पूजित होओगी। मैं मैत्रेय हूँ।"

"मैत्रेय कौन है ?"

"आगामी बुद्ध, संसार का त्राणकर्ता।"

"नहीं, मैं बिना पत्नी बने माँ बनने को राजी नहीं हूँ।"

खंपोलामा ने पूछा—"क्या कहती है यह ?"

भैरव ने जवाब दिया—"मेरी माता बनना स्वीकार नहीं करती। कहती है, मैं बिना पत्नी बने माता नहीं बन सकती।"

खंपोलामा बोला—"कहो, मैत्रेय के लिये सब कुछ किया जा सकता है, धरती बड़ी आकुलता से उसकी प्रतीक्षा कर रही है।"

भैरव ने इवा से कहा—"बिना पत्नी के माता हो सकती हो तुम। ईसा की माता मरियम ने जिस प्रकार कौमार्य में ही मसीह को जन्म दिया इसी तरह।"

"नहीं, नहीं, मैं मरियम नहीं बनना चाहती।"

भैरव ने खंपोलामा से वैसा ही कह दिया।

खंपोलामा प्रत्युत्तर में बोला—"तो इसे सावधान कर दो, यह अपनी भावनाओं की समाधि बनकर इसी कमरे में समाप्त हो जायगी। तुम इसके साथ कभी कोई बात न करने पाओगे।"

भैरव ने कहा—"इवा !"

इवा चौंक पड़ी—"तुम मेरा नाम कैसे जान गए ?"

"कैसे भी हो।"

इवा बड़े आश्चर्य में पड़ गई—"इस ऊँचाई पर, इस कँटीली हवाओं और अबूझ भाषा के देश में, इस नमकीन चाय और ऊन के प्रांत में—तुम मेरे इतने परिचित कहाँ से आ गए—कौन हो तुम ?"

"मैं मैत्रेय हूँ, मैं आनेवाला बुद्ध हूँ, मैं आ गया हूँ। तुम्हें मेरी माँ बन जाने की ममता क्यों नहीं होती ?"

"बिना प्रभात के ही निशा कहाँ हो जाती है ?"

"हिम के तूफान में कभी क्या प्रभात और रात का रंग एक ही सा

नहीं हो जाता ? धरती माता के इस संकटकाल में जब कि प्रत्येक मनुष्य और जाति अपने तुच्छ स्वार्थ में अंधी हो गई है, तुम क्यों अपने तुच्छ मोह में पड़ी हो ?"

"तुम आनेवाले बुद्ध हो ! मैं ईसा को मानती हूँ।"

"नामों के अंतर में क्या रखा है ? सभी जातियाँ आनेवाले प्रभु को मानती हैं। जिसे बौद्ध लोग बुद्ध कहते हैं—क्यों उसी को मुहम्मद, ईसा, महावीर और कल्कि नहीं कहा जा सकता ?"

"तुम इनमें से ही कोई या सब हो, इसका क्या सबूत है ?"

"सबूत ? सबूत कुछ नहीं सिर्फ तुम्हारा विश्वास। आस्तिक को किसी सबूत की आवश्यकता नहीं है और नास्तिक किसी तरह नहीं मानता। अधिक से अधिक लोगों की भावना से भी मेरे भीतर मैत्रेय की प्रतिष्ठा हो जायगी।"

"लेकिन तुमने मेरा नाम कैसे जान लिया ?"

"किसी दैवी शक्ति से नहीं, साधारण तर्क का अनुसरण कर।"

"बताओ भी तो।"

"तुम्हारे टूटे हुए हवाई जहाज में मुझे तुम्हारी डायरी का फटा हुआ पन्ना मिल गया था।"

"मैत्रेय ! मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करती हूँ, तुम विश्व की मुक्ति के लिये हो। मुझे भी यहाँ से मुक्त कर दो।"

इतने ही में खंपोलामा कहने लगा—"मैत्रेय ! बहुत अधिक इसके साथ घुल-मिलकर बातें करने की जरूरत नहीं है। तुमने कह दिया इससे कि यदि यह मैत्रेय की माता बनने को राजी नहीं है तो बिना किसी से कुछ कहे-सुने ऐसे ही समाप्त हो जायगी ?"

"हाँ, कह दिया।"

"उसका कोई असर नहीं हुआ ?"

"नहीं।"

"अच्छा तुम यहाँ आ जाओ।"

"एक बार ऐसा कह दूं इससे ?"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं है।"

भैरव, खंपोलामा था जहाँ बाहर वहाँ चला गया। दोनों सिर-सरग के द्वार बंद कर दिल-दुनिया में चले गए। गुरुदेव बोले—"मैं चाहूँ तो खाना-पीना बंद कर एक ही दिन में इसे काबू में कर लूं, लेकिन इस तरह नहीं। हमें बिना इसके हृदय को जीते सफलता नहीं मिलेगी।"

'हाँ, ऐसा ही उचित है।"

दोनों छेद से देखने लगे, इवा क्या करती है।

२५

मैत्रेय !

भैरव का वहाँ से चला जाना अभी इवा पर खुला नहीं था। लेकिन गुरुदेव को वहाँ से कुछ दूसरी ही भावना लेकर जाते हुए देखकर इवा कुछ सहम गई थी जरूर। उसने भैरव के लिये कहा—"मेरे सामने प्रकट हो जाओ न ! जिनका तुम्हें डर था, वह तो चले गए।"

लेकिन जब उसे इसका कोई उत्तर न मिला तो उसने अपने मन में समझा, गुरुदेव अकेले ही नहीं गए। वह उठी, उसने कमरे में चारों ओर देखा। कहीं किसी को न पाया। द्वार की ओर बढ़ी। द्वार बंद कर दिया गया था। उसने द्वार पर हाथ से थपके देकर पुकारा—"क्यों, द्वार क्यों बंद कर दिए तुमने ? अब तक बोल रहे थे। मैं अपनी आंखों का लालच छोड़ दूंगी। बोलो न।"

बाहर छेद से खपोलामा और भैरव दोनों देख रहे थे। खंपोलामा ने भैरव से चुप रहने का इशारा किया।

"मैत्रेय ! मैत्रेय ! कहाँ हो तुम ? सामने आओ न।"

गुरुदेव भैरव का हाथ पकड़ दूर ले जाकर बोले—"क्या कह रही है यह ?"

"कुछ नहीं—मैत्रेय ! मैत्रेय !—कहकर मुझे पुकार रही है।"

"चलो, अच्छा हुआ, इसकी आवाज में तो तुम्हारा जन्म हो गया !"

"मैत्रेय ! मैत्रेय !" इवा द्वार भटभटाकर बोली—"मैं तुम्हारे नाम की रटना लगा दूंगी दिन-रात। तुम कहीं नहीं गए हो, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम कब तक न पसीजोगे। मैत्रेय ! मैत्रेय !"

"मैत्रेय !" खंपोलामा ने कहा—"हर आवाज सूक्ष्म में बड़ी

गहराई से अंकित हो जाती है।"

"मुझे कोई जवाब तो देना ही चाहिए। मैत्रेय करुणा की मूर्त्ति है।"

"जरूर दो जवाब—वह एक ही है। यह जब मैत्रेय कहकर पुकारती है, तुम माता! माता! कहो।"

इवा ने फिर पुकारा—"मैत्रेय! मैत्रेय!"

भैरव ने प्रत्युत्तर में कहा—"माँ! माँ!"

"नहीं, नहीं, कुछ और बोलो।"

भैरव ने खंपोलामा की ओर देखा। खंपो बोला—"और क्या बोला जा सकता है, मैत्रेय अपनी माता से और जो कुछ कह सकता है, तुम भी कहो।"

"मैत्रेय! मैत्रेय!"—इवा फिर चिल्लाई उधर से।

"माँ! माँ!"—इधर से भैरव ने उत्तर दिया।

"नहीं, मैं किसी की माँ नहीं हूँ।"

भैरव ने खंपोलामा से कहा—"यह कहती हैं, मै किसी की माँ नहीं हूँ।"

"तब ऐसे ही बंद रहने दो इसे। जब तक यह तुम से पुत्र कह देने को तैयार न होगी, द्वार नहीं खोले जाएँगे।"—खंपोलामा ने कहा।

"मैत्रेय! मैत्रेय! तुम चाहे किसी के भी पुत्र हो सकते हो। मैं तुम्हें मैत्रेय मानने को तैयार हूँ। द्वार खोल दो।"

खंपो ने पूछा—"यह तुमसे बटा कह रही है?"

"नहीं।"

"चलो, फिर मत खोलो द्वार। इससे कह दो द्वार ही नहीं इसका भोजन भी बंद कर दिया जायगा।"

भैरव ने वैसा ही कह दिया। इवा बोली—"मुझे जरा भी भय नहीं है। अगर तुम मुझे इस तरह मार देना चाहते हो तो मैं समझती हूँ मेरे कमरे की ये खिड़कियाँ बाहर काफी ऊँची हैं और उनके नीचे के चट्टान

बड़े नीचे और सख्त हैं। मैं वहाँ से कूदकर आत्महत्या कर सकती हूँ।" भैरव ने अविलम्ब यह गुरुदेव से कह दिया। गुरुदेव हँसे—"मर जाना इतना आसान नहीं है, चलो।"

लेकिन भैरव वहीं पर रुक गया—"नहीं, हमें एक अबला पर कठोर नहीं होना चाहिए।"

"अच्छा तुम यहाँ से उधर छिप जाओ। मैं तुम्हारे मन का वहम निकाल देता हूँ। मैं इसे बीच के कमरे में बंद कर देता हूँ, वहाँ इसके कूद जाने के लिये कोई खिड़की नहीं है।"—कहकर खंपोलामा ने द्वार खोले।

द्वार खुलता देखकर बड़ी प्रसन्नता से इवा आगे को बढ़ी पर जब उसे खंपो दिखाई दिया तो वह बड़ी निराशा के साथ पीछे को हट गई।

खंपो ने इशारा कर उस कमरे को दिखाया, जहाँ वह उसे बन्द करना चाहता था, लेकिन इवा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

खंगो ने फिर जब बार-बार उस कमरे की ओर इशारा किया तो इवा उधर चली गई। खंपो ने द्वार बन्द कर दिए।

इवा ने चिल्लाकर कहा—"मैत्रेय !"

"हाँ माँ !"—भैरव ने जवाब दिया।

"इस कमरे में कोई खिड़की नहीं है, इसीलिए तुमने मुझे अब यहाँ बन्द किया है। लेकिन तुम क्यों ऐसा समझते हो, मैं परदे की रेशम की रस्सी खोलकर उससे फाँसी खा सकती हूँ।"

भैरव ने खंगो को यह बात समझाई तो खंपो बोला—"यह एशिया की रीति है।"

इवा ने फिर पुकारा—"मैत्रेय !"

"कहो भी तो, क्या कहती हो माँ ?"

"पहले हम एक-दूसरे को देख तो लें तब तुम मुझसे माँ कहना।"

खंपोलामा ने यह सुनकर भैरव से कहा—"इससे पूछो, देख लेने पर यह तुम्हें पुत्र कहने को तैयार है क्या ?"

इवा ने इसका उत्तर दिया—"यह मेरी रुचि की बात है।"

खंपोलामा इस पर राजी नहीं हुआ। उसने भैरव से कहा—"नहीं, इसे मानना पड़ेगा। यह भगवान् द्वारा यहाँ इसी के लिए भेजी गई है। इसके भीतर कोई शैतान घुसा है। धीरे-धीरे भूख और प्यास की साधना से इसकी आत्म-शुद्धि हो जायगी और वह पापात्मा इसके शरीर से निकल जायगी। तब यह मैत्रेय के मातृपद के समान गौरवमय पद को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लेगी।"

इवा बोली—"मैत्रेय, तुम्हारा जन्म हो गया। तुम चलने-फिरने, हँसने-बोलने लगे—तुम्हें अब किसी सहारे की जरूरत नहीं रही, फिर क्यों माता को ढूंढ रहे हो अब ? तुम्हारी माता कहाँ गई ?"

"मेरी माता एक साधारण माता है, मैं उसका साधारण पुत्र था। मैं अब मैत्रेय हुआ हूँ। साधारण से असाधारण—वैसे ही असाधारण माता इसलिए चाहिए कि वह मेरा हाथ सँभाले रहे, मैं विपथ में न पड़ूं। इस भौतिक मार्ग से भावना के मार्ग में सिद्ध भी भटक जाते हैं।"

"कोई दूसरी माता क्यों नहीं ढूंढ लेते ?"

"तुम्हारे सिवा इस मठ में और दूसरी कोई स्त्री नहीं है।"

"माता के लिए क्यों बेचैन हो उठे हो ? माता के अभाव में पिता सही।"

लेकिन खंपोलामा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भैरव के द्वारा उसे अन्तिम चेतावनी दी—"अब जब तक तुम मैत्रेय को पुत्र का सम्बोधन न दोगी, तब तक न तुम्हारे लिए ये द्वार खोले जायेंगे, न तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर ही दिया जायगा।"

खंपोलामा भैरव का ध्यान इवा की ओर से हटा देने के लिए उसे मूर्तियों की तरफ ले गया। इवा का कमरा वहाँ से दूर पड़ता था। द्वार बन्द होने के सबब उसको आवाज उधर स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ने की बहुत सम्भावना थी।

खंपोलामा बोले—"मैत्रेय, अभी कुछ दिन तुम्हें प्रकृति के रहस्य

मुझे बताने पड़ेंगे। जब तुम्हारे भीतर सत्य जाग उठेगा तो फिर मैं तुम्हारे चरणों में बैठकर सीखूंगा।"

"बहुत अच्छा, तब तक मैं गुरुदेव कह सकता हूँ आपसे ?"

खंगोलामा हँस पड़ा।

"और सत्य के जाग जाने पर तो मुझे माता-पिता के सम्बन्ध खोजने की कोई आवश्यकता न रहेगी न ?"

खंगोलामा के मुख पर गम्भीर छाया फैल गई। वह बोला—"इसके बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।"

इवा अपने कमरे के द्वार पर अपनी हथेलियाँ बजाती हुई कह रही थी—"मैत्रेय ! मैत्रेय !" मद स्वरों में सुनाई देनेवाली उसकी पुकार को खंगोलामा अपनी आवाज में डुबा देने लगा।

खंगोलामा ने कहा—"मैत्रेय, कल्पना एक वास्तविकता है। अज्ञ लोग उसे कुछ भी मान नहीं देते।"

"वास्तविकता कैसी ?"

"मैत्रेय—यह एक कल्पना है, विश्वास के बल पर हम इसे वास्तविकता में बदल सकते हैं। संसार में जो कुछ भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है, सब एक कल्पना से निकलकर फिर उसी कल्पना में विलीन होता जा रहा है। इसी मठ का उदाहरण लो—यह एक दिन एक कल्पना था, आज इसका जो रूप है वह स्थायी नहीं है, किसी दिन यह फिर कल्पना में ही मिल जायगा।"

भैरव का ध्यान इवा के ही कमरे की ओर था। वह कभी प्रत्यक्ष में उसकी पुकार को सुन रहा था, कभी उसकी प्रतिध्वनि में।

खंगोलामा ने कहा—"मैत्रेय, तुम समझ रहे हो मेरी बात ?"

भैरव ने यों ही कह दिया—"हाँ गुरुदेव।"

"ध्यान क्या है—कल्पना का ही एक शुद्ध रूप। बिना धारणा का क्षेत्र तैयार किए ध्यान की सार्थकता नहीं है। मैत्रेय को अपने भीतर जागृत करने के लिए तुम्हें कुछ दिन एकाग्र होकर ध्यान करने की

आवश्यकता है।"

"कितने दिन ?"—भैरव ने पूछा।

'समय कोई बड़ी चीज नहीं है। धारणा प्राप्त कर लेना ही ध्यान की परिपूर्णता है।"

"धारणा कैसे मिलेगी ?"

"कला की सहायता से। ध्यान और धारणा एक दूसरे पर टिके हुए हैं जैसे स्वर में ताल और ताल में स्वर या रेखा में रंग और रंग में रेखा। ध्यान के जमते-जमते धारणा खुल पड़ेगी, धारणा के खुलते-खुलते ध्यान खिल पड़ेगा।"

"हाँ गुरुदेव," भैरव के कान इवा की ओर ही थे। उसका ध्यान वहीं था। उसने कहा—"गुरुदेव, वह फिर पुकार रही है—मैत्रेय ! मैत्रेय !"

"तुम उसकी मैत्रेय की पुकार में जब तक पुत्र-पुत्र की ध्वनि न सुन लोगे, द्वार नहीं खोले जायेंगे।"

"गुरुदेव ! क्या मेरी कल्पना से भी वह अपनी पुकार को बदल सकती है ? या उसके अपने निश्चय से ही वह बदल सकेगी ?"

"कल्पना केवल दर्शन की ही नहीं है, मैत्रेय ! वह श्रवण की भी है। तुम उसकी आवाज में पुत्र-पुत्र की पुकार जगा लो तो उसे कहना ही पड़ेगा ऐसा।"

"ऐसे ही हमें पाँचों इन्द्रियों के इष्ट प्राप्त हो सकेंगे ?"

"निःसन्देह !"

"तब हम अपने ही में परिपूर्ण हैं। हमें अपनी कामनाओं के लिए किसी के आग्रह की आवश्यकता नहीं है।"

"अवश्य !"

"फिर मनुष्य की बहिर्मुखता ही उसका बन्धन है। मैं अन्तर्मुख होकर अपनी समस्त कामनाओं को जीत लूंगा।"

"हाँ ! हाँ ! तुम्हारे भीतर यही मैत्रेय बोलने लगा है।"

"मैत्रेय की माता भी उसके भीतर ही है।" भैरव जोर-जोर से पुकारने लगा—"माता ! माता !"

"पुकारना बहिर्मुखता है मैत्रेय ! जब सब कुछ तुम्हारे भीतर ही है तो तुम बाहर किसे पुकार रहे हो ?"

"जब सब कुछ सबके भीतर ही है तो फिर मैत्रेय की क्या जरूरत है ?"

"इसी सत्य का बोध कराने के लिए कि सब कुछ सबके भीतर ही है। मैत्रेय, इसी प्रकाश तत्व को तुमने पहले सीखकर सबको सिखाना है। जितना आकाश बाहर है उतना ही तुम्हारे भीतर है, काल का जो महासिन्धु बाहर लहरा रहा है, वही तुम्हारे मन में भी रुद्ध है। आँख बन्द करो, मैत्रेय !"

मैत्रेय ने आँखें बन्द कर लीं।

"क्या दिखाई दे रहा है ?"—खंगोलामा ने पूछा।

"कुछ नहीं, गुरुदेव !"

"ऐसा मत कहो, मैत्रेय ! तुम स्वर्ग की विभूति हो, पृथ्वी पर के उज्ज्वलतम प्रकाश ! कहो, सब कुछ दिखाई दे रहा है।"

"सब कुछ कैसे गुरुदेव ! यहाँ तो केवल अन्धकार ही अन्धकार है !"—भैरव ने कहा।

"सब कुछ भीतर है मैत्रेय ! वाणी ही विश्वास की पूर्व रेखा है। वाणी को शुद्ध करो। कहो सब कुछ भीतर है। जो अन्धकार दिखाई दे रहा है, वह उस सबकी ही छाया है। केवल एक ही चिनगारी दरकार है, छाया और प्रकाश के बीच में भेद पड़ जायगा और रूप खिल उठेगा।"

"हाँ गुरुदेव !"

"बिना सोचे-समझे न कहो। आँख खोल दो।"

भैरव ने आँखें खोल दीं।

"यह क्या है ?" गुरुदेव ने पूछा।

"मैत्रेय की मूर्त्ति है।"

"यह भीगे कपड़े से ढकी गीली मिट्टी रखी है, इससे इस मूर्ति को बना सकते हो ?"

"मैंने कभी यह कला सीखी ही नहीं, इसका अभ्यास ही नहीं है।"

"कला के लिए अभ्यास नहीं चाहिए, उसके लिए चाहिए विश्वास। विश्वास किसके पास नहीं है जिसके श्वास है।"

"गुरुदेव !"—प्राणों में बड़ी कठिनाई दिखाकर भैरव बोला।

"भीतर और बाहर की सन्धि ही कला है—चाहे वह मूर्त्ति में खिल उठे, चाहे गीत में, चाहे अक्षर में ! देखो, मैं बनाता हूँ कितनी जल्दी !"—कहते-कहते खंपोलामा ने उस मिट्टी को साकार मैत्रेय में बदल दिया थोड़ी ही देर में।

भैरव चमत्कृत हो उठा—"धन्य गुरुदेव !"

"जिसके भीतर विचार है, उसके भीतर कला भी है। विचार और धारणा जब दोनों एक दूसरे में मिल जाते हैं तो मन में चित्र खिल उठता है। इस मैत्रेय को मन में देखो, वहाँ से फिर इसे इस मिट्टी में बना देना आसान हो जायगा।"

"धीरे-धीरे अभ्यास से।"

'नहीं, विश्वास से।"

"गुरुदेव, आपकी धारणा जागृत है, तो फिर आप स्वयं ही मैत्रेय क्यों नहीं बन जाते ?"

"मैत्रेय धारणाओं से बहुत ऊपर है।"

"आप सरलता से उस स्तर तक पहुँच सकेंगे।"

"नहीं, मैं सहारा देकर तुम्हें वहाँ तक पहुँचा सकता हूँ, स्वयं नहीं जा सकता।"

भैरव चुपचाप गुरुदेव का मुख ताकता रह गया।

गुरुदेव बोले—"मूर्त्ति बनाओ न। बाहर की इस मूर्त्ति के घनत्व से तुम्हारी कल्पना में अपने-आप गहराई पैदा हो जाएगी।"

भैरव मूर्त्ति बनाते-बनाते बोला—"गुरुदेव, माता कुछ और बात

कह रही है। शायद वह आपकी बात मान लेने को तैयार है।"

दोनों इवा के कमरे के बाहर जाकर खड़े हो गए। इवा बोली—"मैत्रेय ! मैत्रेय !"

"हाँ माँ ! कहो न।"

"मुझे भूख लगी है।"

भैरव ने खंपोलामा से कहा—"कहती है भूख लगी है।"

खंपोलामा बोला—"चुप रहो। कोई जवाब न दो।"

ऐसा ही किया गया। कुछ देर बाद इवा बोली—"तुम कैसे कठोर मैत्रेय हो। तम्हारे अवतार से क्या ऐसे लोगों को भूखा मरना पड़ेगा ?"

जब भैरव ने खंपो से यह कहा तो उसने फिर उससे मौन रहने का ही संकेत किया।

फिर कुछ देर बाद इवा बोली—"तुम कैसे पुत्र हो, तुम्हें माता पर कोई दया नहीं।"

भैरव ने चिल्लाकर खंपो से कहा—"गुरुदेव, हमारा मतलब हल हो गया !"

"क्या इसने तुम्हें पुत्र कहकर पुकारा है ?"

"सीधे पुत्र कहकर तो नहीं पुकारा पर परोक्ष में उद्देश्य यही है।"—भैरव ने गुरुदेव को समझाया।

गुरुदेव मान गए और बोले—"अच्छा मैं कुछ चाय, सत्तू और सूखे मेवे लाता हूँ।"

इवा बोली—"माता को मुक्त न करोगे ?"

"करूँगा।"

"प्रतिज्ञा करते हो ?"

"हाँ।"

"पुत्र ! पुत्र !"

भैरव ने गुरुदेव के आने पर उनसे कह दिया।

२६

विज्ञान-बाला

बड़ी देर तक गुरुदेव इस दुविधा में पड़े रह गए, क्या सचमुच में इवा मैत्रेय को पुत्र का संबोधन दे रही है। भैरव द्वार का साँकल खोलने को आगे बढ़ रहा था, खंपोलामा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"गुरुदेव, अब आप क्यों रोकते हैं ? माँ बेटे को पुकार रही है।"

"धीरज रखो, एक बार मैं सुन भी तो लूँ।"

"वह कई बार पुकार चुकीं, आप उनकी भाषा समझ भी तो नहीं सकते।"

"भाषा नहीं समझता यह ठीक है, पर ध्वनि को तो समझता हूँ। तुम फिर बातें करो उससे।"

भैरव ने इवा से कहा—"माँ !"

"और क्या कहते हो अब तुम ? क्या मैं तुमसे पुत्र नहीं कह चुकी ? फिर क्यों तुम्हें मेरी ममता नहीं होती ?"

भैरव ने खंपोलामा से पूछा—"नहीं सुना आपने ?'

"हाँ सुना, पुत्र कह रही है न यह तुमसे ?"

"हाँ गुरुदेव ! द्वार खोल दूँ ?"

खंपोलामा ने कुछ देर विचार करने पर कहा—"खोल दो।"

भैरव द्वार खोलने लगा। गुरुदेव बोले—"मुझसे पूछकर ही कुछ कहना होगा तुम्हें।"

"हाँ गुरुदेव।"—भैरव ने द्वार खोल दिए।

इवा ने भैरव को देखा। बड़ी देर तक वह उसे देखती ही रही। फिर कहने लगी—"मुझसे मेरी भाषा में बोलनेवाले क्या तुम्हीं हो ?"

भैरव ने गुरुदेव की अनुमति लेकर उत्तर दिया—"हाँ।"

इसके बाद इवा को भोजन कराया गया। भोजन के बाद वह बोली—"मैत्रेय, नारी की प्रतिष्ठा रखने के लिए मैं आकाश में उड़ी थी।"

भैरव ने गुरुदेव को समझाकर उत्तर दिया—"तुम्हारे द्वारा मैत्रेय की माता बन जाने से नारी और भी गौरव को प्राप्त हो जायगी।"

"लेकिन मुझे इस प्रकार अवतारवाद में विश्वास नहीं।"

भैरव ने इवा का यह आशय जब गुरुदेव पर प्रकट किया, तो वह बहुत नाराज हो गए। जोर-जोर से कहने लगे—"नहीं, यह असम्भव बात है। यह नास्तिक होती तो यहाँ आ ही नहीं सकती थी। इसने बड़ी देर में भोजन किया है, इसी से इसकी भावना में उत्तेजना फैल गई है। फिर पूछो इससे।"

भैरव ने इवा से कहा—"निश्चय पर से फिर जाना भले आदमी की पहचान नहीं है।"

इवा ने कुछ याद कर उत्तर दिया—"मैं अपने निश्चय पर जमी हूँ, मैत्रेय, लेकिन तुम्हारा क्या मेरे प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है?"

"कैसा?"

"मैं सभ्यता और विज्ञान-भूमि की बाला हूँ। कैसी भयानक परिस्थितियों के बीच में घिर गई हूँ यहाँ? जल की मछली बालू में तड़पती कैसे देख सकते हो तुम? तुम मेरी भाषा समझते हो, इन बर्बरों की बात नहीं कहती मैं।"

"इवा, तुम क्या कह रही हो यह? वह तो कुशल हुई ये तुम्हारी भाषा नहीं समझते हैं। बड़ा कठिन शब्द तुमने इनके लिए प्रयोग कर दिया। तुम्हें अपने विज्ञान का गर्व हो सकता है, लेकिन तुम क्यों इनके दर्शन की हँसी उड़ाती हो?"

"कई महीनों से इनका दर्शन देख तो रही हूँ।"

"मैं कहता हूँ इवा, तुमने अभी तक कुछ नहीं देखा है।"

"तुम दिखा सकते हो कुछ ? तुमने देखा है कुछ ?"

"देखा तो कुछ नहीं है, लेकिन मुझे ऐसा भासता है, कुछ है अवश्य।"

"मैंने कई महीनों के अपने इस प्रवास में कुछ नहीं देखा। जो देखा वह एक बनावट, नाटक और पाखंड से अधिक कुछ नहीं।"

खंपोलामा बीच में बोल उठा—"मैत्रेय, यह ठिकाने पर आई या नहीं ?"

"धीरे-धीरे आ जाएगी, गुरुदेव ! मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"क्या प्रयत्न कर रहे हो ?"

"दर्शन तर्क के परे की चीज है।"

"हाँ, तुमने यह ठीक ही किया है।"

इवा चुपचाप एक विचित्र भाषा में उन दोनों के कथोपकथन सुन रही थी। भैरव ने कहा—"यह मेरी माता विज्ञान के वायुमण्डल में पली है। आसानी से यह दर्शन के घेरे के भीतर नहीं घुस सकती। गुरुदेव, आप इसका यह मिथ्या घमण्ड तोड़ नहीं सकते ?"

"कैसा घमण्ड ?"

"इसके विज्ञान और इसकी सभ्यता का।"

"मैं कैसे तोड़ सकता हूँ, अगर मैं इसकी भाषा जानता तब तो कोई बात भी थी।"

"इसे कोई योग का चमत्कार दिखाकर आप सहज ही यह कर सकते हैं। भाषा कोई महत्त्व नहीं रखती।"

"लेकिन योग जानता कौन है ?"

"आप, सब कहते हैं।"

"झूठ बोलते हैं, सिर्फ मेरी महिमा बढ़ा देने की बात। तुम कहते थे तुम प्रयत्न कर रहे हो।"

"भाषा और तर्क से कुछ न होगा। कला दर्शन तक पहुँचने की एक सीढ़ी जरूर है, गुरुदेव। उसका उपयोग करूँ ?"

"अवश्य।"—कहकर खंपोलामा वहाँ से चला गया।

भैरव ने इवा से कहा—"इवा, आओ मेरे साथ चलो।"

"कहाँ ?"—इवा ने पूछा।

"चलो, तुम्हें गुरुदेव की कला दिखाता हूँ। तुमने उसे देखा है या नहीं ?"

"ध्यानपूर्वक तो नहीं देखा।"

भैरव इवा को मूर्त्तिकला और चित्रों की ओर ले गया। इवा उधर कभी नहीं गई थी। वह अपनी ही चिन्ता में डूबी थी।

इवा उन मूर्त्तियों की ओर आकृष्ट हो गई। उसने पूछा—"क्या यह गुरुदेव की कला है ?"

"हाँ।"

"कौन गुरुदेव ?"

"जिन्हें अभी तुमने बर्बर कहा था।"

"कोई वास्तविकता नहीं है यद्यपि इस कला में, लेकिन अनुपातों का साम्य, रेखाओं की कमनीयता और संगठन का संतुलन विचार की प्रौढ़ साक्षी दे रहा है।"

"जिसके विचार की प्रौढ़ता की तुम ऐसी प्रशंसा कर रही हो, फिर उसके मैत्रेयवाद को तुम क्यों कोरा पाखण्ड समझती हो ?"

"मैत्रेय, भगवान् को मनुष्य नहीं बना सकता।"

"इवा, तुम अपने इस वाक्य से तमाम धर्मों की रीढ़ पर कुल्हाड़ी चला रही हो। कर्म के सिद्धान्त की जड़ खोद रही हो ?"

"क्या है वह कर्म का सिद्धान्त ?"

"यही कि अच्छे विचार अच्छे कर्म को जन्म देते हैं और अच्छे कर्म से मनुष्य के जीवन का संस्कार होता जाता है। मनुष्य के संस्कार की उत्तरोत्तर वृद्धि पर क्यों देवत्व की प्रतिष्ठा न होगी ?"

इवा ने भैरव के तर्क पर कोई ध्यान न देकर कहा—"एक मूर्त्ति कितने दिनों में बना देते हैं गुरुदेव ?"

"मुझे ठीक मालूम नहीं है।"

"क्यों ?"

"मैं यहाँ नया ही आया हूँ। लेकिन मैंने उनको मूर्त्ति बनाते हुए थोड़ी देर के लिए देखा है। जो कुछ देखा, उससे पता चलता है, उनकी कल्पना में बड़ी स्पष्टता और उनके हाथ में बिजली का वेग है।"

"मैंने सुना तो है सच्चा कलाकार देश और कला का अतिक्रमण कर जाता है।"

"अर्थात् ?"

"जो विस्तार हमारी पहुँच के बाहर है, वहाँ उसकी सहज गति है और जो काल हमारे लिए भूत और भविष्य है, वह उसके लिए न बीत चुका है, न आनेवाला है।"

"क्या तुम इस रहस्य में विश्वास भी करती हो ?"

"कलाकार की अतिमानवता अवश्य ही मुझे लुभाती है। मैं उसकी असाधारण शक्तियों पर विश्वास करती हूँ।"

"फिर तुम क्यों विज्ञान को कला से बड़ा समझती हो ?"

"उसका उपयोग जो है, रात-दिन एक एक कदम पर। कला केवल धनवानों के विलास के और किस काम की है ?"

"विज्ञान स्थूलता है, उसका उपयोग भी कोई उपयोग है ? उसने निश्चय ही धरती को संकुचित कर एक ही विशाल नगर में बसा दिया है। लेकिन क्या हो गया ? ग्रहों के और हमारे बीच में दूरी और रहस्य ज्यों-का-त्यों वैसे ही कायम है।"

"मैत्रेय, धर्म और विज्ञान के झगड़े को लेकर हमें क्या करना है ? तुम्हारे गुरुदेव कोई चमत्कार दिखा दें तो हमारा विवाद सहज ही मिट जाय।"

"उनकी यह इतनी कला जो तुम देख रही हो, वह किस चमत्कार से कम है ?"

"होगी मैत्रेय !" एक दीर्घ श्वास लेकर इवा बोली—'मुझे मुक्त

नहीं कर सकते ?"

"लेकिन कैसे ? सभ्य जगत और उसके यातायात के साधनों से हम कितनी दूर हैं, इसकी कोई कल्पना है तुम्हें ?"

"मैत्रेय, तुम अखबार नहीं पढ़ते ?"

"कहाँ से ?"

"तुमने मेरे बारे में नहीं पढ़ा कभी ?"

"नहीं।"

"मेरे इष्ट-मित्रों ने मर गई समझकर मुझे भुला दिया होगा। किसको यह पता है कि मैं अभी तक जीवित ही हूँ। मनुष्य के भीतर अद्वितीय बन जाने की लालसा बड़ी बुरी चीज है। मैं उसी की शिकार हो गई। यदि अब किसी तरह मैं अपने लोगों के बीच में पहुँच जाऊँ तो ऐसी आकांक्षाओं के फेर में कभी न पड़ूँगी।"

"इन असंभव स्वप्नों को भूलकर यहाँ जो लोग हैं उन्हीं को तुम अपना बना लो तो क्या हानि है ?"

"जिन लोगों के बीच में मेरी भाषा का सम्बंध नहीं हो सकता उनको कैसे अपना लूँ ?"

"मैं तुम्हें इनकी भाषा सिखा दूँगा।"

"अच्छी बात है, सिखाओ।"

भैरव ने पहला शब्द पुत्र कहना सिखाया। इवा ने उसका शुद्ध उच्चारण सीखकर पुकारा—"पुत्र ! पुत्र !"

भैरव ने इसके बाद उसे माता का शब्द सिखाया। दोनों की पहली बातचीत चली। इवा बोली—"पुत्र मैत्रेय !"

भैरव ने जवाब दिया—"माता ! माता !"

खंपोलामा उन दोनों की बातचीत सुनकर वहाँ चला आया। उसके मन का संशय निकल गया। वह प्रसन्न होकर कहने लगा—"मैत्रेय ! क्या चमत्कार कर दिया तुमने ? क्षण ही भर में हमारी भाषा सिखा दी इसे।"

"हाँ गुरुदेव, अभी केवल एक ही शब्द सिखाया है पुत्र का ! लेकिन यह पुत्र—यह मैत्रेय, क्या सारी विश्व-शांति का जनक न हो जायगा ?"

"जल्दी सिखा दो इसे हमारी भाषा कि हमारे और इसके बीच में फिर कोई ओट न रहे।"

इवा ने फिर जोर-जोर से गुरुदेव की भाषा में पुकारा—"पुत्र मैत्रेय !"

खंपोलामा ने हर्ष से ताली बजाकर कहा—"मैत्रेय, अब तुम्हारा जन्म हो गया, अब मेरे सारे संशय चले गए और मैं निश्चिंत होकर अपनी पूजा में बैठता हूँ। तुम दोनों इस मठ के मालिक हो गए। जहाँ चाहो वहाँ घूमो।" खंपोलामा यह कहकर न-जाने कहाँ चला गया।

इवा ने पूछा—"क्या कह गए गुरुदेव ?"

भैरव ने खंपोलामा का आशय कहा तो इवा को कुछ याद आई और वह कहने लगी—"मैत्रेय, तुमने मेरा हवाई जहाज देखा है ?"

"हाँ, लेकिन वह तो एक शरबिद्ध पक्षी की भाँति वहाँ दम तोड़ कर न-जाने कब से पड़ा है।"

"चलो, मुझे दिखा दो मैत्रेय ! मुझे उसकी बनावट का बड़ा गर्व था। मैंने उसके निर्माण में अच्छे-से-अच्छा सामान खर्च किया था। मेरे मन में उसे देखने का बड़ा कौतूहल है। मैं जानना चाहती हूँ, उसकी वह कौन-सी कमजोरी है जिसने मुझे इस अनचाहे कारागार का बंदी बना दिया।"

भैरव बोला—"चलो।"

दोनों दिल-दुनिया में आए। भैरव के साथ सर्वथा विदेशी वस्त्रों में एक गोरी-उजली युवती को देखकर रिबूची और कलजन दोनों दंग रह गए। अब तक उनका यह पक्का विश्वास था, वह मठ सर्वथा नारी की काली परछाईं से विमुक्त था। वे खंपोलामा को बाल ब्रह्मचारी समझते थे। उनके सिर-सरग से एक सुंदरी नारी को आते हुए देखकर उनके होश गुम हो गए।

इवा उस दिल-दुनिया को देखकर कहने लगी—"आते समय यह कुछ देखे की याद नही है मुझे ?"

"कदाचित् गुरुदेव तुम्हें चेतनाहीन दशा में ले गए हों।"

"क्या है यहाँ ?"—इवा दिल-दुनिया का निरीक्षण करने लगी।

"मैं भी तो सर्वथा नया ही हूँ।"

दिल-दुनिया के दूसरे कोने पर खड़े हुए रिंबूची ने कलजन से पूछा—"कलजन, शायद हमे यहाँ आने में धोखा हो गया !"

"एक नारी की छाया इस मठ में देखकर तुम क्यों घबरा गए ? खपोलामा वज्रयानी तो है ही, यह बड़ी प्रसिद्ध बात है। वज्रयान के भीतर नारी की प्रतिष्ठा है !"

"लेकिन तुमने मुझे सुरा से घृणा करना सिखाया और अब तुम मुझे नारी का महत्व सिखा रहे हो ? कलजन, तुम्हें नारी के विरह से और मुझे उसके वियोग से वैराग्य मिला है। यदि बूढ़े गुरु ने विलास के लिये नारी को इस मठ में जगह दी है तो मैं उसके सामने ही उसे भला-बुरा कह दूंगा।"

कलजन ने रिंबूची को समझाते हुए कहा—"भाई, तुम बड़ी जल्दी जोश में आ जाते हो। मैं तो समझता हूँ यह इस आदमी की ही कोई है।"

"अच्छी कही ! इसकी होती तो इसके साथ जाती हुई भी तो दिखाई देती।"

"किसी गुप्त मार्ग से गई होगी।"

"झूठी बात ! इन दोनों का रूप-रंग, भाषा-वेश अलग-अलग है।"

"दोनों आपस में घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं। चलो, हम भी सुनें।"

कलजन और रिंबूची जब उनके निकट गए तो उनको उन्होंने एक दूसरी ही भाषा में बातचीत करते सुना। दोनों घबराए।

भैरव ने उनकी विवशता देखकर उनसे उनकी भाषा में पूछा—"क्या है ?"

दोनों का साहस बढ़ गया। कलजन बोला—"आप कौन हैं ?"

"गुरुदेव के शिष्य।"

कलजन ने इवा की ओर इशारा कर पूछा—"यह आपकी कौन हैं ?"

भैरव ने उत्तर दिया—"मेरी माता।"

कलजन और रिबूची एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। कलजन ने भैरव से कहा—"आप हमें मूर्ख बना रहे हैं! आपकी अवस्था में तो दो ही चार वर्ष का अंतर जान पड़ता है।"

"यह रहस्य की बात है भाई, इसे हर एक नहीं समझता। गुरुदेव से पूछ लेना।"

"आप कौन हैं ?"—कलजन ने पूछा।

"मैं मैत्रेय हूँ।"

दोनों चौंक पड़े—"कौन मैत्रेय ?"

"वही मैत्रेय, जो आनेवाला बुद्ध है।"—भैरव ने जवाब दिया।

"वही मैत्रेय जिसकी प्रतिमा यहाँ है ?"—कलजन ने अपना बाकी शक दूर करने को पूछा।

"हाँ भाई।" बड़ी उपेक्षा के साथ भैरव ने जवाब देकर इवा का अनुसरण किया।

"क्यों, प्रकाश क्यों कम है यहाँ ?"

"जान-बूझकर ही वह कम रखा गया होगा ?"

"ऐसा क्यों ?"

"संभव है ध्यान में उससे कुछ सहायता मिलती होगी ?"

"लेकिन मैंने गुरुदेव को कभी ध्यान करते नहीं देखा ?"

"उनके चेलों के लिये होगी यह जगह। गुरुदेव फिर और क्या करते हैं ?"

"मैंने तो उन्हें कभी कुछ करते नहीं देखा। अपने कमरे में ईश्वर जाने क्या करते हैं। मेरे पास जब आते, तब उस अबूझ भाषा में उन्होंने जो कुछ कहा उसे मैं कभी कुछ न समझूंगी।"

कलजन रिंबूची से कहने लगा—"मैत्रेय को दंडवत् प्रणाम करें भाई, हमारे भाग्य खुल गए जो आज घर बैठे ही यह सुयोग्य हाथ लगा।"

रिंबूची उसका हाथ खींचकर बोला—"यह झूठ बोल रहा है, न जाने कौन है ? कैसी भाषा बोल रहा है ? कलजन, तुम बड़े सीधे-सादे आदमी हो। तुम्हारी सारी उम्र बीतने को आई, लेकिन अभी तक तुम्हारी अकल से भेंट नहीं हुई है।"

"रिंबूची, मुझे मैत्रेय की पहचान मालूम है और तुम ज्योतिषी होकर भी कोई बुद्धि नहीं रखते। इनकी चाल कह रही है यह मैत्रेय हैं। तुम्हें विश्वास नहीं है तो तुम इनकी हथेली में स्वास्तिक देख लो; और उस माता को देखो, धन्य है उसे !"

"माता न-जाने किस जाति की है और यह पुरुष, जिसे तुम मैत्रेय कह रहे हो, यह भी मुझे कुछ दूसरे ही मुल्क का जान पड़ता है। भले ही इन्होंने हमारे कपड़े पहन लिए हैं और यह हमारी टूटी-फूटी भाषा बोल रहा है।"

"रिंबूची, मैत्रेय सारे विश्व के लिये है, उसे जो तुम अपनी ही जाति के भीतर कैद कर लेना चाहते हो, यह तुम्हारा झूठा अभिमान है। भगवान् की नजरों में सब धर्म समान हैं और सभी जातियाँ एक-सी।"

"कुछ भी हो, मुझे इन माँ-बेटों के सम्बंध में भारी शक है। कलजन, यह एक बड़ा भारी जाल फैलाया जा रहा है। दस-बीस आदमी ठगे जा सकते हैं, सारी दुनिया अंधेरे में नहीं रख दी जा सकती।"

"तुम कुछ कहो मैं तो उनके प्रति आदर दिखाऊँगा ही।"—कलजन भैरव की ओर जाने लगा।

रिंबूची ने फिर उसका हाथ पकड़कर खींच लिया—"तुम पागल हो गए हो क्या ? मैत्रेय कभी अपना विज्ञापन नहीं देगा। नहीं, मैं तुम्हें इस तरह एक साधारण मनुष्य की पूजा न करने दूँगा।"

उसी समय खंपोलामा आ पहुँचा। उसके आते ही कलजन को

छोड़ दिया रिंबूची ने और दोनों बड़े अदब-कायदे से खड़े हो गए।

गुरुदेव ने पूछा—"मैत्रेय कहाँ है ?"

रिंबूची के सिर पर मानो बिना बादल के बिजली गिरी। वह भैरव की ओर दौड़ पड़ा और उन दोनों को बार-बार प्रणाम करने लगा।

कलजन से खंगोजामा ने कहा—"तुम इसे यहाँ ले आए ?"

"हाँ गुरुदेव. इसको उस अंधकार से घृणा हो गई है।"

"तुमने मैत्रेय को नहीं पहचाना अभी तक ?"

"पहचान लिया गुरुदेव !"—कहता हुआ कलजन भी मैत्रेय की तरफ दौड़ा और उन दोनों को प्रणाम करने लगा।

भैरव और इवा दोनों उनकी भक्ति-भावना को देखकर हँसने लगे। भैरव ने उनसे पूछा—"कौन हो तुम ?"

भैरव ने पीछे की ओर देखा—गुरुदेव चले गए थे—उसने जवाब दिया—"हम दोनों चौकीदार हैं इस मठ के।"

"नहीं, चौकीदार कोई नहीं है और न कोई मालिक ही। सारी सृष्टि भगवान का एक वरदान है और हम सब उसके बराबर के भागीदार—न कोई बड़ा है, न कोई छोटा।"—भैरव ने कहा।

कलजन और रिंबूची दोनों भैरव के इन वाक्यों से बहुत प्रभावित हो गए।

रिंबूची बोल उठा—"जय हो मैत्रेय की ! आज हजारों वर्ष बाद फिर उसके आगमन से धरती प्रकाश से भर उठी !"

"सबको समानता का वर देनेवाले देवता का धरती पर शुभागमन मंगलमय हो !"—कलजन बोला।

वे दोनों इवा के चरणों पर भी सिर रखने लगे। इवा दूर हटती हुई बोली—"मैत्रेय, इन दोनों का माथा क्या खराब तो नहीं है ?"

"नहीं, यह किसी के प्रति श्रद्धा और भक्ति का प्रदर्शन है।"

"सिर को बिना मिट्टी में साने ऐसा नहीं हो सकता ?" इवा ने कहा—"चलो, बाहर चलें।"

भैरव ने कलजन से पूछा—"बाहर का मार्ग किधर से है ?"

"नहीं, आपके कपड़े मैले हो जायेंगे, आपके जाने योग्य नहीं है वहाँ।"—कलजन ने कहा।

"हमारा काम है वहाँ।"

"हमें आज्ञा दीजिए, हम आपके सेवक हैं। आप उधर के रास्ते से जाइए।"

उनकी बातचीत सुनकर सोता हुआ उठकर सरदार वहाँ पर आ गया था, वह बोला—"रास्ता उधर से नहीं है। इधर ही से है।"

"हाँ, मुझे भी ऐसी ही याद आती है।"—भैरव ने कहा।

सरदार बोला—"मेरे पीछे-पीछे चले आइए।"

भैरव और इवा ने उसका अनुसरण किया। सरदार उन्हें गुफा की राह से बाहर निकाल ले गया।

२७
हवाई जहाज

दूर से ही हवाई जहाज को देखकर इवा उस पर ऐसी टूट पड़ी जैसे कई दिन का भूखा पशु अपने शिकार पर जा कूदता है। एक ही बिजली की चमक में वह सारे जहाज की परिक्रमा से उसका निरीक्षण कर भैरव के पास आकर बोली—"यही मेरे जीवन की महत्त्वाकांक्षाओं का मूर्त्त रूप है मैत्रेय ! ओह ! इसने मुझे कैसी भयानक मंजिल पर लाकर तोड़ दिया !"

"सब कुछ नियति के द्वारा पहले ही नियत हो चुका है।"

"ऐसे भयानक सपने कभी-कभी मैं देखती जरूर थी। ऐसा ही उजाड़ निर्जन ! ऐसी ही शून्य-स्तब्धता ! मे यह नहीं जानती थी कि एक दिन ऐसे ही जगत में पहुँचकर मैं सपने की सार्थकता को प्राप्त कर लूंगी।"

'नींद में हम जिस जगत को देखते हैं, इस जागृति के जगत में वह धुंधला और आवश्वसनीय जान पड़ता है, लेकिन क्या एक जगत और नहीं है जिसकी कल्पना में यह सारा संसार असार और क्षणभंगुर जान पड़ता है।"

"लेकिन मैत्रेय, यह मेरा पक्षी, बाहर से देखने में कहीं पर भी इसने कोई गम्भीर चोट नहीं खाई है। मशीन की किसी दुर्बलता से नहीं यह मेरी असावधानी से यहाँ पर गिरा।" एकाएक कुछ उत्साह के साथ वह कहने लगी—"मेरे मन में एक नई आशा पैदा हो गई है, शायद वह मेरे यहाँ गिर जाने के समान ही अचरज में डाल देनेवाली न हो जाय।"

"अर्थात् ?"—भैरव ने पूछा।

"ठहर जाओ। मैं जहाज के हर कल-पर्जे को ठोक-बजाकर देख

लेती हूँ।"

"क्यों ? क्यों ?" भैरव ने कुछ विह्वलता के साथ पूछा—"तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"मैत्रेय, तुम्हारे साथ माता का रिश्ता जोड़ा है। माता किसी की हमेशा नहीं रहती और अगर तुम्हें यह बात स्वीकार नहीं है तो तुम मेरे साथ चल सकते हो। सभ्य जगत में जाने पर इस जगत की एक साक्षी के रूप में तुम्हें ले जाने में मुझे जरूर बड़ा आनन्द होगा। हवाई उड़ान में यद्यपि मैं कोई नया रेकार्ड स्थापित नहीं कर सकी हूँ, लेकिन मेरे ये तीन महीने का अद्‌भुत प्रवास तमाम दुनिया के अखबारों में बड़े-बड़े शीर्षकों में मेरा नाम चमका देगा। मैं हजारों पत्रकारों और भेंट करने वालों के बीच में घिर जाऊँगी। मेरे साथ यह सुयोग तुम्हें भी प्राप्त होगा। मैत्रेय, संसार भर के अखबारों में जरा सोचो तो सही, तुम्हारी फोटो और जीवन-चरित्र !"

"इवा ! मैं मैत्रेय हूँ—वैसे ही सारे विश्व में प्रसिद्ध हो जाऊँगा।"

"इस कोने से—इस अंधकार से जहाँ एक से अनेक रूपों में बहु-गुणित कर देनेवाला कैमरा और प्रेस का कोई भी साधन नहीं है, तुम कैसे प्रसिद्धि पा सकोगे ?"

"लेकिन इस प्रसिद्धि से होगा क्या ?"

"प्रसिद्धि ? प्रसिद्धि की कामना, यही तो मनुष्य के भीतर का परम उज्ज्वल प्रकाश है। सम्पत्ति का ऐश्वर्य क्षणभंगुर है लेकिन इतिहास के पृष्ठों में नाम का अंकित हो जाना, मैं समझती हूँ मनुष्य का यही चरम कर्त्तव्य है। इसी के लिए वैज्ञानिक दिन-रात परिश्रम करता है, विजेता की यही साधना है और कलाकार इसी के लिए जड़ में चेतना की प्रतिष्ठा करता है। और तुम कहते हो इस प्रसिद्धि से होगा क्या ?"

"मैं उपयोगिता को मानता हूँ।"

"उपयोगिता भी कैसे नहीं है ? एक अखंड उड़ान में सारी धरती को लपेट लेना—विश्व को एक कर लेनेवालों की प्रेरणा होगी।"

"लेकिन जो यह पक्षी घायल होकर पड़ा है इतने महीनों से मैं कहता हूँ क्या इसमें फिर से उड़ जाने के लिए कोई दम भी बाकी है या नहीं ? बिना इसकी परीक्षा किए ही हमारा वादविवाद में भूल जाना कोई अकल की बात नहीं है।"—भैरव ने कहा।

इवा हँस पड़ी—"तो क्या तुम मुझे कच्ची खिलाड़ी समझते हो ? मैं पहले मैकेनिक हूँ इसके बाद उड़ाका। बिना हवाई जहाज के एक एक पुरजे का ज्ञान हुए कोई क्या उसमें अकेले ही उड जाने का साहस कर सकता है ! मशीन ही तो ठहरी, अगर बीच मार्ग में कहीं पर खराब हो गई तो वहाँ पर कौन अपना है ? लाइसेंस यों ही नहीं मिल जाता।"

भैरव हँसकर बोला—"तुम ऐसी ही मैकेनिक थीं तो क्यों तुम्हारा जहाज ऐसी भयानक स्थिति में गिर पड़ा ?"

"हँसने की बात नहीं है, मैत्रेय, जहाज जरूर गिरा है, लेकिन किसी अज्ञ के हाथ में होता तो जहाज का कोई भाग साबुत न बचता और उसकी हड्डियों का भी कहीं पता न चलता। इस जहाज को देखो, यह क्या गिरा हुआ-सा प्रतीत होता है ? नहीं, ऐसा जान पड़ता है मानो किसी ने फूल की तरह उठाकर रख दिया है इस पहाड़ पर। और मैं जीती जागती तुम्हारे सामने खड़ी हूँ।"

फिर हँसते हुए कहने लगा भैरव—"अच्छी बात है, तो देख लो, इसके गिरने का क्या कारण था और यह उड़ सकेगा भी या नहीं।"

इवा जहाज का निरीक्षण करने लगी। सरदार पास ही खड़ा था। उसने भैरव से पूछा—"यह हवाई जहाज क्या इन्हीं का है ?"

"हाँ।"

'कहाँ को जा रही थीं यह ?"

"शायद संसार की परिक्रमा करने को।

"किस मतलब से ?"

"केवल परिक्रमा करने ही के मतलब से।"

"यहाँ क्यों उतर पड़ीं ?"

"उतरी नहीं, जहाज खराब हो गया। यहाँ गिर पड़ा।"

"गिरा तो नहीं मालूम देता। जान पड़ता है गुरुदेव ने यहाँ इसे खींच लिया।"

"भगवान् जानें।"

"यह क्या कह रही हैं तुमसे ?"

"देखने गई हैं, कहीं टूटा-फूटा तो नहीं है।"

"अगर ठीक है तो क्या यह इसे फिर उड़ा ले जाना चाहती हैं ?"

"मैं तो नहीं समझता यह ठीक है। इतने महीने से पड़ा-पड़ा खराब न हो गया होगा ?"

"मान लो खराब नहीं हुआ हो तो ?"

भैरव ने कुछ सोच विचारकर जवाब दिया—"हाँ, यहाँ अकेली पड़ गई हैं। कोई भी तो अपनी भावना का समझनेवाला नहीं।"

"तो इनके उड़ जाने से पहले तुम्हें गुरुदेव को यह बात बता देनी चाहिए।"

"अभी क्या जल्दी है। जहाज इतनी जल्दी नहीं उड़ सकता। इतने दिन से बेकार पड़ी चीज क्या इतनी वश्य है कि बटन दबाया और उड़ गई। विज्ञान समय और साधन सभी कुछ चाहता है, जादू नहीं है जो मन के इशारे समझ जाय।"

"यह तो ठीक है, लेकिन गुरुदेव को बता देना ही चाहिए।"

"गुरुदेव काल की दीवारों को छेदकर सब कछ देख रहे हैं, सरदार। क्या कुछ नहीं हो सकता। जो कुछ होनेवाला है, सब पहले ही लिखा जा चूका है।"

सरदार निश्चिन्त होकर कहने लगा—"हाँ, यह तो ठीक है।"

"इसके सिवा सरदार, यह भी तो एक सत्य है मैत्रेय को जन्म देकर इसकी माता की मृत्यु हो जाती है।"

सरदार हँसने लगा। इसी समय इवा ने पुकारा—"मैत्रेय ! यहाँ आओ।"

इवा हवाई जहाज के भीतरी हिस्से में देखभाल कर रही थी। भैरव वहीं चला गया। इवा बोली—"भगवान् का धन्यवाद है, भीतर की तमाम मशीनरी ठीक है, कहीं पर एक पेच में भी कोई खराबी नहीं पहुँची है।"

"फिर जहाज क्यों गिर पड़ा तुम्हारा ?"—भैरव ने पूछा।

"मैं नहीं जानती। मैत्रेय, मैं आज तक अपनी इच्छा और अपने कर्म पर ही सारा श्रेय रखती थी, इस घटना ने मुझे भाग्यवादिनी बना दिया। मैं भाग्य को मानने लगी हूँ।"

"तब तुम मैत्रेय में भी विश्वास रखो।"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं रखती ? उसी के विश्वास से मैं मुक्त होने जा रही हूँ।" इवा ने कहा—"लेकिन एक बात पर अटक गई हूँ। अगर वह मेरी मुक्ति की राह में बाधा बनी तो यह मेरे लिए घोर परिताप का विषय हो जायगा।"

"वह क्या चीज है ?"

"पेट्रोल—मैत्रेय, वह सब समाप्त हो गया। कदाचित् उसकी कमी के कारण ही मेरा जहाज यहाँ गिर पड़ा।"

भैरव ने बड़ी निराशा दिखाकर कहा—"पेट्रोल का मिलना तो असंभव ही है, यहाँ तो जौ की शराब के जितने पीपे कहो मिल जायेंगे, पेट्रोल एक दुर्लभता है।"

"कहीं नहीं ?"

"कहीं नहीं।"

"मैत्रेय, हम कहाँ हैं ?"

"तिब्बत में, नई सभ्यता से सर्वथा दूर।"

"यहाँ बिजली-मोटर कहीं नहीं ?"

"नहीं।"

"राजधानी ल्हासा में भी नहीं ?"

"ल्हासा में शायद एक मोटर है दलाई लामा को भेंट में दी गई

हुई। लेकिन मैंने उसे कभी सड़कों पर चलते हुए नहीं देखा।"

कुछ आशान्वित होती हुई इवा ने कहा—"बिजली भी नहीं है ?"

"बिजली तो है ल्हासा में।"

"मैत्रेय, मेरा मन गवाही दे रहा है, ल्हासा में पेट्रोल मिल जायगा अवश्य।"

"लेकिन कहीं दूकानों में बिकता हुआ नहीं।"

"फिर क्या होगा ?" इवा बड़ी चिंता के साथ बोली—"कहीं तो मिलेगा न ?"

"सरकारी गोदामों में होगा।"

"तुम मैत्रेय हो, आनेवाले बुद्ध। तुम्हारे लिये सरकारी गोदामों को खुलते हुए क्या देर लगेगी ?"

"अभी बनने में हूँ, इस मठ के बाहर कहीं कोई प्रभाव नहीं।"

"गुरुदेव से कहो, उनका प्रभाव तो है।"

"वह बिना प्रभाव के भी अपनी अंतर्शक्ति के द्वारा कुछ कर सकेंगे।"

इवा कुछ औजार निकालकर बाहर को ले चली। भैरव ने पूछा—'क्या मरम्मत करोगी ?"

"हाँ।"

दोनों हवाई जहाज से बाहर निकल आए। इवा बोली—"यह मशीन का युग है मैत्रेय, बिना मशीनरी के संज्ञान के तुम विश्व में शांति न फैला सकोगे, क्योंकि यह अशांति मशीन-जात ही है।"

"अच्छी बात है, बताओ माँ, जड़ता ऐसी चैतन्य क्योंकर हो गई ?"

"चुप रहो मैत्रेय, तुम्हारा यह संबोधन मुझे असह्य है। यह मेरी आकांक्षाओं का अपमान करता है।"

"फिर क्या कहूँ तुमसे ?"

"और चाहे कुछ भी कह सकते हो। कुछ नहीं कह सकते हो तो सिर्फ इवा कह दो।"

"इवा !"—पराभूत होकर भैरव ने कहा।

"हाँ मैत्रेय।"

"और यह मैत्रेय का संबोधन भी मेरे लिये उतना ही दुरूह है !"

"क्यों, तुम विज्ञान के मोह में पड़ गए ?"

भैरव सोच-विचार में उलझ रहा था। इवा फिर बोली—"चलो फिर, मेरे साथ चलो, अगर तुम इस मैत्रेय की भूमिका से ऊब उठे हो तो मैं तुम्हें सभ्य संसार में ले चलूंगी।"

"नहीं इवा, विज्ञान से ऊपर कुछ अवश्य है।"

"क्या है वह ? क्या वह मैत्रेय है ?"

"विज्ञान का तिरस्कार कर प्रकट हुआ चमत्कार !"

"कहाँ है वह ?"

"गुरुदेव में !"

"मैं इतने दिन उनके निकट रही। मैंने उनमें कभी कोई चमत्कार नहीं पाया। अगर तुम कोई चमत्कार दिखा सको तो मैं अपने निश्चय पर फिर से विचार करूँ।"

भैरव बोला—"मैंने सुना तो है गुरुदेव शून्य में से अनेक प्रकार की चीजें प्रकट कर देते हैं। अगर उन्होंने इस मठ में अपने चमत्कार से पेट्रोल पैदा कर दिया तो क्या तुम उसे चमत्कार नाम दोगी ?"

"मैत्रेय ! जरूर दूंगी।"

"लेकिन फिर तुम्हारे वह पेट्रोल किसी काम का न रहेगा क्योंकि फिर तुम गुरुदेव की महिमा में बँध जाओगी।"

"मान ली तुम्हारी बात। अच्छा अब हम-तुम दोनों मिलकर जहाज के इस भाग को ठीक करें।"

उसका एक हिस्सा चट्टान की टक्कर से पिच गया। दोनों मिलकर ठोक-ठाककर उसे ठीक करने लगे। बड़ी देर तक दोनों वहाँ काम करते रह गए। कुछ देर में वहाँ सरदार आ पहुँचा और बोला—"गुरुदेव बुला रहे हैं तुम दोनों को।"

भैरव बोला—"किसलिए ?"

सरदार ने कहा—"तुम्हें यहाँ बड़ी देर हो गई है। तुम दोनों के लिये उनके मन में एक अधीरता का हो जाना स्वाभाविक है। उन्होंने तुम्हें चाय पीने के लिये बुलाया है।"

भैरव ने थकान जाहिर करते हुए इवा से सरदार की बातों का मर्म कहा।

इवा ने जवाब दिया—"अच्छी बात है, बाकी काम कल हो जायगा।"

दोनों गुफा के अंधकार में टटोलते हुए चले। अतिथिशाला में उन्हे कलजन और रिंबूची मिले। कलजन ने पूछा—"वह जो बाहर हवाई जहाज है, क्या वह आकाश में उड़ता है ?"

भैरव ने जवाब दिया—"हाँ।"

"बिजली से उड़ता है या योग से ?"

"दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं।"—भैरव ने जवाब दिया।

"तुम मजाक कर रहे हो।"

भैरव हँसने लगा—"कैसे समझाऊँ तुम्हें ?"

रिंबूची ने कहा—"उसमें हमें भी आकाश की सैर करा दोगे किसी दिन ?"

"क्यों नहीं ?"

रिंबूची को शंका हुई—"अगर वह यहाँ लौटकर न आया तो ?"

"कहीं तो पहुँचेगा ही।"—भैरव ने जवाब दिया और वह बातें करता हुआ आगे बढ़ गया।

इवा ने कहा—"मैत्रेय, मैं तुम्हें पेट्रोल की फिर याद दिलाती हूँ।"

भैरव ने हँसकर कहा—"विज्ञान के या योग के ?"

"किसी का हो, मुझे पेट्रोल से मतलब है।"

"नहीं, तुम अपने शब्दों में बँध चुकी हो। वैज्ञानिक पेट्रोल तुम्हारे-हमारे बिछोह का कारण होगा लेकिन यौगिक पेट्रोल तुम्हें यहीं का बनाकर रख देगा। क्या तुम विज्ञान की सभ्यता में जाने के बदले योग के चमत्कार की खोज न करोगी ?"

कुछ सोचकर इवा धीरे-धीरे बोली—"हाँ मैत्रेय।"

"फिर तुम्हें सारी पार्थिवता से मुँह मोड़कर आँख बंद कर लेनी पड़ेगी।"

"मैं तुम्हें दूसरे नाम से पुकारना चाहती हूँ।"

"जब हाड़-चाम का मोह तुमसे छूट जायगा तो फिर नाम में भी कोई सार नहीं मिलेगा।"

इसी समय गुरुदेव ने आकर पूछा—"मैत्रेय, बड़ी देर लगा दी। कहाँ गए थे?"

"यह अपने वाहन को देखने गई थीं।"

"हमारा असली वाहन यह शरीर ही है। उसके मन रूपी भाग में जिस शक्ति का निवास है, उस गति को ये कृत्रिम वाहन नहीं पा सकते, यह सत्य अपनी माता पर प्रकट कर दो।"

"वह जानती हैं इसे।"

"अगर जानती होती तो देश और काल दोनों का वैराग्य हो जाता इसे।"

"यह चंचलता आयु का गुण है, गुरुदेव।"

"आयु कोई चीज नहीं है, प्रार्थना से सारे पाप भस्म हो जाते हैं।"

"किसकी प्रार्थना से? विज्ञान पदार्थ को मानता है वाणी को नहीं।"

"हमारी प्रार्थना का असर पड़ जायगा। मैं तुम दोनों के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ। तुम इसके लिये प्रार्थना करो।"

"क्या प्रार्थना करूँ?"

"निरंतर यही कि हमारा मन स्थूल के इंद्रजाल से छूटकर सूक्ष्म की ओर आकर्षित हो। हम शरीर के सुख-भोगों में न भूले रह जायँ बल्कि मन की शक्ति में हमारे विचार केंद्रित हो जायँ।"

"ऐसा ही होगा, गुरुदेव!"

"इससे भी कह दो ऐसा ही करे। सिर-सरग के एकांत में अकेली

ही रहना पड़ेगा इसे जब तक इसके मन की वृत्तियाँ भीतर की ओर न हो जायँ। कह दो इससे।"

भैरव ने इवा से कहा—"माता, गुरुदेव कहते हैं तुम्हें निरंतर भगवान् से प्रार्थना करनी होगी कि तुम्हारा मन क्षणिक सुख से हटकर सच्चे सुख में लग जाय।"

इवा ने जवाब दिया—"हाँ, ऐसा ही करूँगी।"

"इसके लिये सिर-सरग में जो तुम्हारा एकांत कमरा है, वहीं तुम्हें रहना होगा।"

"अच्छी बात है, लेकिन पेट्रोल की याद रखना, उसी के द्वारा मुझे सच्चा सुख मिलेगा।"—इवा सिर-सरग को चली गई।

भैरव ने बड़ी नम्रता के साथ खंपोलामा से कहा—"एक विनती है, गुरुदेव। मैंने सुना है, आप शून्य में से अनेक चीजों को प्रकट कर देते हैं।"

गुरुदेव मुसकराकर बोले—"बाहरी भौतिक जगत में हर चीज का मूल्य झूठा है, मन में जो उसका प्रतिबिंब है, वही असलियत है। यही उपदेश मैं तुम्हें दूँगा।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए। इवा को उसकी जरूरत है।"

"किस चीज की?"

"पेट्रोल की।"

सरदार भी वहाँ पर आ गया था। गुरुदेव ने पूछा—"पेट्रोल क्या हुआ?"

'एक तरह का तेल होता है।"—भैरव बोला।

"होने दो, उससे कुछ नहीं होनेवाला है।"—खंपोलामा ने उत्तर दिया।

"नहीं गुरुदेव, उसे किसी तरह प्रकट कर ही दीजिए।"

"क्या फायदा होगा?"

"चीज के फायदे के लिए नहीं, चमत्कार के लिए, चमत्कार के

कुछ सोचकर इवा धीरे-धीरे बोली—"हाँ मैत्रेय।"

"फिर तुम्हें सारी पार्थिवता से मुँह मोड़कर आँख बंद कर लेनी पड़ेगी।"

"मैं तुम्हें दूसरे नाम से पुकारना चाहती हूँ।"

"जब हाड़-चाम का मोह तुमसे छूट जायगा तो फिर नाम में भी कोई सार नहीं मिलेगा।"

इसी समय गुरुदेव ने आकर पूछा—"मैत्रेय, बड़ी देर लगा दी। कहाँ गए थे?"

"यह अपने वाहन को देखने गई थीं।"

"हमारा असली वाहन यह शरीर ही है। उसके मन रूपी भाग में जिस शक्ति का निवास है, उस गति को ये कृत्रिम वाहन नहीं पा सकते, यह सत्य अपनी माता पर प्रकट कर दो।"

"वह जानती हैं इसे।"

"अगर जानती होती तो देश और काल दोनों का वैराग्य हो जाता इसे।"

"यह चंचलता आयु का गुण है, गुरुदेव।"

"आयु कोई चीज नहीं है, प्रार्थना से सारे पाप भस्म हो जाते हैं।"

"किसकी प्रार्थना से? विज्ञान पदार्थ को मानता है वाणी को नहीं।"

"हमारी प्रार्थना का असर पड़ जायगा। मैं तुम दोनों के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ। तुम इसके लिये प्रार्थना करो।"

"क्या प्रार्थना करूँ?"

"निरंतर यही कि हमारा मन स्थूल के इंद्रजाल से छूटकर सूक्ष्म की ओर आकर्षित हो। हम शरीर के सुख-भोगों में न भूले रह जायँ बल्कि मन की शक्ति में हमारे विचार केंद्रित हो जायँ।"

"ऐसा ही होगा, गुरुदेव!"

"इससे भी कह दो ऐसा ही करे। सिर-सरग के एकांत में अकेली

ही रहना पड़ेगा इसे जब तक इसके मन की वृत्तियाँ भीतर की ओर न हो जायँ। कह दो इससे।"

भैरव ने इवा से कहा—"माता, गुरुदेव कहते हैं तुम्हें निरंतर भगवान् से प्रार्थना करनी होगी कि तुम्हारा मन क्षणिक सुख से हटकर सच्चे सुख में लग जाय।"

इवा ने जवाब दिया—"हाँ, ऐसा ही करूँगी।"

"इसके लिये सिर-सरग में जो तुम्हारा एकांत कमरा है, वहीं तुम्हें रहना होगा।"

"अच्छी बात है, लेकिन पेट्रोल की याद रखना, उसी के द्वारा मुझे सच्चा सुख मिलेगा।"—इवा सिर-सरग को चली गई।

भैरव ने बड़ी नम्रता के साथ खंपोलामा से कहा—"एक विनती है, गुरुदेव। मैंने सुना है, आप शून्य में से अनेक चीजों को प्रकट कर देते हैं।"

गुरुदेव मुसकराकर बोले—"बाहरी भौतिक जगत में हर चीज का मूल्य झूठा है, मन में जो उसका प्रतिबिंब है, वही असलियत है। यही उपदेश मैं तुम्हें दूँगा।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए। इवा को उसकी जरूरत है।"

"किस चीज की?"

"पेट्रोल की।"

सरदार भी वहाँ पर आ गया था। गुरुदेव ने पूछा—"पेट्रोल क्या हुआ?"

"एक तरह का तेल होता है।"—भैरव बोला।

"होने दो, उससे कुछ नहीं होनेवाला है।"—खंपोलामा ने उत्तर दिया।

"नहीं गुरुदेव, उसे किसी तरह प्रकट कर ही दीजिए।"

"क्या फायदा होगा?"

"चीज के फायदे के लिए नहीं, चमत्कार के लिए, चमत्कार के

द्वारा इवा को ज्ञान देने के लिए।"

"चमत्कार सौदे की चीज नहीं है। चमत्कार द्वारा आस्तिक बना हुआ ज्यादा दिन तक उस पर नहीं ठहर सकता। उससे कहो, वह विश्वास लाए, केवल एक विश्वास ही ऐसी चीज है जिसके द्वारा सब कुछ मिल सकता है।"

"विश्वास के लिए एक पात्र चाहिए, गुरुदेव, एक आधार, आप थोड़ा-सा पेट्रोल प्रकट कर दीजिए, उसके बाद फिर कुछ नहीं कहा जाएगा।"

खंपोलामा हँसकर बोला—"तुम क्या मुझे कोई सिद्ध समझते हो ?"

"मैं अवश्य समझता हूँ आपको समर्थ और उसको समझाने के लिए ही आपसे यह प्रार्थना है।"

"पेट्रोल क्या हुआ ?"

"एक बड़ा तेज पानी है ?"

"तेज पानी ? अभी तुमने तेल कहा था। क्या शराब तो नहीं है ? क्या यह शराब पीती है ?"

"शराब तो नहीं है। मोटरें चलती हैं इससे, जरा-सी आँच दिखाने से भक्क से जल उठता है।"

सरदार बोला—"गुरुदेव, नमूने के लिए तो मैं ला सकता हूँ।"

"कहाँ से ?"—गुरुदेव ने पूछा।

"अब मुझे याद आ गई, ल्हासा के अस्तबल में हैं बहुत-से पीपे, बड़ी खबरदारी से रखे हुए। मैं ला सकता हूँ वहाँ से आप को दिखाने के लिए।"—सरदार बोला।

"तुम्हें कितना चाहिए ?"—खंपोलामा ने भैरव से पूछा।

"चाहिए खूब चाहिए, लेकिन गुरुदेव आपके योग के लिए तो कम या ज्यादा नाम की कोई चीज़ नहीं है।"

सरदार बोला—"दो-तीन टीन ले आ सकता हूँ मैं।"

खंपोलामा हाँ कहकर चल दिया।

उसी दिन शाम को भारी परिश्रम से चकनाचूर भैरव दिल-दुनिया में बैठा-बैठा ऊँघने लगा। ऊँघते-ऊँघते बहुत घना और साफ सपना उसे दिखाई दिया। एक पलक की झपक में ही वह देश-काल का प्रतिक्रमण कर भयंकरवादियों के संघ में जा पहुँचा।

पकड़े जाने पर भैरवी का क्या परिणाम हुआ, यह जानने की बड़ी उत्कट लालसा उसके हृदय में उपज गई थी। उसने सारे सिर-मुख और अंग में राख मलकर अपना विकृत वेश बनाया और मठ के बहिर्द्वार पर चिमटा बजाकर खड़ा हो गया। वहाँ उसे पता चला, एकाएक माताजी के स्वर्गवास से संघ टूट गया। लेकिन भैरवी उसे वहाँ मिल गई और वह भैरव को पहचानकर बोली—"मैं भैरवी नहीं, बासो हूँ। मुझे एक दुष्ट बम्बई की धर्मशाला से तुम्हारे नाम का धोका देकर बहका ले गया। फिर इस संघ का एक सेवक मुझे छुड़ाकर यहाँ ले आया। संघ के नियम की रक्षा के लिए मैं माता के पोष्य-पुत्र के वेश में रहती थी। संघ के बाहर जाकर तुम पर यह भेद खोल देने का मेरा निश्चय था, पर मैं उसके बाहर जा ही नहीं सकी। अब क्या कहते हो तुम ?"

"क्या कहता हूँ, जो किया है उसे पाप में परिणत होने नहीं दूँगा।"

"क्या मतलब ?"

"तुम्हारा हाथ पकड़ कर लाया हूँ, तुमसे विवाह करूँगा। मुझे समाज का कोई भय नहीं। तुम्हारा वियोग मेरा पाप होकर रह गया था। इसी कारण मैं न युग-चैतन्य की भूमिका पर चढ़ सका न मैत्रेय की पृष्ठभूमि पर ठहर सका। चलो, तुम अपनी माता से क्षमा माँगना, मैं अपने जनक-जननी से। इससे हमारे पाप धुलकर स्वच्छ हो जायेंगे।"

बासो भैरव का हाथ पकड़कर रोने लगी—"तुम सच कह रहे हो क्या ?"

"हाँ बासो, बिल्कुल सच समझो इसे।"

"तुम मुझे ग्रहण करोगे, तुम्हें अपने माता-पिता की कोई चिंता

नहीं ?"

"चिंता और भय सब कुछ होना ही चाहिए। पर मैं उन्हें राजी कर लूंगा।"

तभी भैरव की आँख खुल गई और उसने आँख मलते हुए विचारा—"इतने गहरे रंगों में उभरा हुआ ! मैं इसे सपना नहीं मान सकता। यह निश्चय ही आगामी सत्य है। मैत्रेय—जब भगवान् की इच्छा होगी, तब होगा ही। मेरे समान क्षुद्र मनुष्य का यह केवल खोटा अहंकार है। अब मुझे यहाँ से जाकर इस सपने के सत्य को शीघ्र ही प्राप्त कर लेना चाहिए !"

और उधर मानी घुमाते-घुमाते कलजन की उपचेतना ने भी चाङ् थङ् के उस मठ से उठाकर उसको रख दिया ल्हासा में।

ल्हासा में वह जल्दी से पैर बढ़ाकर अपने मकान पर गया। उसे पक्का विश्वास था वहाँ किसी दूसरे ने आसन जमा लिया होगा। पर बात ऐसी नहीं थी। दूकान अच्छे रंग-चूने से चमक रही थी। बाहर दोनों सिरों पर लकड़ी के बेलन लगे हुए कपड़े पर बड़ी सुरुचि से लिखा हुआ पढ़ा उसने—"अमजी कलजन, ल्हासा का पुराना और अनुभवी हकीम !"

कलजन समझ ही नहीं सका यह क्या मामला है। जिस दूकान की चोरों द्वारा सारी श्री नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी, उसका आज ऐसा रूप-शृंगार ! वह हक्का-बक्का खड़ा ही था कि भीतर से उसका चीनी भाई दौड़ा-दौड़ा बाहर आ गया और बड़ी प्रीति और प्रथा से उसे प्रणाम कर दूकान के भीतर ले गया। गद्गद हो क्षमा माँगकर बोला—"मैं कब से आपके आने की यहाँ प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आप कहाँ थे ? इतने दिन में आपने कोई समाचार भी नहीं दिया !"

कलजन ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए पूछा—"ये दवाएं कहाँ से आईं ?"

"संसार में न कुछ उपजता है, न ही नष्ट होता है। आपकी कल्पना में जो नष्ट हो गया था मैंने उस सबको उभार दिया। अब आप इन

दवाओं को सँभालकर दुखियों का दुख दूर करें। मेरे कसूर माफ करें, मैं आपका सेवक हूँ।"

तभी कलजन कुछ चेतना में आकर बड़बड़ाया—"यह कैसी माया! सच्चाई से भी अधिक उजला यह सपना दिखाई दे गया। ल्हासा जाकर देखूँ तो सही। मेरा वह चीनी भाई भला आदमी है।" तभी उसने अपने मन को धिक्कारा—"यहाँ इस पवित्र साधना को छोड़ कर वहाँ क्या रखा है?"

सरदार दूसरे दिन ल्हासा के लिए रवाना हुआ। वहाँ के कई अफसरों के साथ सरदार की अच्छी जान-पहचान थी। उनका एक अनुचर जो कि घुड़साल के गोदाम में नियुक्त था, एक दिन सरदार ने उसके पास जाकर पेट्रोल की माँग की।

अनुचर ने कुछ ताज्जुब के साथ पूछा—"क्या करोगे तुम उसका?"

सरदार और अनुचर की बड़ी घुली-मिली मैत्री थी। उसने साफ-साफ कह दिया—उसके गुरुदेव के मठ में एक श्वेतांगना आई है। उसका एक हवाई जहाज है, उसके लिए जरूरत है।

अनुचर बोला—"पेट्रोल काफी है। यहाँ जो मोटर है, वह तो सिर्फ शोभा के लिए ही रखी हुई है। मैं तुम्हें जितना कहोगे दे दूँगा। लेकिन तुम्हें वह बड़ी खबरदारी से ले जाना होगा।"

"हाँ, मैं जानता हूँ, आग से बहुत दूर रखूँगा मैं उसे।"

"सिर्फ आग ही नहीं भाई, मनुष्य की नजरों से भी उसे बचाकर ले जाना होगा।"

"हाँ, हाँ, मैं मक्खन के थैलों में उनके टीनों को ऐसे छिपा ले जाऊँगा कि कोई ताड़ ही न सकेगा।"

घुड़साल का अनुचर धीरे-धीरे बोला—"वह श्वेतांगना किसलिए बुला रखी है गुरुदेव ने?"

"उनके रहस्य कौन जान सकता है? ऐसा भी कहा जाता है वह बुलाई नहीं गई है, उसका हवाई जहाज वहाँ खराब होकर गिर पड़ा है।"

"लेकिन उसके साथ बातें कैसे होती हैं ?"

"मैत्रेय करता है बातें ।"

"मैत्रेय कौन है ?"

सरदार ने बड़ी कठिनता से मुंह में थूक जमाकर उसे निगला—"मैत्रेय गुरुदेव का एक और चेला है ।"

"वह कहाँ से सीख गया उस श्वेतांगना की भाषा ?"

"मैं ठीक-ठीक कुछ नहीं बता सकता । गुरुदेव ने ही कोई माया रच रखी होगी ।"

अनुचर सरदार की ओर सिर बढ़ाकर धीरे-धीरे बोला—"भाई, यहाँ सरकारी हलकों में बड़ी गरम खबरें फैली हैं कि बहुत से विदेशी राज्यों के जासूस यहाँ फैल गए हैं, जो भाँति-भाँति के राजनैतिक षड्यन्त्र यहाँ फैलाने में दत्तचित्त हैं ।"

"भाई, तुम जानते ही हो हमारा राजनीति से कोई मतलब नहीं है, हम तो विशुद्ध धार्मिक भावना के जीव हैं ।"

"लेकिन यहाँ तो धर्म और राजनीति चाय में नमक के समान घुले-मिले हैं ।" अनुचर को कुछ याद आई और वह बोला—"एक जासूस ल्हासा में आया था हिन्दुस्तान से । बहुत दिन तक वह गूंगा बनकर भेद लेता रहा यहाँ का और बेतार के तार से दुश्मनों को हमारी खबरें देता रहा । फिर न-जाने कहाँ गायब हो गया । पुलिस बड़ी सरगर्मी से उसको ढूंढ रही है आजकल ।"

"पुलिस को भी तो कोई काम चाहिए । लेकिन बाहर के दुश्मनों का क्या हमारे तो भीतर ही भारी कलह है । मैं कहता हूँ देवताओं के अवतार आपस में लड़ते क्यों हैं ?"—सरदार ने कहा ।

"लड़ते हैं उस सोने-चाँदी और जवाहरात के लिए जो वहाँ मठ नामी महलों में जमा कर रखे हैं ।"

"अवतार और राजा इन दोनों की खिचड़ी एक में मिला देने की बात बड़ी गलत है । सुना है, दुनिया में अब ऐसा कहीं नहीं है" ।

सरदार ने कहा—"राजा नगर में रहकर गाँवों में शासन करता है और अवतार की गाँवों में रहकर नगरों में प्रभुता होनी चाहिए।"

"अवतार नाम की चीज को अगर बिलकुल ही दुनिया से हटा दिया जाए तो भी हर्ज क्या है ?"

"दुनिया में जो पाप जमा हो जाता है, वह कैसे दूर होगा ? इस बार गुरुदेव बना रहे हैं एक अवतार। वह भोग-विलास, मणि-माणिक्य सब से दूर एकान्त में साधना कर रहे हैं।"

"तो क्या अवतार ऐसे बना दिया जाएगा, जैसे कोई मकान खड़ा कर दिया जाता है?"—उस घुड़साल के रक्षक ने आपत्ति की।

"अभी तुमसे इस बारे मे मुझे कुछ बहस करनी नहीं है। आकाश मे जब सूर्योदय होता है तो किसी को क्या साबित करने की जरूरत होती है ?"

उन दोनों मित्रों में इतना मतभेद रहने पर भी सरदार को चौथे दिन बिना अधिक बातें किए चार टीन पेट्रोल के मिल गए। सरदार ने उन्हें चमड़े के थैलों में मक्खन के बीच में सी दिया और चमरियों में लादकर ले चला; और भी बहुत-सा सामान उसे ले जाना था।

घुड़साल के रक्षक से जिस दिन सरदार ने हवाई जहाज और श्वेतांगना की बात कही थी, उसी दिन-रात को उसने अपने कुछ अंतरंग मित्रों से उसकी चर्चा कर दी।

रातों-रात वह बात ल्हासा की ऊँची परिधियों के बीच में विकृत और विशाल परिमाण धारण कर फैल गई। कुछ ऊँचे अधिकारियों ने रात-ही-रात में उस भयानक षड्यन्त्र का सिर कुचल देने के लिए कदम बढ़ाए। जासूसों का पूरा एक दस्ता उसी समय तैनात कर दिया गया, एक अनुभव-प्राप्त सूबेदार उनकी अफसरी के लिए नियुक्त हुआ।

रात-ही-रात उस सारे दल का सिर घुटा दिया गया। सूबेदार को पीले कपड़े पहनाकर एक महंत का रूप दे दिया गया। शेष अनुचरों

ने उसके चेलों का रूप रख लिया।

इन लोगों ने सरदार का पीछा करना स्थिर किया। पाँचवें दिन जब सरदार अपनी तमाम चीजें एकत्र कर गुरुदेव के मठ के लिए रवाना हुआ, उसी दिन जासूसों का दल भी उसके पीछे-पीछे चल पडा।

सरदार के साथ दस अनुचर थे, इतने ही जानवर, लगभग यही संख्या उन जासूसों की टोली की भी थी। उनकी दसों चमरियों में तंबू, कपड़े और खाने-पीने का सामान लदा था। जरूरत पडने पर काम आने के लिए उनके समान में कुछ अस्त्र-शस्त्र भी छिपाकर रख लिए गए थे।

ल्हासा से चलने पर सरदार के मन में प्रचुर उत्साह था, क्योंकि उसे उस श्वेतागंना की इच्छा पूरी कर सकने का सौभाग्य प्राप्त हो सका था। उसे इस बात का जरा भी पता नहीं था कि पेट्रोल के साथ वह पूरे एक जासूसों के दल को आकर्षित कर अपने साथ लिए जा रहा था।

२८

श्वेतांगों की कामना

सरदार अपने दल के आगे-आगे सफेद घोड़े पर जा रहा था, सूबेदार भी उसकी छाया के समान एक काले घोड़े पर उसका अनुसरण कर रहा था। दोपहर बाद ये लोग ल्हासा से चले थे। शाम को जिस गाँव में सरदार का डेरा पड़ा उसके आगे के गाँव तक सूबेदार की टोली बढ गई। सरदार ने उस टोली की कोई चिन्ता नही की।

दूसरे दिन जब एक ही गाँव में दोनों दलों की मुठभेड़ हो गई तो सरदार ने अपने दल के एक साथी को भेजकर पुछवाया वे लोग कौन हैं? साथी ने लौटकर बताया—"साधकों का यह एक दल है जो तपस्या के लिए अधिक ठण्डे और शून्य-एकान्त की ओर जा रहा है।"

तीसरे दिन सरदार के मन में कुछ भ्रम जमने लगा। उसके निराकरण के लिए वह दूसरे दल के महंत जी के निकट गया जबकि वे यात्रा में विराम देकर एक स्थान पर विश्राम कर रहे थे।

कुछ सूखे मेवे और हरे फल, कुछ चीनी चाय की ईंटे लेकर उसने उनकी अभ्यर्थना की। महंत जी ने आशीर्वाद दिया और फिर चुपचाप अपनी मानी को चक्कर देने में संलग्न हो गए।

सरदार चुपचाप बैठा रहा उनके पास, जब वे कुछ बोले ही नहीं तो विवश होकर उसे ही मुँह खोलना पड़ा—"महाराज, कहाँ तक की यात्रा का विचार है?"

वह रंगे हुए महंत जी बोले—"हाँ बच्चा, यात्रा का अन्त कहीं पर भी नहीं है। एक विश्राम के बाद दूसरा जन्म आरम्भ हो जाता है, दूसरे के बाद तीसरा, अनंत कड़ियों में। तुम कहाँ जाओगे?"

सरदार क्या उस महंत से कम था, उसने जवाब दिया—"महाराज की जय हो, जो बात आपके लिए सही, वही कुछ कम-ज्यादा मात्रा में मेरे लिए भी है।"

महंत जी ने मुंह की खाकर जवाब लौटाया—"कहाँ से आना हो रहा है ?"

"ल्हासा से आ रहा हूँ, महाराज।"

"किस चीज का व्यापार करते हो ?"

"काले और सफेद का।"

महंत जी आसन बदलकर फिर से बैठे—"मैं नही समझा।"

सरदार हँसता हुआ कहने लगा—"महाराज, पाप और पुण्य से मेरा आशय है। नफे में पाप ही हाथ लगता है, पुण्य का बड़ा घाटा है।"

"बड़े महीन जान पड़ते हो तुम। साधु के साथ इस तरह गोल बात नहीं करनी चाहिए।"—बड़ी असहायता के साथ महंत ने कहा।

महंत की इस उक्ति पर सरदार ने कुछ शील ग्रहण कर कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो। मैं व्यापारी नहीं, एक गृहस्थ हूँ।"

"इतना सामान कहाँ ले जा रहे हो ?"

"मेरे गुरुदेव का एक मठ है। उनके लिये ले जा रहा हूँ कुछ सामान।"

"कहाँ है उनका मठ ?"

"दूर, बहुत दूर ! चाङ् थङ् के प्रदेश में।"

"हम भी किसी एकांत की खोज में है।"

"लेकिन आपके साथ इतने चेले है, ये एकांत बनने न देंगे।"

"हाँ, एक हद तक तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन ये चेले हैं न, सब गुरु की आज्ञा के अनुवर्त्ती। जब इनसे चुप रहने के लिये कहा जायगा, तब वे चुप रह जाएंगे और जब इनको सामने से हट जाने की आज्ञा दी जायगी, तब ये उसका भी पालन करेंगे।"

सरदार कुछ क्षण तक हँसता रहा फिर बोला—"महाराज, आप

चलें न हमारे गुरुदेव के ही मठ में रहें।"

महंत की बन आई, पर उसने मन के भाव को छिपाकर कहा—"नहीं भाई, मेरे वहाँ जाने से उनका एकांत भी भंग हो जायगा और मेरी भी साधना चौपट हो जायगी।"

"साधना सबकी एक ही है महाराज। हमारे गुरुदेव बड़े उदार हैं, वे सहज ही आप की सुविधा के लिये प्रसन्न मन से प्रबंध कर देंगे, धरती बड़े संकट काल से गुजर रही है।"

"कैसा संकट धरती का ?"

"वे व्यक्तिगत मुक्ति को साधक का घोर स्वार्थ कहते हैं। वे दिन-रात समष्टि की मुक्ति की चेष्टा करते रहते हैं। उनकी इस साधना से अगर आपके विचार मिल गए तो मैत्रेय का उद्भव होते क्या देर लगेगी ?"

"मैत्रेय का कैसा उद्भव ?"

"आप मानी घुमा रहे हैं पर जिस धर्म का यह महामंत्र है उस आनेवाले बुद्ध को नही जानते आप ?"—विस्मित होकर सरदार ने पूछा।

"जानता क्यों नहीं हूँ ? लेकिन उसका यह उद्भव कैसा ? उसका बनना कैसा ?"

"दलाई लामा का जैसा। वह पैदा नहीं होता, बना दिया जाता है, ऐसे ही मैत्रेय भी बनाया जायगा।"

महंत जी बोले—"तुम्हारी बातों में विश्वास तो होता है। मैंने मैत्रेय का सपना देखा है। वे धरती की अशांति दूर करने के लिये आनेवाले हैं।"

"वे आ गए हैं महाराज, केवल उनकी शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता है। आप के समान दस-पाँच व्यक्तियों के दिमाग मिल जाएँ तो फिर कुछ ही दिन में काम बन जाए।"

"तो मैत्रेय के लिये किसी को चुन लिया गया है ? कौन है वह भाग्यशाली ?"

सरदार क्या उस महंत से कम था, उसने जवाब दिया—"महाराज की जय हो, जो बात आपके लिए सही, वही कुछ कम-ज्यादा मात्रा में मेरे लिए भी है।"

महंत जी ने मुंह की खाकर जवाब लौटाया—"कहाँ से आना हो रहा है ?"

"ल्हासा से आ रहा हूँ, महाराज।"

"किस चीज का व्यापार करते हो ?"

"काले और सफेद का।"

महंत जी आसन बदलकर फिर से बैठे—"मैं नहीं समझा।"

सरदार हँसता हुआ कहने लगा—"महाराज, पाप और पुण्य से मेरा आशय है। नफे में पाप ही हाथ लगता है, पुण्य का बड़ा घाटा है।"

"बड़े महीन जान पड़ते हो तुम। साधु के साथ इस तरह गोल बात नहीं करनी चाहिए।"—बड़ी असहायता के साथ महंत ने कहा।

महंत की इस उक्ति पर सरदार ने कुछ शील ग्रहण कर कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो। मैं व्यापारी नहीं, एक गृहस्थ हूँ।"

"इतना सामान कहाँ ले जा रहे हो ?"

"मेरे गुरुदेव का एक मठ है। उनके लिये ले जा रहा हूँ कुछ सामान।"

"कहाँ है उनका मठ ?"

"दूर, बहुत दूर ! चाङ् थङ् के प्रदेश में।"

"हम भी किसी एकांत की खोज में हैं।"

"लेकिन आपके साथ इतने चेले हैं, ये एकांत बनने न देंगे।"

"हाँ, एक हद तक तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन ये चेले हैं न, सब गुरु की आज्ञा के अनुवर्त्ती। जब इनसे चुप रहने के लिये कहा जायगा, तब वे चुप रह जाएंगे और जब इनको सामने से हट जाने की आज्ञा दी जायगी, तब ये उसका भी पालन करेंगे।"

सरदार कुछ क्षण तक हँसता रहा फिर बोला—"महाराज, आप

चलें न हमारे गुरुदेव के ही मठ में रहें।"

महंत की बन आई, पर उसने मन के भाव को छिपाकर कहा—"नहीं भाई, मेरे वहाँ जाने से उनका एकांत भी भंग हो जायगा और मेरी भी साधना चौपट हो जायगी।"

"साधना सबकी एक ही है महाराज। हमारे गुरुदेव बड़े उदार हैं, वे सहज ही आप की सुविधा के लिये प्रसन्न मन से प्रबंध कर देंगे, धरती बड़े संकट काल से गुजर रही है।"

"कैसा संकट धरती का ?"

"वे व्यक्तिगत मुक्ति को साधक का घोर स्वार्थ कहते हैं। वे दिन-रात समष्टि की मुक्ति की चेष्टा करते रहते हैं। उनकी इस साधना से अगर आपके विचार मिल गए तो मैत्रेय का उद्भव होते क्या देर लगेगी ?"

"मैत्रेय का कैसा उद्भव ?"

"आप मानी घुमा रहे हैं पर जिस धर्म का यह महामंत्र है उस आनेवाले बुद्ध को नही जानते आप ?"—विस्मित होकर सरदार ने पूछा।

"जानता क्यों नहीं हूँ ? लेकिन उसका यह उद्भव कैसा ? उसका बनना कैसा ?"

"दलाई लामा का जैसा। वह पैदा नहीं होता, बना दिया जाता है, ऐसे ही मैत्रेय भी बनाया जायगा।"

महंत जी बोले—"तुम्हारी बातों में विश्वास तो होता है। मैंने मैत्रेय का सपना देखा है। वे धरती की अशांति दूर करने के लिये आनेवाले हैं।"

"वे आ गए हैं महाराज, केवल उनकी शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता है। आप के समान दस-पाँच व्यक्तियों के दिमाग मिल जाएँ तो फिर कुछ ही दिन में काम बन जाए।"

"तो मैत्रेय के लिये किसी को चुन लिया गया है ? कौन है वह भाग्यशाली ?"

सरदार क्या उस महंत से कम था, उसने जवाब दिया—"महाराज की जय हो, जो बात आपके लिए सही, वही कुछ कम-ज्यादा मात्रा में मेरे लिए भी है।"

महंत जी ने मुंह की खाकर जवाब लौटाया—"कहाँ से आना हो रहा है ?"

"ल्हासा से आ रहा हूँ, महाराज।"

"किस चीज का व्यापार करते हो ?"

"काले और सफेद का।"

महंत जी आसन बदलकर फिर से बैठे—"मैं नही समझा।"

सरदार हँसता हुआ कहने लगा—"महाराज, पाप और पुण्य से मेरा आशय है। नफे में पाप ही हाथ लगता है, पुण्य का बड़ा घाटा है।"

"बड़े महीन जान पड़ते हो तुम। साधु के साथ इस तरह गोल बात नहीं करनी चाहिए।"—बड़ी असहायता के साथ महंत ने कहा।

महंत की इस उक्ति पर सरदार ने कुछ शील ग्रहण कर कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो। मैं व्यापारी नही, एक गृहस्थ हूँ।"

"इतना सामान कहाँ ले जा रहे हो ?"

"मेरे गुरुदेव का एक मठ है। उनके लिये ले जा रहा हूँ कुछ सामान।"

"कहाँ है उनका मठ ?"

"दूर, बहुत दूर ! चाङ् थङ् के प्रदेश में।"

"हम भी किसी एकांत की खोज में हैं।"

"लेकिन आपके साथ इतने चेले हैं, ये एकांत बनने न देंगे।"

"हाँ, एक हद तक तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन ये चेले हैं न, सब गुरु की आज्ञा के अनुवर्त्ती। जब इनसे चुप रहने के लिये कहा जायगा, तब वे चुप रह जाएंगे और जब इनको सामने से हट जाने की आज्ञा दी जायगी, तब ये उसका भी पालन करेंगे।"

सरदार कुछ क्षण तक हँसता रहा फिर बोला—"महाराज, आप

चलें न हमारे गुरुदेव के ही मठ में रहें।"

महंत की बन आई, पर उसने मन के भाव को छिपाकर कहा—"नहीं भाई, मेरे वहाँ जाने से उनका एकांत भी भंग हो जायगा और मेरी भी साधना चौपट हो जायगी।"

"साधना सबकी एक ही है महाराज। हमारे गुरुदेव बड़े उदार हैं, वे सहज ही आप की सुविधा के लिये प्रसन्न मन से प्रबंध कर देंगे, धरती बड़े संकट काल से गुजर रही है।"

"कैसा संकट धरती का ?"

"वे व्यक्तिगत मुक्ति को साधक का घोर स्वार्थ कहते हैं। वे दिन-रात समष्टि की मुक्ति की चेष्टा करते रहते हैं। उनकी इस साधना से अगर आपके विचार मिल गए तो मैत्रेय का उद्भव होते क्या देर लगेगी ?"

"मैत्रेय का कैसा उद्भव ?"

"आप मानी घुमा रहे हैं पर जिस धर्म का यह महामंत्र है, उस आनेवाले बुद्ध को नही जानते आप ?"—विस्मित होकर सरदार ने पूछा।

"जानता क्यों नहीं हूँ ? लेकिन उसका यह उद्भव कैसा ? उसका बनना कैसा ?"

"दलाई लामा का जैसा। वह पैदा नहीं होता, बना दिया जाता है, ऐसे ही मैत्रेय भी बनाया जायगा।"

महंत जी बोले—"तुम्हारी बातों में विश्वास तो होता है। मैंने मैत्रेय का सपना देखा है। वे धरती की अशांति दूर करने के लिये आनेवाले हैं।"

"वे आ गए हैं महाराज, केवल उनकी शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता है। आप के समान दस-पाँच व्यक्तियों के दिमाग मिल जाएँ तो फिर कुछ ही दिन में काम बन जाए।"

"तो मैत्रेय के लिये किसी को चुन लिया गया है ? कौन है वह भाग्यशाली ?"

"उनके जन्म और जाति का कोई पता नहीं है महाराज। लेकिन विलक्षण बुद्धि के हैं। कई भाषाएँ बोल लेते हैं।"

महंत जी मन में सोचने लगे—"मैत्रेय की ओट में ही यह षड्यंत्र पनपता जान पड़ता है। शायद जिस आदमी को हम बहुत दिन से खोज रहे हैं, यही न हो।" उन्होंने सरदार से पूछा—"मठ में और कितने लोग रहते हैं?"

'ज्यादे लोगों को गुरुदेव नहीं रहने देते। एक-दो उनके चेले एक मैत्रेय और एक महामाया है।"

"महामाया कौन हुई?"—महंत जी मन में सोचने लगे जो कुछ अफवाह उन्होंने सुनी है, झूठी नहीं जान पड़ती।

"महामाया, मैत्रेय की माता।"

महंत जी ने समझने का नाट्य किया—"भाई, तुम्हारे साथ चलने की इच्छा तो होती है, लेकिन हम अपने साथ तंबू ले जा रहे हैं। तुम्हारे मठ के नजदीक कहीं गाड़ लेंगे। हमें संकोच इसी का है, कहीं गुरुदेव को कोई बाधा न जान पड़े।"

"वहाँ बड़ी बालू की हवाएँ चलती हैं, तंबू ठहर नहीं सकेगा। आप चलिए तो सही। गुरुदेव के विचार आप से मिल जाएँगे।"

महंत जी और क्या चाहते थे? उनकी इच्छा अनायास ही पूरी हो गई और उनको उस मठ तक पहुँचने के लिये अधिक छिपकर नहीं जाना पड़ा। अब तो दोनों दल हिल-मिलकर जाने लगे।

महंत सरदार के साथ बातें करता हुआ जाता, सेवक सेवकों के साथ संध्या-समय एक ही पड़ाव में दोनों के डेरे पड़ जाते। साथ-ही-साथ चाय बनती और भोजन भी। दोनों दलों के नेता और अनुचरों के बीच में ही एक आत्मीयता नहीं उनके पशुओं में भी प्रीति स्थापित हो गई।

दो-तीन पड़ाव चलने के बाद जब महंत को हवाई जहाज और उस यूरोपियन स्त्री-जासूस का पक्का निश्चय हो गया तो उसने अपने एक अनुचर को लहासा भेजकर वहाँ से शीघ्र ही कुछ सैन्य-सहायता मँगा

लेनी उचित समझी, इसके लिये उसने एक अनुचर को कुछ सिखा-पढ़ा दिया।

शाम को पड़ाव पर वह सेवक धाड़ मार-मार कर रोने लगा। महंत जी ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—"क्या हो गया ?"

रोते-रोते ही वह बोला—"कुछ नहीं।"

"फिर रोते क्यों हो ?"—सरदार ने पूछा।

"मेरा जी घबरा रहा है।"—उसने जवाब दिया।

"क्या घर की याद आती है ?"—महंत जी ने पूछा।

आँसू पोंछते हुए सिर हिलाकर उसने संकेत दिया—"हाँ।"

सब पास खड़े हुए लोग हँसने लगे। वह अनुचर फिर जोर-जोर से रोने लगा। महंत जी उसे दिलासा देते हुए बोले—"भाई, तो फिर हमारे साथ आए क्यों थे ? हमारी कोई जबर्दस्ती न थी, न तुम्हें कोई लालच ही दिया हमने।"

"ऐसी उजाड़ जगह होगी यहाँ, यह मालूम नहीं था। वहाँ मेरे बाल-बच्चे याद कर रहे होंगे मुझे।"

महंत जी ने बड़ी कठिनता से हँसी को पचाकर कहा—"तो क्या लौट जाना चाहते हो ?"

बहुत खुश होकर उसने जवाब दिया—"हाँ, महाराज।"

कुछ नाराज होकर महंत ने कहा—"तो जा सकते हो। जाओ, चले जाओ, अभी चले जाओ।"

"अकेले ?"

"और एक को साथ ले मरोगे ?" महंत ने और साथियों में से पूछा—"क्यों रे कोई है इसके साथ जाने को तैयार ?"

एक ने पूर्वनिश्चय के अनुसार अभिनय किया—"हाँ महाराज, मैं जा सकता हूँ।"

महंत ने पूछा—"क्या तुम्हें भी घर की याद आ रही है ?"

"घर की याद तो नहीं, इस बिचारे पर तरस आता है।"

दूसरे दिन प्रभात तारे के उदय से भी बहुत पहले वे दोनों एक चमरी में राह की भोजन-सामग्री लादकर ल्हासा के लिये रवाना हो गए। सरदार सोचने लगा—"ऐसे कच्चे लोग न-जाने क्यों साधना के मार्ग में पैर रख देते हैं।" और महंत ने विचारा—"क्या बढ़िया घर की याद आई!"

उतने बड़े दल में तीन प्राणियों के चले जाने से कोई कमी नहीं मालूम दी। यथासमय वे लोग सरदार के गाँव में पहुँचे। वहाँ डोल्मा ने उन लोगों का खूब आतिथ्य सत्कार किया। सरदार महंत के दल को वहीं छोड़ गुरुदेव से उनके लिये आज्ञा लेने के लिये एक रात वहाँ विश्राम कर चल दिए।

सरदार के मठ में पहुँचते ही भैरव दौड़ा हुआ आया इवा के साथ, उसने पहला प्रश्न किया—"पेट्रोल लाए?"

सरदार ने उत्तर देने में जरा देर कर दी जान-बूझकर। इतनी ही देर में भैरव ने तमाम चमरियों के पीठ पर के बोझ को टटोलकर निराश स्वर में कहा—"सरदार, तुम्हारे जाने के बाद से ही इन्होंने रट लगा रखी है। तुम इतने दिनों में लौटकर आए भी तो "

सरदार ने सुनी की अनसुनी की और एक चमरी पर बँधे हुए किसी बोझ की गाँठ खोलने में एकाग्र हो गया।

इवा ने पूछा—"पेट्रोल नहीं लाया?"

"जान पड़ता है नहीं लाया।"

"पूछो तो सही। मैंने इसके लौटने के एक-एक क्षण की गिनती की है।"—इवा ने कहा।

भैरव ने फिर कहा—"सरदार!"

सरदार अब रहस्य को छिपाकर न रख सका, बोला—"क्या कहते हो?"

"पेट्रोल?"

हँसते हुए उसने कहा—"देख लो।"

"नहीं दिखाई देता।"

"लाया हूँ।"

भैरव ने इवा से कहा—"लाया है।"

इवा हर्ष से उछल पड़ी। भैरव ने सरदार से पूछा—"कहाँ है?"

"हमारे पीछे एक महंत जी का दल आ रहा है, उनके साथ है।"

इसी समय खंपोलामा ने आकर यह बात सुनी तो वे पूछने लगे—"किस महंत का दल आ रहा है?"

सरदार बोला—"गुरुदेव, ल्हासा के निकट का ही कोई महंत है।"

"यहाँ क्यों आ रहा है?"

"उनके मन में भगवान् के रहस्य को जानने की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो गई है। इसीलिए वे एकांत की खोज में जा रहे थे। मैं आपके पास को ले आया।"

"सरदार, क्यों ले आए? हमारा एकांत समाप्त हो जायगा।"

"गुरुदेव अभी लाया नहीं हूँ, अपने गाँव में छोड आया हूँ उन्हें, आप आज्ञा देंगे तो लाऊँगा।"

'जब गाँव तक ले आए तो फिर मेरी क्या आज्ञा?"

"अच्छा महंत है, उसके मन में भगवान् के लिये सच्ची लगन और वह मैत्रेय के उद्भव में विश्वास रखता है।"

"कितने आदमी हैं उसके साथ?"

"आठ आदमी।"

"उनके खाने को कहाँ से आयेगा?"

"साथ लाए हैं।"

गुरुदेव ने उँगलियों में कोई गणना की। इसके बाद वे कुछ गुन-गुनाए, जो कुछ समझ नहीं पड़ा। फिर जोर से उन्होंने कहा—"अच्छा, तुम इन अपने सब साथियों को यहीं छोड़कर जाओ और महंत के दल को बुला लाओ। यह भी एक लेख है।"

"ये क्या करेंगे यहाँ?"—सरदार ने पूछा।

"इनकी जरूरत पड़ेगी।"—खंपोलामा ने कहा।

वे लोग चमरियों में लदा हुआ सामान उतारकर मठ के भीतर रख रहे थे। सरदार बोला—"गुरुदेव, अभी चल देता हूँ।"

गुरुदेव हँसकर कहने लगे—"ऐसी जल्दी क्या है, चाय पी लो, कुछ थकान मिटा लो।"

इवा भैरव को लेकर हवाई जहाज के पास चली गई। सरदार के साथियों ने जब सब सामान उतार दिया तो खंपोलामा ने उन्हें मठ के भीतर इकट्ठा होने की आज्ञा दी।

सरदार ने फिर पूछा—"ये क्या करेंगे यहाँ?"

"इनको मैत्रेय का आदि शिष्य बनाया जायगा। ये उसके अग्रदूत होंगे और सारे देश में उसके आगमन का संदेश जगा देंगे। तुम देखना धीरे-धीरे यह समाचार तिब्बत की सीमाओं को पारकर फिर एकाएक सारे विश्व में व्याप्त हो जायगा।" खंपोलामा ने उन सबसे पूछा—"क्यों भाइयो, तुम तैयार हो?"

वे सब साथी आपस में कानाफूसी करने लगे।

इवा और भैरव हवाई जहाज में कुछ बाकी बचा हुआ काम पूरा कर रहे थे। इवा बोली—"मेरे कमरे में से मेरी चाबी का गुच्छा ला दो।"

भैरव चला। गुफा के अंधकार से होकर वह अतिथिशाला में आया। वहाँ बहुत-सा चमरियों में आया हुआ सामान रख दिया गया था। एक मक्खन का थैला फट गया था। उसके भीतर चमकता हुआ एक टीन दिखाई देने लगा था। कौतूहल भैरव को उसके पास तक खींच ले गया। उसने टीन को बाहर खींचा—वह पेट्रोल का टीन था। भैरव के हर्ष की सीमा न रही।

वैसे ही एक दूसरे थैले पर उसकी नजर पड़ी उसके भीतर भी एक वैसा ही टीन उसने टटोला, तीसरे और चौथे थैले में भी एक-एक जान पड़ा। पहले टीन को उसके थैले में वैसे ही छिपाकर वह आगे बढ़ा।

दिल-दुनिया में जाकर उसने ओट से देखा पूरी सभा बैठी हुई थी। एक सभासद खड़ा होकर खंपोलामा से निवेदन कर रहा था—"हाँ महाराज, हम मैत्रेय के शिष्य बनने के लिए तैयार हैं।"

भैरव चुपचाप आगे को खिसक गया और इवा की चाबी लेकर चल दिया।

खंपोलामा कहने लगे—"तुम परम भाग्यशाली हो कि तुम मैत्रेय के सर्वप्रथम अनुग्रह के अधिकारी हुए हो। मैत्रेय का जन्म हो गया है, तुम लोगों में से बहुतों ने शायद उन्हें देख लिया होगा, पर पहचाना नहीं होगा। शीघ्र ही उनको तुमसे परिचित करा दिया जायगा।"

कलजन और रिबूची तमाम अतिथियों के लिए चाय बना रहे थे। रिबूची ने पूछा—"यह इतनी भीड़ कहाँ से आ गई?"

"मैत्रेय की शिष्य-कण्डली है। सुना है अभी कल-परसों तक कुछ और लोग भी आनेवाले हैं। अब चहल-पहल के ही दिन समझो।"

"कलजन, इस मैत्रेय के लिए तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"इन पवित्र अवतार के सम्बन्ध में तुम्हारा ऐसा पूछना, तुम्हारे हृदय की लघुता प्रकट करता है।"

"उस युवती रमणी के साथ वह एकान्तों में घूमता फिरता है।"

"तुम्हारे हृदय में पाप है, इसी स तुम्हें उसका प्रतिबिंब बाहर भी दिखाई दे रहा है। चलो, चाय ले चलो। जल्दी माँगी है, सरदार को अभी जाना है।"

सबको चाय पिलाई गई। सरदार उसी घोड़े पर चढ़कर विदा हुए। उनको ताम रास्ते मालूम थे। जाते समय वह कह तो गए थे कि रात होते-होते वे गाँव पहुँच जायेंगे।

सरदार के जाने के बाद, खंपोलामा ने दो उस्तरे निकाल कर कलजन से कहा—"कलजन, उस्तरा चलाने का भी अभ्यास है? इन सबके सिर मूंड कर इन्हें चेला बनाना है।"

कलजन बोला—"महाराज, अभ्यास तो नहीं है, पर आपकी

आज्ञा का पालन करूँगा।"

दूसरा उस्तरा रिंबूची को दिया गया। दोनों ने नए शिष्यों के सिर मूंडने शुरू किए।

भैरव ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा से इवा को चाबी देते हुए कहा—"पेट्रोल आ गया है चार टीन!"

'बड़े ठीक ही समय में आया है। इतने दिनों में हमने इस जहाज में जमी हुई तमाम धूल साफ कर दी, जो कुछ कल-पुर्जों में खराबी आ गई थी, उसे ठीक कर दिया और जो टूट-फूट हो गई थी, उसकी भी मरम्मत हो गई। जाओ ले आओ पेट्रोल।"

"अभी ?"—बड़ी आकुलता के साथ भैरव ने पूछा।

"केवल अन्दाज करने को मैत्रेय, यहाँ से जहाज नहीं उड़ सकता—उसे कुछ मैदान चाहिए।"

"नीचे है मैदान लेकिन वहाँ तक हम इसे ले नहीं जा सकते।"

"उतने आदमी आए तो हैं, उन्हे बुला लाओ।"

"अभी उतने ही कल को और आनेवाले है, उनको भी क्यों न आ जाने दें। धैर्य रखो इवा।"

"तुम्हें क्यों यहाँ से उड़ जाने के लिए जल्दी नहीं हो रही है। मैं अकेली नहीं जाऊँगी मैत्रेय।"

इसी समय खंपोलामा उनको ढूंढते हुए वहाँ आ पहुँचे, बोले—"क्या कर रहे यहाँ ?"

"ठीक कर रहे हैं इसे।"

"ठीक हो गया, उड़ सकेगा अब यह ?"

"हाँ महाराज उड़ सकेगा।"

खंपोलामा घबराकर बोला—"नहीं, इसको नही उड़ाया जायगा।"

"क्यों महाराज ?"

"कारण नहीं दे सकता कुछ।"

"इसकी मदद से आपका मैत्रेय, बड़ी आसानी से देश-देशान्तरों में

प्रसिद्ध हो सकेगा।"

खंपोलामा ने कुछ देर तक सोचने के अनंतर कहा—"ठीक है।"

"महाराज, आप भी चलेंगे आपको भी तो हमें संसार में प्रसिद्ध करना है, ऐसा बड़ा महात्मा आसानी से देखने को कहाँ मिलता है?"

"लेकिन यह कहीं फिर भटक गया तो?"

"वह तो एक संयोग था, हमेशा ऐसा नहीं होता। पेट्रोल की टंकी में छेद था हमने उसे ठीक कर लिया है।"

"अच्छा तुम दोनों चलो आज तुम्हारा आदि शिष्यों की मण्डली में अवतरण होगा।"

खंपोलामा उन दोनों को मठ के भीतर ले चला। इवा ने मार्ग में कहा—"मैत्रेय, पेट्रोल के लिए पूछ लो।"

भैरव ने कहा—"गुरुदेव, कल को हमें पेट्रोल दिला दीजिए।"

"वह आ गया क्या?"

"हाँ।"

'सरदार ने तो मुझसे कुछ कहा नहीं। मैंने भी देखा नहीं।"

"जल्दी में भूल गए होंगे। मक्खन की थैलियों में बड़ी हिफाजत के साथ लाए हैं।"—उसी समय वे अतिथि-गृह से हांकर जा रहे थे। भैरव ने कहा—"मैं दिखा दूं आपको।"

"इस समय नहीं, हमें आवश्यक काम है।"—खंपोलामा दोनों को सिर-सरग की ओर ले चले।

दिल-दुनियाँ में उन्होंने देखा, कलजन और रिंबूची ने चार चेलों के सिर मूंड दिए थे और दो पर वे उस्तरे चला रहे थे। खंपोलामा ने उन दोनों को वहाँ पर रुकने का जरा भी अवसर नहीं दिया। तुरन्त गति से उन्हें सिर-सरग में ले गए।

वहाँ ले जाकर उन्होंने उन दोनों को बहुमूल्य रेशम के और ऊद-बिलाव के फर के कपड़ों से सुसज्जित किया, भाँति-भाँति के आभूषणों से शृंगार किया। इवा को वह तिब्बती परिच्छद बड़ा प्रिय जान पड़ा

वह बार-बार अपने को दर्पण में देख-देखकर फूली नहीं समाती थी। वह इस प्रकार कल्पना कर रही थी—"मेरा अविज्ञापित और अतिथिक जहाज जब किसी नगर में पहुँचेगा तो लोग मेरा वेश देखकर भाँति-भाँति की कल्पना करेंगे। मैं बहुत देर तक मूक रहकर अपने भेद को सुरक्षित ही रहने दूंगी।"

भैरव तो उस परिच्छेद का आदी था, केवल उनकी कीमत बदली थी, कोई नई विचार-धारा नहीं फूटी उसके। वह बोला—"इवा, तुम हवाई जहाज में उड़ रही हो···अगर वह नहीं उड़ा तो?"

"केवल पेट्रोल का अभाव ही उसकी अचलता है।"

खंपोलामा ने उन दोनों को सिर-सरम की एक सुसज्जित वेदी पर बिठाया। वहाँ वे स्वयं बैठकर ध्यान करते थे। उनके पीछे रेशम में अंकित अजदहे का चित्र था, ऊपर से चँदोवा टंगा था, नीचे बढ़िया कालीन। दाएँ-बाएँ दो सुवर्ण के दीपाधारों पर घी के दीपक उज्जवल थे।

उन दोनों को वहाँ बिछाकर खंपोलामा उन नए चेलों को भी नए वस्त्र पहनाकर वहाँ ले आए। रिंबूची और कलजन को भी उन्हीं में शामिल किया, स्वयं भी उनके साथ हो लिए। इस प्रकार वे तीनों प्राणी एक-एक मानी हाथ में ले भैरव और इवा को घेर कर बैठ गए और मानी घुमाते हुए जपने लगे—"ओ३म् मणि पद्मे हुँ—ओ३म् मणि पद्मे हुँ!"

बीच-बीच में गुरुदेव उन्हें खड़े हो जाने की आज्ञा देते। सब उठकर उसी प्रकार मानी घुमाते मंत्र जपते इवा और भैरव के चारों ओर दौड़ लगाते। कभी द्रुत और कभी विलंबित चाल में। थक जाने पर बैठ जाते और फिर वैसा ही क्रम चलता।

बड़ी देर तक रात में ऐसा होता रहा। दूसरे दिन भी खा-पीकर इसी की आवृत्ति हुई। दिन में विश्राम दिया गया। रात को फिर वही कार्यक्रम रखा गया।

गुरुदेव बोले—"मैत्रेय, आज तुम्हें हमें कुछ उपदेश देना होगा।"

भैरव ने कहा—"महाराज, मैं आपको क्या उपदेश दे सकता हूँ?"

"ऐसा मत कहो। तुम ऐसा कहकर अपने पद से नीचे गिरते हो। हम निरन्तर तुम्हें ऊपर उठा रहे हैं। मेरी इतने वर्षों की साधना केवल इसी दिन के लिए थी, तुम हमें निराश न करो।"

भैरव कुछ सोचने लगा।

"सोचने की कोई बात नहीं है। प्रसन्न होकर बैठो, मैत्रेय का ध्यान करो, विचार एक जल की धारा के समान बिना प्रयास ही तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। बस उसे तुम ध्वनि का रूप देते जाना।"

"लेकिन आज नहीं महाराज, आज कुछ वहीं सूझ रहा है।"

"कल को ?"—गुरुदेव ने पूछा।

"और लोगों के आने पर।"

"यह भी ठीक है।" खंपोलामा ने फिर चेलों की मण्डली से मानी घुमाकर मंत्र जगाने को कहा।

दूसरे दिन भी यही क्रम जारी रहा। तीसरे दिन सरदार महंत जी और उनके आठो चेलों को लेकर आ पहुँचे। गुरुदेव ने उनकी परीक्षा के लिए पहले उन्हें अतिथिशाला में ठहराया। बिना उनसे अच्छी तरह बातें किए उन्होने यह उचित नहीं समझा कि वे मठ में दाखिल हों।

महंत और खंपोलामा की भेंट आयोजन किया गया। बड़ी देर एक दूसरे को चुपचाप देखते रहे। पहले महंत जी ने जबान खोली—"महाराज, इतनी शून्यता में आप किसे ढूंढ रहे हैं ?"

"इस संसार में फैली हुई बीमारी की औषधि।"

"बीमारी क्या है ?"

"इसकी खुदगरजी।"

"दवा मिली ?"

"दवा तो मिली है, केवल उसे शुद्ध करना है।"

"दवा क्या है ?"

"मैत्रेय—उनका उद्भव भी हो गया है, केवल उनकी शक्ति को जगाना है।"

"वह कैसे जागेगी ?"

मंत्र द्वारा उनके जन्मों की स्मृति जगाकर।"

"आपको धन्य है महाराज।"—महंत ने मतलब की बात कही—"महाराज, मैंने सुना है अपने योग-शक्ति से एक हवाई जहाज बनाया है।"

"नहीं, मैं योग-शक्ति को पार्थिवता पर खर्च नहीं करता।"

"तो क्या वह अफवाह है। यहाँ कोई हवाई जहाज नहीं है ?"

"हवाई जहाज तो है, पर वह स्वयं ही यहाँ आ गया।"

"कौन ले आया ?"

"मैत्रेय की जननी।"

"कौन हैं वह ?"

"मैत्रेय की जननी से और बड़ा परिचय क्या दूं ?"

"सुना हैं वे श्वेतांगदेश की रहनेवाली हैं।"

"इससे उनके मैत्रेय की जननी होने में कोई फर्क नहीं आता, काली, पीली, श्वेत सभी जातियाँ भगवान की हैं।"

महंत के तमाम संशय दूर हो गए अब उसे उन दोनों को देख लेना बाकी था। उसने पूछा—"महाराज, आपको धन्य है आपने विश्व के कल्याण के लिए इतनी बड़ी कठिन तपस्या सिद्ध की। हमारा कब ऐसा सौभाग्य होगा कि हम मैत्रेय और उनकी माता के दर्शन कर सकेंगे।"

खंपोलामा को भी महंत पर कोई संशय नहीं रहा, उसने उत्तर दिया—"आज रात को उनकी पूजा से तुम उनके दर्शन करोगे।"

उस समय भैरव और इवा एक गुप्त द्वार से बाहर निकल गए थे और गुरुदेव की आज्ञानुसार सरदार की सहायता से हवाई जहाज के टैंक में पेट्रोल भर रहे थे।

महत ने कहा—"महाराज, वह हवाई जहाज कहाँ है, क्या हम उसे देख सकते हैं ?"

"हाँ, देख सकते हो, बाहर गुफा के द्वार के पास ही तो है, तुमने

आते समय नहीं देखा उसे ?"

"नहीं, कुछ ध्यान नहीं रहा ।"

महंत हवाई जहाज देखने के मतलब से अकेला ही बाहर निकला । वहां सरदार और उसके दसों अनुचर हवाई जहाज को मैदान की ओर धकेल रहे थे । वे प्रायः उसे इष्ट स्थान पर ले आए थे । एकाएक सरदार ने महंत को उधर आता हुआ देखकर भैरव और इवा को वहां से सुरंग की राह मठ में चले जाने को कह दिया । दोनों चल दिए ।

महंत ने वहां आकर उस हवाई जहाज को देखकर कहा—"मैंने तो सुना था खिलौने का जहाज है, यह तो बिलकुल सच्चा है ।"

सरदार बोला—"हां महाराज । ऐसा ही है ।"

महंत ने पूछा—"कहां-कहां की सैर होती है इसमें ?"

"आकाश में सड़कें नहीं हैं, चारों ओर इसकी स्वच्छन्द गति है ।"

"कौन-कौन आता-जाता है इसमें ?"

"जिनके लिए गुरुदेव की आज्ञा हो जाय ।"

महत के तमाम शक सत्य में बदल गए अब तो उसे वह भी शक होने लगा कि जरूर साम्यवादियों के जगत से उनका सीधा सम्बन्ध है । वह मन ही मन सोचने लगा—"धर्म का सिर्फ इन लोगों ने एक दिखावा बना रखा, भीतर रहस्य कोई दूसरा ही है ।" वह लहासा की मदद के शीघ्र वहां पहुँच जाने के लिए चिंतित हो उठा ।

रात को मैत्रेय की पूजा हुई । सब लोग मैत्रेय के चारों ओर जमा होकर मन्त्र जगाने लगे । महंत ने भैरव और इवा को देखा । उसने इवा को देखकर निश्चय किया वह श्वेतांगना है । भैरव को देखकर उसको याद आने लगा उसने उसे कहीं देखा है । बड़ी देर में उसे स्मरण हुआ वह वही गूंगा व्यक्ति है जो उसे पशु चराते हुए मिला था । उससे किसी विदेशी राज्य का जासूस होने का उसे पहले ही शक था आज वह निश्चय में बदल गया ।

मैत्रेय के प्रवचन का समय आरम्भ हुआ । खंपोलामा ने कहा—

"अब आप लोगों को साधक होकर मैत्रेय की अमृत वाणी सुननी चाहिए । आप लोगों को यही वाणी सारे जगत में फैलानी है । यह युग का सन्देश है । हम लोग धन्य हैं जिनके भाग्य में यह सुअवसर बदा था। मैत्रेय की जय हो !"

खंपोलामा ने मैत्रेय की तरफ इशारा किया । मैत्रेय ने इवा की ओर देखा और मुसकराकर उससे कहा—"तुम कैसे समझोगी ?"

खंपोलामा कागज और लेखनी लेकर बैठ गया, मैत्रेय के एक-एक अक्षर को अपौरुषेय समझकर । उस शिला-मौन धारण की हुई सभा के बीच में मैत्रेय ने मुँह खोला—"आज दुनिया बड़ों की और छोटों की हो गई है—यही इसकी बीमारी है । हम सब बराबर हैं । बड़ों को छोटा और छोटों को इतना बड़ा कर दिया जाय कि सब बराबर हो जायँ—यही एक मात्र इलाज है । मैत्रेय का यही सन्देश है ।"

महंत आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ देखकर अपने मन में कहने लगा—"जरूर यह साम्यवादियों का एजंट है । इस जहर को जड़ में ही मार देना चाहिए, नहीं तो यह सारे देश में फैल कर चारों ओर उपद्रव पैदा कर देगा ।"

मैत्रेय फिर कहने लगा—"यह मैं नहीं बोल रहा हूँ । आप लोगों ने मेरे भीतर जो मैत्रेय की आत्मा का आह्वन किया है, वही बोल रहा है । इसलिए कुछ बुरा-भला मानने की बात नहीं है । मैं तमाम अन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए आया हूँ जो धर्म के नाम पर आज चल रहे हैं ।"

खंपोलामा आश्चर्यचकित होकर मैत्रेय की तरफ देखने लगा और मन में सोचने लगा—"यह क्या माया है ? मेरा ही बनाया हुआ यह क्या सबसे पहले मेरी ही गर्दन पर तलवार चलायेगा ?"

मैत्रेय बोला—"अन्धविश्वास क्या है ? विज्ञान के साथ जिस कर्म की कोई संगति नहीं है, वह सब अंधविश्वास है । आप लोगों का यहाँ पर बैठे-बैठे यह मानी घुमाना यह अंधविश्वास का एक नमूना है । अगर आप मुझे मैत्रेय मानते हैं तो इसे छोड़ दो ।"

गुरुदेव ने आँखें तरेरकर मैत्रेय की ओर देखा। मैत्रेय की भावना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मैत्रेय कुछ देर के लिए इवा से बात करने लगा। महंत ने गुरुदेव की ओर देखा। उनकी आँखों में कुछ विषमता पाकर वह उनकी राह उनके हृदय में घुस गया। वह बोला—"गुरुदेव, यह क्या सुन रहा हूँ ?"

"मैत्रेय की आत्मा नहीं है यह, यह मार की आत्मा आ गई !"

"फिर क्या हो इसका प्रतिकार ?"

"जोर-जोर से पढ़ो—ओ३म् मणि पद्मे हुँ, ओ३म् मणि पद्मे हुँ !"

सब मन्त्र पढ़ने लगे।

भैरव बोला—"यह पाखण्ड बन्द कर दो।"

खपोलामा ने कहा—"अभी तुम्हारे मैत्रेय की आत्मा नहीं आई है, यह तुम्हारे भीतर पाप बोल रहा है।"

"नहीं, तुमने हमें भी पाखण्ड में सजा दिया है, कहाँ है हमारे वस्त्र ?"—मैत्रेय इवा को लेकर वहाँ से चल दिया अपने-अपने कपड़े बदलने।

महत बोला—"गुरुदेव, मुझे ये साम्यवादियों के एजण्ट जान पड़ते हैं।"

"नहीं जी, मन्त्र पढ़ते रहो, अभी ठीक आत्मा आ जायगी।"

फिर सब मन्त्र पढ़ने लगे—ओ३म् मणि पद्मे हुँ ! ओ३म् मणि पद्मे हुँ !"

भैरव और इवा अपने-अपने वेश में आ गए। इवा का यूरोपीय वेश देखकर महंत बोला—'यह मेम कौन है ?"

मैत्रेय की माता।" खंपोलामा ने जवाब दिया।

"असम्भव तर्क ! बेटे और माँ की आयु में क्या इतना छोटा अन्तर होता है ? मैं मैत्रेय हो सकता हूँ, लेकिन ये मैत्रेय की माता नहीं है।"

"मन्त्र जपो, मन्त्र जपो ! अभी इसकी आत्मा शुद्ध नहीं हुई !" खंपो बोला।

भैरव बोला—'मेरी आत्मा शुद्ध है क्योंकि मैं मानव की मुक्ति का सन्देश लाया हूँ, वह है—सबकी समानता, सम्पत्ति की समानता, और पाखण्ड का सर्वनाश !"

महंत बोला—"यह निश्चय ही साम्यवादी है, गुरुदेव—इसे पकड़ कर बाँधने की आज्ञा दो।"

"कोई नहीं बाँध सकता मुझे ? मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है इसलिए मैं विमुक्त हूँ।"—वह इवा के साथ वहाँ से चला गया।

"गुरुदेव, मेरे ये आठों चेले कुछ ही देर में आठ सैनिकों में बदल सकते हैं। इनकी आठों मानियाँ अभी आठ तलवारों में।" महंत ने कहा।

"नहीं, नहीं ! इसके मन के शैतान को हम अभी बदल सकते हैं। मानी घुमाते रहो, मन्त्र जपते रहो।"

सब फिर मन्त्र जपने लगे। इसी समय बाहर गुफा के द्वार पर बड़ा शोर सुनाई देने लगा। खंपोलामा एकाग्र होकर उसे सुनने लगा। तमाम चेलों ने मन्त्र का जप स्थगित कर दिया।

महंत सोचने लगा—शायद लहासा से उसकी कुमक आ पहुँची। उसने खंपोलामा से कहा—"गुरुदेव, आपने मेरी बात नहीं मानी। यह जरूर इन्ही साम्यवादियों की सेना है। उन्होंने मठ में चढ़ाई कर दी। अब मानी से इनका सामना नहीं किया जायगा।"

"फिर क्या होगा ?"

"इन दोनों को कैद कर लें।"

"मैत्रेय को ?"

"वे दोनों अत्याचारी के एजंट हैं।"

"ऐसा है ?"—खंपोलामा ने पूछा।

"हाँ उन्होंने इस एकान्त में अपना फौजी आधार बनाने के लिए आपको सबसे सीधा मनुष्य पाया है।"

फिर बाहर शोर सुनाई दिया। खंपो ने पूछा—"वे बाहर कौन हैं ?"

"शायद उनकी सेना है। बाहर चलकर देख लें। लेकिन घबराने की

बात नहीं है, हमारे पास भी शस्त्र हैं।"

सब बाहर को चले। महंत ने अपने चेलों को शस्त्र दे दिए। उन्होंने बाहर जाकर देखा—महंत के ही साथी आ पहुँचे थे। महंत बोला—"सब मेरी सेना है।"

"तुम कौन हो ?"—खंपो ने पूछा।

"मैं ल्हासा की सरकार का एक अफसर हूँ। इन विदेशी साम्यवादियों का मुकाबला करने के लिए यहाँ आया हूँ। आप कोई चिन्ता न करें भगवान् का धन्यवाद है हम ठीक समय पर आ पहुँचे।"

खंपोलामा अब भी मानी घुमा रहा था। इतने ही में हवाई जहाज में से उनके चलने की आवाज सुनाई दी। जहाज उड़ने लगा था। सब उधर दौड़े।

खंपोलामा बोला—"मैत्रेय ! मैत्रेय !"

हवाई जहाज में से भैरव बोला—"मानव मात्र बराबर हैं—हम सब बराबर हैं, हम सब मैत्रेय हैं।"

महंत बोला—"पकड़ लो यह साम्यवादी है।"

"शांतिवादी हूँ। बड़े-छोटे के विचार से ही धरती पर अशान्ति है !"—भैरव बोला।

"इस श्वेतांगना पर गोली छोड़ो, यह श्वेतांगों की एशिया को विजित कर लेने की कामना है।"—महंत ने कहा।

"मैं इसे इसके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।"—भैरव ने कहा।

खंपोलामा ने कहा—"मैत्रेय ! तुम फिर कब आओगे ?"

भैरव बोला—"जब समय लायेगा। मैं मैत्रेय पर विश्वास रखता हूँ, पर मुझ में उसका भार उठा सकने की सामर्थ्य नहीं। मैंने जो विचित्र स्वप्न देखा है उसकी साक्षी के लिए घर जाता हूँ।

खंपोलामा ने विचारा—"अभी तपस्या पूरी नहीं हुई। गणित अशुद्ध हो गया !"

परिशिष्ट

[पुस्तक में आए हुए कुछ तिब्बती शब्द]

अवलांश=फिसलती हुई हिम-शिलाएँ

कंग्यूर=बौद्ध धर्म-शास्त्र

काबो=तिब्बतियों के कमर का पटुका

खऊँ=तावीज

गारपन=तिब्बती अधिकारी

गुंपा=मठ

ग्यांचे=तिब्बत का एक नगर

चक्यर=सुंघनी रखने का सींग

चांबा=भुना गेहूँ-जौ का आटा

चाङ् थङ्=तिब्बत का एक हिम-मरु

चोग्रा=सूखा गोबर

छङ्=जौ की शराब

छुपा=लंबा कोट

टशी लहुन्पो=एक मठ

टीबू=पूजा की घंटी

डोल्मा=भारत की तारा

तंग्यूर=बौद्ध धर्मशास्त्रों की टीका

तुंग=बजाने की तुरही

थुल्मा=ऊनी कम्बल

थुकपा=पतला भात

दन=ऊनी गलीचा

पंदेप=कानों का आभूषण

पोताल्हा=दलाई लामा का प्रासाद

फुरू=चाय पीने का काठ का प्याला

मानी=प्रार्थना-चक्र

श्यामो=टोप

शिग=लकड़ी

शिगर्ची=तिब्बत का दूसरा मुख्य नगर

शोंबा=घुटने तक का ऊन और चमड़े का जूता

श्यो=एक खेल

स्या कांबो=भेड़ का सूखा मांस